उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

DVS-101

वास्तु शास्त्र का स्वरूप व परिचय

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं .05946- 261122 , 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

इकाई लेखन सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. देशबन्धु असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वास्तुशास्त्र विभाग लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली।	**1**	**1,2,3,4,5**
डॉ. अशोक थपलियाल सह-आचार्य, वास्तुशास्त्र विभाग लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली	**2**	**1,2,3,4**
डॉ. रत्न लाल शर्मा असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार	**3**	**1,2,3,4,5,6,7**

प्रकाशन वर्ष - 2021

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: - सहारनपुर इलेक्ट्रिक प्रेस, बोमन जी रोड, सहारनपुर

ISBN NO. -

वास्तुशास्त्र का परिचय व स्वरूप DVS-101

अनुक्रम

वास्तु शास्त्र में डिप्लोमा

(DVS-20)

प्रथम पत्र

वास्तु शास्त्र का परिचय व स्वरूप

DVS-101

इकाई -1 वास्तुशास्त्र का परिचय

इकाई की संरचना

1.1. प्रस्तावना

1.2. उद्देश्य

1.3. ज्ञान के मूल स्त्रोत - वेद

 1.3.1. भारतीय संस्कृति में मानव और प्रकृति

1.4. वास्तुशास्त्र – सामान्य परिचय

 1.4.1. वास्तुशास्त्र की परिभाषा

1.5. सारांश

1.6. पारिभाषिक शब्दावली

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.9. सहायक पाठ्य सामग्री

1.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृतयः।'

परमपिता परमात्मा की अनादि, और दिव्या वाणी वेद ही है। ऋग्वेद इस सम्पूर्ण सृष्टि की समुपलब्ध प्राचीनतम ज्ञानराशि है। वेद से ही सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान का उद्गम हुआ है। इस सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि जितना भी ज्ञान या विज्ञान हमें इस सम्पूर्ण संसार के किसी भी भूभाग पर दिखाई देता है, उस ज्ञान या विज्ञान के बीज सूक्ष्म रूप में हमें वेद में प्राप्त होते हैं। वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इन चार वेदों के चार उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद, अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है और स्थापत्यवेद ही वास्तुशास्त्र का उद्गम स्थल है। यद्यपि चारों ही वेदों में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते हैं तथापि इसका मूल उद्गम स्थापत्यवेद को ही माना जाता है क्योंकि स्थापत्यवेद साक्षात् अथर्ववेद का ही उपवेद है अतः वास्तुशास्त्र का मूल सम्बन्ध अथर्ववेद से है। इस प्रकार वेद का वास्तुशास्त्र से सीधा- सीधा संबंध है। वास्तुशास्त्र का मूल उद्गम स्थल होने के कारण वास्तुशास्त्र के स्वरूप निर्धारण में वेद की प्रमुख भूमिका है। वैदिक काल में उद्भूत इस शास्त्र का उत्तर वैदिक काल और पौराणिक काल में पल्लवन हुआ और आज यह स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इस इकाई में वास्तुशास्त्र का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से हम वास्तुशास्त्र से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र की परिभाषा क्या है? वास्तुशास्त्र का मूल स्वरूप क्या है? वास्तुशास्त्र की क्या आवश्यकता है? वास्तुशास्त्र आधुनिक वास्तुकला से किस प्रकार से भिन्न है?

1.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तु किसे कहते हैं ?
- वास्तुशास्त्र के परिचय को जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- वास्तुशास्त्र और आधुनिक वास्तुकला के भेद को समझ पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

1.3. ज्ञान के मूल स्त्रोत - वेद

वेद न केवल आध्यात्मिक ज्ञान के स्त्रोत है अपितु अनेक प्रकार की भौतिक विद्याओं का भी मूल उद्गम स्थल है। वेद के ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि के माध्यम से इस सृष्टि के विविध रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया तथा वेद के मन्त्रों के माध्यम से उस ज्ञान का उपदेश अपने शिष्यों को किया। इसी वैदिक ज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हुआ और वैदिक ज्ञान की जन्मभूमि भारत को इस विश्व के गुरु होने का गौरव प्राप्त हुआ। विश्व के विविध भू-भागों से अनेकों विद्वान भारत आएं तथा भारत की इस ज्ञान-सम्पदा कों जानकर उन्होंने मुक्त कण्ठ से भारत के विश्वगुरुत्व को स्वीकार भी किया। वैदिक पृष्ठभूमि पर पुष्पित और पल्लवित समस्त विज्ञानों में प्रमुख साम्यता यह है कि इन सभी विज्ञानों में सम्पूर्ण मानव-जाति के सर्वविध कल्याण का चिन्तन तो किया ही गया है, उसके साथ-साथ इस प्रकृति के संरक्षण को भी प्रमुखता दी गई है। मानव के सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य हेतु प्रकृति के दोहन को सिरे से नकारा गया है।

1.3.1. भारतीय संस्कृति में मानव और प्रकृति

समस्त भारतीय विज्ञानों का यह वैशिष्ट्य है कि किसी भी प्रकार के विज्ञान के विकास से पूर्व प्रकृति के संरक्षण का चिन्तन किया गया है। प्राच्य भारतीय विज्ञान **प्रकृति तथा मानव** इन दोनों ही के कल्याण को साथ-साथ लेकर चलते हैं। आधुनिक विज्ञान प्रकृति के विरोधी है,उनका चिन्तन व्यष्टिगत है। आधुनिक विज्ञान केवल मानव के सुख ही का चिन्तन करते है,मानव को सुख प्रदान करने के लिए प्रकृति को होने वाली हानि के विषय में आधुनिक विज्ञान का कोई चिन्तन नहीं है। उदाहरण के लिए आज प्रत्येक घर में, प्रत्येक कार्यालय में ग्रीष्म ऋतु के समय में आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त वातानुकूलित यन्त्रों का प्रयोग होता है। इन वातानुकूलित यन्त्रों के माध्यम से हमारा घर, अथवा कार्यालय में तो हमें ठण्डी हवा प्राप्त हो जाती है,परन्तु उस यन्त्र के संचालन के कारण जो उष्ण-वायु निर्गत होती है और उससे पर्यावरण को जो हानि होती है, उसके विषय में आधुनिक विज्ञान ने किसी प्रकार का चिन्तन कभी किया ही नही, जिसके कारण आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण की भयावह समस्या से जूझ रहा है। ऐसे अनेको अविष्कार आधुनिक विज्ञान की देन है, जिन्होंने मानव के जीवन को तो सुखमय बनाया परन्तु प्रकृति को इससे जो हानि हुई, उसका दुष्परिणाम समय-समय पर प्राकृतिक आपदाओं के रूप में सम्पूर्ण मानव-जाति को भोगना पड़ा। मानव की मूलभूत आवश्यकतायें भोजन,वस्त्र और भवन हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

मानव आदिकाल से ही प्रयत्नशील रहा है। इन तीन में से भोजन तथा वास की आवश्यकता तो प्रत्येक जीव को होती है तथा प्रत्येक जीव अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने-अपने भोजन तथा वास की व्यवस्था हेतु प्रयास भी करता है। उदाहरण के लिए आप सब ने चिड़िया को देखा होगा। चिड़िया भी अपने निवास हेतु तिनका-तिनका संग्रह करती है तथा अपने नीड़ का निर्माण करती है। चिड़िया द्वारा निर्मित नीड़ उसके लिए पूर्ण सुरक्षित होते है। उन नीड़ों में ही वह अपना तथा अपनी सन्तान के भरण-पोषण की व्यवस्था करती है। यह नीड़ ही गर्मी,सर्दी तथा वर्षा से उसकी सुरक्षा करती है। ऐसी सुन्दर तथा सुदृढ़ वास की व्यवस्था केवल चिड़िया ही नही,अपितु समस्त जीव-जन्तु करते है। यदि हम विचार करें कि इन जीवों को अपने निवास हेतु इस भवन व्यवस्था का ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ? तो हमें उत्तर प्राप्त होता है कि चिड़िया का यह ज्ञान अनुभवजन्य है। अनुभव ही प्रत्येक जीव को सिखाता है। मानव को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना माना जाता है अतः मानव ने भी भोजन,वस्त्र तथा भवनादि की मूलभूत आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हेतु सभ्यता के आरम्भ से ही चिन्तन तथा प्रयास किया। आरम्भ में मानव वनों में ही रहता था और प्रकृति से प्राप्त होने वाले विविध पदार्थों के माध्यम से ही वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करता था । मानव वन में रहकर कन्द मूलादि का भक्षण कर अपनी क्षुधा को शान्त करता था। आरम्भ में मानव आधुनिक मानव की तरह लोभादि दोषों से युक्त नहीं था। उसमें संग्रह की प्रवृत्ति नहीं थी । वह अपने लिए भोजन तथा वस्त्र का संग्रह नहीं करता था। आरम्भिक काल में मानव वन में अन्य जीवों की ही तरह केवल भोजन के लिए ही चिन्तित रहता था। वस्त्र तथा वास हेतु वह अधिक यत्नशील नहीं था। शनैःशनैः सर्दी,गर्मी तथा वर्षा से अपने संरक्षण हेतु मानव ने वस्त्र तथा वास हेतु विशेष चिन्तन किया। वस्त्र के लिये वह वृक्षों के पत्तों और शाल का उपयोग करता था। निवास के लिये वह वन में प्राकृतिक और कृत्रिम गुफाओं में रहता था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होने लगा,वैसे-वैसे मानव भी विकसित होने लगा और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं के स्वरूप में भी अन्तर आने लगा। अब वह भोजन के लिए केवल कन्द-मूल पर निर्भर नहीं था, उसने कृषि कार्य के माध्यम से पृथ्वी से अनेक प्रकार के धान्यों की प्राप्ति करनी शुरू की और अपनी क्षुधा शांति के लिए उसके पास असंख्य खाद्य पदार्थ हो गए। इसी प्रकार वस्त्रों के लिए वह केवल वृक्षों की छाल और पत्तो पर निर्भर नही रहा बल्कि उसने सूत निर्माण के विज्ञान को सीखा और शनैः शनैः कई प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करने लगा। निवास के लिए भी वह केवल वन पर निर्भर नहीं रहा। वन से निकलकर उसने ग्राम और नगर की कल्पना की । वन में रहना उसके लिए कष्टकारी था। वन का जीवन सुविधाजनक नहीं था और उसे हर समय भयंकर जीवों का भय रहता था। वन में शेर, बाघ आदि मांसाहारी पशु अपनी क्षुधा पूर्ति के लिये मानव की

जीवन लीला को कभी भी समाप्त कर देते थें। उन जीवों के साथ रहता हुआ मानव भी जंगली प्राणी ही हो गया था, उस समय के मानव को कुछ इतिहासकारों ने असभ्य तक कहा है। परन्तु जैसे ही मानव ने वन के उस भयंकर वातावरण से बाहर निकल कर ग्रामों की कल्पना की ,नगरों की कल्पना की और निवास हेतु भवन का निर्माण किया, वह सभ्य कहलाने लगा। अपने प्रारम्भिक समय में मानव अधिकतर नदियों के किनारों पर निवास हेतु भवन का निर्माण करने लगा। अपने निवास स्थान के निर्माण में वह प्रकृति का सदुपयोग करने लगा। वह प्रकृति के समीप ही रहना पसन्द करता था। वह प्रकृति से,पृथ्वी से,नदियों से,पर्वतों से,वृक्षों से तथा प्रकृति के समस्त अङ्गों से अपने एक सम्बन्ध को मानता था। वह पृथ्वी तथा नदियों को अपनी माता मानता था क्योंकि पृथ्वी तथा नदियां माता ही के समान मानव का पालन-पोषण करती थी। उदर-पोषण हेतु समस्त पदार्थों की प्राप्ति मानव को पृथ्वी से ही होती है। समस्त प्रकार का अन्न और धान्य पृथ्वी से ही प्राप्त होता था। दूध पशुओं से प्राप्त होता था परन्तु पशु भी पृथ्वी पर आश्रित थें। पशु पृथ्वी से पैदा होने वाले विविध प्रकार के घास-फुस तथा वनस्पतियों का सेवन करते थे और मानव को दुग्धामृत प्रदान करते थें। वृक्षों से मानव को फल-फूल और अनेक प्रकार की औषधियां प्राप्त होती थी,परन्तु वृक्षों का पोषण भी पृथ्वी पर ही आश्रित था। पेय जल नदियों से तो प्राप्त होता ही था,उसके साथ-साथ भूमिगत जल भी मानव को तृप्त करता था।इस सब के कारण ही मानव की पृथ्वी के प्रति अगाध आस्था हो गई तथा उसने पृथ्वी में अपनी माता का रूप देखा और स्वयं को पृथ्वी का पुत्र मानते हुए कहा-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

पृथ्वी के साथ अपने इस सम्बन्ध के कारण ही मानव ने पृथ्वी माता की गोद में अपने निवास स्थान की कल्पना की। वह प्रकृति के सामीप्य को प्रत्येक क्षण अनुभव करना चाहता था अतः उसने ऐसे भवन के निर्माण की कल्पनी की, जहां सूर्य के प्रकाश, वायु और जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की समुचित व्यवस्था हो और उसके द्वारा किये गये भवन के निर्माण से प्रकृति को कोई हानि भी न पहुंचे। वैदिक ऋषियों ने ऐसे भोग को उचित नहीं माना, जो प्रकृति का विध्वंसक हो । ऐसा भोग, उपभोग,सुख अथवा समृद्धि जिसकी प्राप्ति इस प्रकृति को हानि पहुँचाकर हो, ऐसे भोग का त्याग करने का ही उपदेश ऋषियों ने किया। इसलिए ही भारतीय संस्कृति को त्यागवादी संस्कृति कहा जाता है न कि भोगवादी और त्याग की यह भावना ही विश्व की सम्पूर्ण संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति को प्रथम स्थान प्रदान करती है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. भवन मानव की मूलभूत आवश्यकता है।
2. वेद केवल आध्यात्मिक ज्ञान के स्त्रोत है।
3. प्राच्य भारतीय विज्ञान प्रकृति के विरोधी थे।
4. आरम्भ में मानव गुफाओं में रहता था।
5. अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है।
6. वेद का ऋषि पृथ्वी को माता मानता था।
7. वैदिक ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि विकसित की।
8. भारतीय संस्कृति भोग की संस्कृति है।

1.4. वास्तुशास्त्र – सामान्य परिचय

भारतीयों ने आरम्भ से ही त्याग को भोग से अधिक महत्व दिया है। त्याग की यह भावना प्रत्येक आचार्य द्वारा प्रणीत विविध ग्रन्थ-राशि में दृष्टिगोचर होती है। अगर आप वेद के विषय में ही बात करें तो आप पायेंगे कि वेद को भारतीय परम्परा में अपौरुषेय कहा जाता है। अपौरुषेय से अभिप्राय है कि वेद की रचना किसी भी पुरुष अर्थात् मानव के द्वारा रचित नहीं है। जिन ऋषियों ने विविध मन्त्रों का उपदेश किया, उन्होंने भी स्वयं को मन्त्रों के द्रष्टा ही कहा,कर्ता नहीं कहा। तद्यथा-

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः न तु कर्त्तारः।

आप सब जानते है, आज की संस्कृति पेंटेंट की संस्कृति है। आज का मानव छोटे से छोटे किसी भी तत्व को जान लेता है तो वह उस पर अपना अधिकार सिद्ध करने का प्रयास करता है और इसके लिए वह उस तत्व को अपने नाम पर पेंटेंट करवाता है जबकि हमारे ऋषियों ने,आचार्यों ने किसी भी पेंटेंट की अभिलाषा नहीं की। विश्व के प्राचीनतम ज्ञान वेद के रचियता के विषय में आज भी कोई स्पष्ट मत नहीं है। ऐसे बहुत से आचार्य हुए,जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की ,परन्तु उन्होंने कहीं भी अपना नामोल्लेख तक नहीं किया। आज उनकी रचनाओं का अध्ययन कर यह ज्ञात किया जा रहा है कि इन ग्रन्थों की रचनाकार कौन है? और जिन ग्रन्थों के रचनाकार के विषय में ज्ञात हो जाता है, तो उस ग्रन्थ की रचना कब और कहाँ हुई? इसका चिन्तन किया जा रहा है। अभिप्राय यह है कि हमारे आचार्यों ने ऐसा कोई संकेत भी नहीं दिया जिससे उनके द्वारा रचित ग्रन्थ से यह अनुमान आसानी से नहीं लगाया जा सकता कि उस ग्रन्थ की रचना किसने की ?

त्याग की यह भावना न केवल विविध ग्रन्थों की रचना में, अपितु भारतीयों की जीवन-शैली में भी पग-पग पर दिखाई देती है। हमारी संस्कृति में प्रत्येक कार्य का उद्देश्य केवल भोग

नहीं है , अपितु वह कार्य भोग के साथ-साथ किस प्रकार से सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण में अपना सहयोग कर पायेगा ? यह चिन्तन भी किया जाता है। यही भावना भवन-निर्माण में भी दृष्टिगोचर होती है। भवन का निर्माण केवल अपने भोग के लिए नहीं किया जाता था,अपितु यह भी एक धार्मिक कृत्य माना जाता था। भारतीय संस्कृति में निर्मित भवन के विविध भागों में विविध देवताओं का वास माना जाता है। अतः भवन-निर्माण भी धार्मिक कृत्यों का एक रूप है।

शनैः शनैः भवन-निर्माण एक विशुद्ध विज्ञान के रूप में परिणत हो गया। भवन में निवास करने वाले लोगों को प्रकृति की विविध शक्तियों का सम्पूर्ण लाभ कैसे प्राप्त हो, इसका चिन्तन किया जाने लगा। प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन का निर्माण होने लगा। और यही भारतीय चिन्तन था , जो भारत की भवन-निर्माण कला को सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठता प्रदान करता है परन्तु जैसे-जैसे इस भारतीय चिन्तन पर पाश्चात्य प्रभाव पडने लगा, हम प्रकृति के सहयोगी नहीं, विरोधी हो गयें , हम प्रकृति के रक्षक नहीं, भक्षक बनने लगें। आज हम गगनचुम्बी भवनों का निर्माण भी कर रहे हैं और पृथ्वी को खोदकर बेसमेन्ट आदि का निर्माण भी कर रहे हैं। इन भवनों में सूर्य,वायु,जल आदि प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग न होने के कारण आज के भवनों में निवास करने वाले मानव के जीवन से सुख ,समृद्धि समाप्त हो चुकी है। आज का मानव प्रतिक्षण भौतिक उन्नति के शिखर पर अग्रसर है। इतने भव्य भवनों का निर्माण मानव इसलिये कर रहा है , ताकि इन भव्य भवनों में रहकर उसका जीवन सुरक्षा और समृद्धि से युक्त हो सके। आधुनिक युग के भव्य भवन अत्यन्त सुविधाजनक और सुरक्षित हैं।इन भवनों में मानव के जीवन को सुखमय बनाने के लिये विविध भौतिक संसाधनों का प्रयोग होता है। इन भौतिक संसाधनों के माध्यम से मानव को शारीरिक दृष्टि से भले ही सुख प्राप्त हो रहा हो , परन्तु वास्तुशास्त्र के नियमों का पालन न होने के कारण उस भवन में रहने वाले लोगों को मानसिक रूप से सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो पाती।

इतने बडे-बडे बहुमंजिले भवन,जो कि आधुनिक युग की सभी सुख सुविधाओं से संपन्न है और इतने भव्य भवनों में रहकर भी मानव अगर प्रसन्न नहीं है तो इसका कारण क्या है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। और यदि उस निर्मित भवन में कोई ऐसा दोष है , जिसके कारण मानव मात्र को सुखाभाव का सामना करना पडता है , तो वह दोष क्या है ? और उस दोष को कैसे दूर किया जा सकता है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर भारतीय वास्तुशास्त्र के पास है।

भारतीय वास्तु शास्त्र का आधार ही मनुष्य को मानसिक दृष्टि से सुख प्रदान करना है। भारतीय वास्तुशास्त्र केवल मनुष्य के शारीरिक सुख का ही नहीं , अपितु मानसिक सुख का भी विचार करता है। भारतीय वास्तुशास्त्र केवल ऐसे भवन की कल्पना नहीं करता,जिसमें

रहकर मानव को केवल भौतिक सुख ही मिले, अपितु ऐसे भवन की कल्पना करता है , जिसमें मनुष्य प्रसन्नचित हो, उसका जीवन समृद्ध हो और भवन में रहने वाले सभी लोगों में पारस्परिक सौहार्द और सामञ्जस्य की भावना हो और यही भारतीय वास्तुशास्त्र का मूल उद्देश्य है और इसी मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारत के ऋषियों ने, आचार्यों ने वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया। वस्तुतः जीव की विविध इन्द्रियों तथा मन का सीधा सम्बन्ध प्रकृति के साथ है। अगर आप विचार करेंगे तो पायेंगे कि मनुष्य के नेत्र से अधिक दूर तक देखने की क्षमता कुछ अन्य जीवों में जैसे उल्लू,गिद्ध आदि में होती है। उसी प्रकार से मनुष्य की नासिका से अधिक सूंघने की शक्ति भी अन्य जीवों जैसे श्वान आदि में होती है। इसी प्रकार से अन्य जीवों में मानव की इन्द्रियों से अधिक सामर्थ्य हमें दिखाई देता है। इसका एक कारण इन जीवों के प्रकृति के समीप रहना भी है। आदि-काल से ही भारत में एकांतवास की परम्परा है। हमारे ऋषि-मुनि भी अपनी इन्द्रियों के सामर्थ्य में वृद्धि तथा मन पर नियंत्रण हेतु वनों में कुटिया बना कर रहते थें। प्रकृति के सामीप्य से क्रान्तद्रष्टा ऋषि भी अपनी इन्द्रियों के सामर्थ्य का असीमित विकास कर लेते थें। भारतीय वास्तुशास्त्र में भी भवन निर्माण के सम्बन्ध में ऐसे भवन की कल्पना की गई है, जो मानव-मात्र को प्रकृति का सामीप्य प्रदान करें। उस भवन में रहकर भी मानव को प्राकृतिक शक्तियों का लाभ प्राप्त होता था। भारतीय वास्तुशास्त्र मुख्य रूप से प्राकृतिक शक्तियों के साथ भवन और मानव के सामञ्जस्य के इसी सिद्धान्त पर काम करता है। **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** इस सिद्धान्त के अनुपालन में भारतीय वास्तुशास्त्र ने ब्रह्माण्ड ,मानव और भवन में निहित पञ्चमहाभूतों के समन्वय की कल्पना की और प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन निर्माण का चिन्तन किया।

जब तक मनुष्य प्रकृति के साथ समन्वय कर अपना जीवन यापन करता रहा तब तक प्रकृति ने मानव को अपना आशीर्वाद प्रदान कर उसे सुखमय जीवन प्रदान किया और जब से मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये उसके विरोध में कार्य करना आरंभ किया, तब से उसे सदैव ही मुंह की खानी पडी । इसका प्रमाण हमें समरांगण सूत्रधार के सहदेवाधिकार में वर्णित्त इस कथा से प्राप्त होता है, जिसमें आधुनिक विकास सिद्धान्त के प्रतिकूल यह कहा गया है कि प्राचीन काल में मानव और देवता एक साथ रहते थे , देवो के समान मानवों की पुण्यश्लोकता थी , अजरता थी , अमरता थी। वे भी देवों के साथ कल्पवृक्षों के मध्य में स्थित विशाल प्रासादों में विहार करते थे , मानव उन सभी सुखों का भोग करते थे, जिन सुखों की प्राप्ति केवल देवताओं के लिए सुलभ थी। कालान्तर में मानवों का निवास भी देवताओं के साथ वही हो गया। बहुत समय तक मानव और देवता एक साथ रहें। कुछ समय बाद मानव अपनी मर्यादा को भूल कर देवों की अवज्ञा करने लगें।

उन्होंने देवताओं का सम्मान करना बन्द कर दिया। वे देवताओं के उपकार को भूल कर अहंकार से युक्त होकर अपने आपको देवताओं से भी श्रेष्ठ समझने लगें । देवताओं ने मानव के इन कार्यों को कुछ समय तक तो देखा परन्तु बार-बार मानवों के द्वारा अवज्ञा होने पर देवताओं ने मानव के ऊपर अपने उपकारों को बन्द कर दिया । उन्होंने मानव के साथ 'मैत्री भाव ' त्यागकर उन्हें 'पुनर्मूषको भव ' की दशा में परिणत कर दिया । स्वर्ग से मानव पुनः धरती पर आ गयें । जब वे देवों के साथ कल्प वृक्षों के मध्य में थें , तब उन्हे आहार-विहार के सभी साधन उपलब्ध थें । स्वर्ग में केवल एक ही ऋतु - वसन्त ऋतु थी। एक ही वर्ण ब्राह्मण था । वहाँ ग्राम-नगर-घर की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। किसी की अधीनता नहीं थी। वहां केवल सुख ही सुख था , दुःख की कल्पना भी नहीं थी । परन्तु मानव-देवों के पार्थक्य के कारण मानवों की दिव्य-शक्तियां समाप्त हो गयी और वे क्षुधा-तृषा से व्याकुल रहने लगें। उनको भूख लगने लगी , परन्तु सम्पूर्ण पृथ्वी पर कहीं भी अन्न सुलभ नहीं था। ऐसी अवस्था में दैव-कृपा से पर्पटक (खाद्य विशेष) का प्रादुर्भाव हुआ , जिससे मानवों ने अपनी बुभुक्षा को शान्त किया ,परन्तु कुछ समय बाद पर्पटक का भी लोप हो गया और शालि-तण्डुलादि का प्रथमोदय हुआ। मानवों के मन में भय पैदा हो गया कि कहीं पर्पटक की तरह तण्डुल का भी लोप न हो जाए, अतः उनमें संग्रह की प्रवृति पैदा हो गयी। उन्होने तण्डुल का संग्रह करना शुरू किया, जिसके लिये उन्हें एक सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ। तुष सेवन से मानवों में मल प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और मानवों में काम भावना भी जागृत हो गई। इन कार्यों की अभिगुप्ति के लिए मानवों को सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ, जिसमें निवास कर वह इन सब कार्यों का सम्पादन कर सके। अत: वह भवन निर्माण की ओर प्रवृत्त होने लगा । इस प्रकार पृथ्वी पर भवननिर्माण की परम्परा का सूत्रपात हुआ। भवन निर्माण और पृथ्वी के सुनियोजन की यह कथा पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित है। इसका अभिप्राय: यह कदापि नहीं है कि भारतीय वास्तुशास्त्र का आरम्भ पौराणिक युग से ही हुआ। वैदिककालीन साहित्य में भी अनेक स्थलों पर भवन निर्माण और वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित तत्त्व यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते है।

1.4.1. वास्तुशास्त्र की परिभाषा

"वास्तु" शब्द का सामान्य अर्थ निवास है। "वस् निवासे" धातु से उणादि सूत्र **"वसेस्तुन्"** के द्वारा **"तुन्"** प्रत्यय से वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ **"वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तु"** है। इसका अभिप्राय है कि वह स्थान जिसमें वास किया जायें वह वास्तु है। अमरकोष में वास्तु शब्द के लिए **"वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम इत्यमरः"** कहा गया है अर्थात् वास-

योग्य भूखण्ड को ही वास्तु कहा जाता है। पाश्चात्यविद्वान **"मोनियर विलियम्स"** के अनुसार वास्तु शब्द का अर्थ "**THE SITE OR FOUNDATION OF A HOUSE, SITE, GROUND, BUILDING OR DWELLING PLACE** किया गया है। इसका अर्थ है कि किसी भवन की आधारशिला अथवा भूखण्ड, मैदान, भवन अथवा किसी भी धार्मिक स्थान की आधारशिला को अथवा उस भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है। अतः भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मन्दिर और नगरादि समस्त रचनायें जिनमें मनुष्य वास करते है उन्हे वास्तु पद से सम्बोधित किया जाता है। अभिप्राय यह है कि जिस किसी भी भूखण्ड पर मानव निवास करें , वह वास्तु कहलाता है। इसको इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण पृथ्वी अनियोजित अर्थात् ऊंची-नीची है , जब किसी भी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित स्वरुप प्रदान कर उसे निवास के योग्य बनाया जाता है, तो उसे वास्तु कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न -2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1.) वेदों को __________ माना जाता है।

2.) ऋषि मन्त्रों के ________ है।

3.) भारतीय संस्कृति में भवन-निर्माण को________ कृत्य मानते है।

4.) वास्तुशास्त्र में ____ शक्तियों का सामञ्जस्य किया जाता है।

5.) वास्तु का सामान्य अर्थ _______ है।

6.) वस् धातु से_____ प्रत्यय होकर वास्तु शब्द बनता है।

1.5. सारांश --

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि इस विश्व का प्राचीनतम प्राप्त साहित्य वेद ही है। वेदों से ही समस्त प्रकार के ज्ञान और विज्ञान का प्रथमोदय हुआ। वेदों ने मानव को इस सृष्टि के प्रत्येक जीव के संरक्षण और संवर्धन का उपदेश दिया। वेद के इन उपदेशों के परिणामस्वरूप ही मानव ने इस सृष्टि के प्रत्येक चेतन जीव की ही नहीं अपितु जड़ तत्वों की भी चिन्ता की। ऋषियों द्वारा उपदिष्ट **यत्पिण्डे तत्ब्राह्माण्डे** के सिद्धान्त को आत्मसात करते हुए भारतीयों ने प्रकृति के साथ अपने सम्बन्ध को समझा। **ईशावास्यमिदं सर्वम्** की अद्वितीया भावना ने भारतीय संस्कृति को

सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठता प्रदान की । ये ही वो विचार थे, जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता को सम्पूर्ण विश्व की संस्कृतियों से कुछ अलग करते थे । इन विचारों ने ही भारतीयों को वह दृष्टि प्रदान की , जिससे वे इस विश्व के सम्पूर्ण जड़-चेतन प्राणियों में, तत्वों में उस परमपिता परमात्मा का अंश ही देखने लगे। वे अपने सुख और भोग से पूर्व दूसरों के सुख की चिन्ता करने लगे । ऐसा सुख, जिसकी प्राप्ति के लिए किसी अन्य जीव को कष्ट देना पड़े , उस सुख के त्याग को ही श्रेयस्कर माना जाने लगे। प्रकृति के प्रत्येक जड़- चेतन तत्व में विद्यामान उस ईश्वर के अंश को जानकर उस तत्त्व का अपने प्रति किस प्रकार शुभत्व प्राप्त किया जा सके, इसी को लेकर के वैदिक-पृष्ठभूमि पर आधारित प्रत्येक विज्ञान प्रवृत्त हुआ। वास्तुविज्ञान भी उन्हीं विज्ञानों में से एक विज्ञान है ,जिसका सम्बन्ध भवन-निर्माणकला से है। वस्तुतः भवन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है, जब से मनुष्य जंगलों के स्थान पर भवन में रहने लगा, तब से वह सभ्य कहलाने लगा। धीरे– धीरे अपने निवास को सुन्दर और सुविधाजनक बनाने की दिशा में प्रवृत्त मानव ने भवन निर्माण के विविध सिद्धान्तों का निर्माण किया और इसे वास्तुशास्त्र का नाम दिया उसने प्रकृति के साथ सामञ्जस्य करते हुए भवन निर्माण की कल्पना की और ऐसे भवन के निर्माण की कल्पना की, जिसमें पञ्चमहाभूतों का समुचित उपयोग हो सके । पञ्चमहाभूतों के समन्वय से हमारे वैदिक ऋषि भली-भांति परिचित थे। वैदिक-कालीन यज्ञवेदियों के निर्माण में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का समुचित उपयोग होता था। यद्यपि वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित उल्लेख चारों वेदों में प्राप्त होती है तथापि वास्तुशास्त्र का मूल अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है। इस इकाई में आपने समराङ्गण-सूत्रधार में वर्णित मानवों के पृथ्वी पर प्रथम निवास का प्रसंङ्ग भी पढ़ा, जिसके अनुसार देवताओं की अवज्ञा के कारण मानवों को इस पृथ्वी पर निवास करना पड़ा। वास्तुशास्त्र के सामान्य परिचय से भी आप परिचित हुयें। भारतीय वास्तुशास्त्र की मूल अवधारणा का ज्ञान भी प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपकों प्राप्त हुआ। पाश्चात्य वास्तुकला और प्राच्य वास्तुशास्त्र में समता और विषमता के विषय में भी चर्चा की गई। किस प्रकार से भारतीय वास्तुशास्त्र आधुनिक वास्तुकला से पृथक है, यह भी प्रतिपादन किया गया है। अन्त में, वास्तुशास्त्र की परिभाषाओं की चर्चा भी की गई । जिनमें अमरकोश तथा पाश्चात्य विद्वान मोनियर विलियम्स द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं की चर्चा मुख्य रूप से की गई । वास्तु के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से भी आप लोग परिचित हुए । इस प्रकार से प्रस्तुत इकाई में वास्तुशास्त्र के सामान्य परिचय प्रदान किया गया।

1.6. पारिभाषिक शब्दावली

1) **वास्तु** -- वास्तु शब्द का प्रयोग सुनियोजित भवन के लिए किया जाता है। किसी भी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित कर जब उसका प्रयोग निवास, व्यापार, यां मन्दिर के रुप में किया जाता है, तो उस भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है।

2) **वेद** – विश्ववाङ्गमय का उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार वेद है। वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है।

3) **उपवेद** – चार वेदों के चार ही उपवेद है। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्यवेद उपवेद है। स्थापत्यवेद को ही वास्तु का उद्गम माना जाता है।

4) **पञ्च महाभूत** – पृथ्वी,जल,तेज,वायु,आकाश। इन पञ्च महाभूतों से ही समस्त सृष्टि की संरचना हुई है।

5) **अन्तर्दृष्टि** – योगसाधना के बल पर विकसित दिव्यदृष्टि , जिसके माध्यम से वैदिक ऋषि सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्यों को जानने में समर्थ थे।

6) **अपौरुषेय** – किसी मनुष्य के द्वारा जिसकी रचना न की गई हो । वेद को भारतीय परम्परा में अपौरुषेय माना जाता है।

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास – 1 की उत्तरमाला

1) सत्य
2) असत्य
3) असत्य
4) सत्य
5) सत्य
6) सत्य
7) सत्य
8) असत्य

अभ्यास – 2 की उत्तरमाला

1) अपौरुषेय
2) द्रष्टा
3) धार्मिक-कृत्य
4) प्राकृतिक
5) वास-योग्य भवन

6) तुन्

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोषः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2003

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, 1996

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – 1999

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – 1959

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – 2002

1.9.सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

1.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1) वास्तु की परिभाषा लिखते हुए वास्तु के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2) पृथ्वी पर प्रथम भवन निर्माण की कथा को विस्तार से लिखिए।
3) भारतीय संस्कृति में मानव और प्रकृति के सम्बन्ध का विवेचन कीजिए।

4) वास्तुशास्त्र का सामान्य परिचय लिखिए।
5) वास्तुशास्त्र और आधुनिक वास्तुकला के सम्बन्ध पर निबन्ध लिखें।
6) वास्तुशास्त्र की मूल अवधारणा पर निबन्ध लिखें।

इकाई - 2 वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास

इकाई की संरचना

2.1. प्रस्तावना
2.2. उद्देश्य
2.3. ज्ञान-विज्ञान के मूल : वेद
 2.3.1. वेदों में वास्तु का उद्भव और विकास
2.4. षड्वेदाङ्ग : सामान्य परिचय
 2.4.1. वेदाङ्गों में वास्तु का उद्भव और विकास
2.5. सारांश
2.6. पारिभाषिक शब्दावली
2.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8. संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9. सहायक पाठ्य सामग्री
2.10. निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सर्वज्ञानमयो हि सः

वेद ही सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के मूल है। समस्त विद्याएँ वेद से ही उद्भूत होकर विकसित हुई है। ऋग्वेद को इस सम्पूर्ण विश्व का आदिन्तम उपलब्ध साहित्य माना जाता है और यह यूनेस्को द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। आपकों यह जानकर आश्चर्य होगा कि वेद में केवल आध्यात्मिक चर्चाएँ ही नही, अपितु विविध विज्ञानों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जब से इस सृष्टि की रचना हुई है, शनैःशनैः मानव ने अपने जीवन को सुखमय, समृद्धियुक्त और सुरक्षित बनाने के लिए अनेक प्रकार के विज्ञानों का अन्वेषण किया, इन सभी प्रकार के विज्ञानों के बीज सूक्ष्म रूप में हमें वेद में प्राप्त होते हैं। वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद । इन चार वेदों के चार उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद , सामवेद का गान्धर्व वेद , अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है और स्थापत्यवेद ही वास्तुशास्त्र का उद्गम स्थल है। वेदों के सम्यक् अवबोध हेतु षड् वेदाङगों की रचना हुई। जिनके नाम क्रमशः शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरुक्त,छन्द और ज्योतिष है। वास्तुशास्त्र का मूल सम्बन्ध इनमें से कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से भी माना जाता है । कल्पसूत्रों के अन्तर्गत शुल्व-सूत्रों में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित चर्चा प्राप्त होती है क्योंकि शुल्व का अर्थ ही रस्सी अथवा मापन हेतु कोई पदार्थ होता है। शुल्वसूत्रों में विविध प्रकार के यज्ञों के सम्पादन हेतु निर्मित की जाने वाली यज्ञवेदियों के मापन का क्रम वर्णित है। इसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का एक अन्य सम्बन्ध ज्योतिषवेदाङ्ग से है। ज्योतिषशास्त्रान्तर्गत संहिता स्कन्ध से सम्बन्धित ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र की चर्चा प्राप्त होती है। इस प्रकार वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध वेद तथा वेदाङ्ग दोनों से है । वास्तुशास्त्र कोई नया शास्त्र नहीं है, अपितु वास्तुशास्त्र का उद्भव वेद से ही हुआ है और इसका विकसित स्वरूप कल्प और ज्योतिषवेदाङ्गान्तर्गत विविध ग्रन्थों में दिखाई देता है। कालान्तर में वास्तुशास्त्र के अनेक आचार्यों का वर्णन विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जिन्होंने इस शास्त्र के विविध सिद्धान्तों का विवेचन किया। वैदिक काल में उद्भूत इस शास्त्र का उत्तर वैदिक काल और पौराणिक काल में पल्लवन हुआ और आज यह स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है । इस इकाई में वास्तुशास्त्र के उद्भव और विकास का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप वास्तुशास्त्र के उद्भव और विकास से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र का उद्भव कैसा हुआ? वास्तुशास्त्र का वेद और वेदाङ्ग से किस प्रकार का सम्बन्ध है ? वास्तुशास्त्र का विकसित स्वरूप क्या है ?

2.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- जान सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का मूल सम्बन्ध वेद से है।
- वास्तुशास्त्र के उद्भव को जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र की विकास-परम्परा को समझ सकेंगे।
- वास्तुशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र के अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र और कल्पसूत्रों के सम्बन्ध को जान पायेंगे।

2.3 ज्ञान-विज्ञान के मूल : वेद

वेद ही सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के मूल है- इसमें कोई भी संदेह नहीं है। संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदादि के रूप में जो वेद का भाग प्राप्त होता है, वह प्रायः उपासनापरक है, जिसमें देवताविज्ञान, यज्ञसंस्था, आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मविज्ञान विशेष रूप से वर्णित है। वेदों में अथर्ववेद तथा उपवेदों में गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, अर्थवेद तथा स्थापत्यवेद से विविध भौतिकविज्ञानों और विविध कला-कौशलों का उद्भव हुआ। आयुर्वेद में आधुनिक रसायनविज्ञान का समावेश है।ज्योतिषादि शास्त्रों में फीजिक्स-जियोलॉजी-जियोग्राफी आदि विविध आधुनिकविज्ञानों का परिचय प्राप्त होता है। धनुर्वेद में सैन्यविज्ञान तथा गान्धर्ववेद में सङ्गीत-नृत्य-नाट्यादि प्रमोद विद्याओं के मूल उपलब्ध होते है। अथर्ववेद ही आधुनिक राजनीति, अर्थनीति, दण्डनीति, वाणिज्यशास्त्र का मूल है। स्थापत्यवेद में नगरविन्यास, ग्रामविन्यास, जनभवन, राजभवन, देवभवन आदि के निर्माण से सम्बन्धित वर्णन को तो सब जानते ही है, उसके साथ-साथ शय्यानिर्माण, आसनरचना, आभूषणनिर्माण, आयुधनिर्माण, अनेक प्रकार के चित्र-निर्माण, प्रतिमारचना, अनेक प्रकार के यन्त्रों की रचना तथा अनेक प्रकार के स्थापत्यकौशल का वर्णन स्थापत्यवेद तथा उसी से उद्भूत वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है। चारों वेदों में वास्तु से सम्बन्धित उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होते है। वस्तुतः वैदिककाल यज्ञ का काल था। यज्ञों के सम्पादन हेतु सर्वाधिक प्रमुख यज्ञवेदी थी। यज्ञ की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल तथा अनुशासित थी। यज्ञवेदियों का निर्माण भी शास्त्रीय आधार पर होता था। वैदिककाल में विविध प्रकार के यज्ञों के लिए विविध प्रकार की यज्ञ-वेदियों के निर्माण हेतु एक निश्चित मापन का प्रयोग होता था, जिस हेतु शुल्व (रस्सी) का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार से वास्तुशास्त्र वैदिक कालीन जीवन पद्धति का एक अपरिहार्य अङ्ग थे। वेद में अनेकत्र वास्तु, भवन, प्रासाद से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते है, जिनसे आपको यह ज्ञात होता है

कि वैदिक-काल में वास्तु का स्वरूप क्या था।

2.3.1. वेदों में वास्तु का उद्भव और विकास

भारतीय वास्तुविद्या उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानव-सभ्यता । वेद का अस्तित्व मानव सभ्यता के आरम्भ से ही माना जाता है । विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी वास्तुविद्या के उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होते है। अनेक अन्य विज्ञानों के ही समान वास्तुविद्या का भी मूल उद्गमस्थल वेद ही है ।समस्त भारतीय विज्ञान मूल रूप से वैदिक पृष्ठभूमि पर ही आधारित है इसलिए समस्त भारतीय विज्ञानों में उसी मूल भावना के दर्शन होते है जो मूल भावना वेद में है। वैदिक युग देवोपासना की दृष्टि से यज्ञ-प्रधान, स्तुति-प्रधान और चिन्तन-प्रधान था। उस युग में भी यज्ञ से पूर्व यज्ञवेदी का निर्माण करने के लिए वास्तुविद्या के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता था । यही यज्ञवेदी धीरे- धीरे भवन, राजप्रासाद और देवप्रासाद के रुप में परिवर्तित हो गई। वास्तु का वही मौलिक तत्त्व मन्दिरों, गृहों और महलों के कलेवर में आज भी विद्यमान है। वैदिकवाङ्गमय में अनेक स्थलों पर वास्तुसम्बन्धी सूत्र प्राप्त होते है। जैसे कि वेद में कुछ मन्त्रों में सुन्दर घर के लिए **"सुवास्तु"** शब्द और गृहाभाव के अर्थ में **"अवास्तु"** शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद मे वर्णित वास्तु से सम्बन्धित विवेचन से ज्ञात होता है कि वैदिक भवनों के मुख्यरुप से तीन अङ्ग थे । प्रथम गृह-द्वार, द्वितीय आस्थान मण्डप और तृतीय पत्नी-सदन, इसे ही अन्त:पुर कहते है। आर्य लोग अग्नि के आधान के लिए जिस स्थान का प्रयोग करते थे उसे अग्निशाला कहा जाता था। वैदिककाल में निवासगृहों के दो भेद थे। एक गृह पाषाण- काष्ठादि से निर्मित होता था जो आर्थिकरूप से कम सम्पन्न लोगो के लिए होता था। इसी प्रकार एक विशाल और सुदृढ गृह सब प्रकार से सम्पन्न लोगो के लिए होता था। वेद में ऋषियों के द्वारा वैदिक देवता वरुण से प्रार्थना की गई है कि वह मिट्टी के घर में नहीं, अपितु सहस्त्रद्वारों से युत पाषाण-निर्मित सुदृढ घर में निवास करें। इससे वैदिककाल में मिट्टी के घर और सहस्त्रद्वारों वाले घर की परिकल्पना उद्धाटित होती है। ऋग्वेद में "गृह" शब्द का प्रयोग निवास स्थान के अर्थ में किया गया है। यथोक्तम्-

"सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे"

वैदिककालीन गृहों में कक्षों की संख्या अधिक होती थी । गृह की सुरक्षा की दृष्टि से कक्षों के पिधान की भी समुचित व्यवस्था थी। यजुर्वेद में वास्तु शब्द का प्रयोग यज्ञ-परक किया गया है। यजुर्वेद में वास्तुशब्द का प्रयोग यूपनिर्माण, स्तूपनिर्माण, आसन्द और पर्यङ्कादि के निर्माण के अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद के शालासूक्तों में गृह के कक्षों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। गृह के सम्पूर्ण सौन्दर्य की साम्यता वहां नवविवाहिता से करते हुए कहा गया है कि

" मा न: पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ।"

शाला के निर्माण के पश्चात प्रार्थना की जाती है कि यह शाला हमें गौ-अश्व-ऊर्जा- घृतादि को प्रदान करती हुई कल्याण और सौभाग्य को देने वाली हो ।यथोक्तम् –

" इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। "

ब्राह्मण ग्रन्थों में यूप-वेदी-शमशान आदि के निर्माण में शिल्पकला की उत्कृष्टता प्रतिबिम्बित होती है। अथर्ववेद में "पत्नी-सदन" के वर्णन से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में स्त्रियों के लिए गृह में विशेष कक्ष की व्यवस्था होती थी। सूत्रग्रन्थों में वास्तुशब्द का अर्थ "आवास" लिया गया है । यज्ञवेदी के निर्माण में शुल्वसूत्रों का अत्यधिक महत्त्व था। शुल्व शब्द का अर्थ ही मापन कार्य में प्रयुक्त होने वाला सूत्र या रज्जु है। वैदिक साहित्य में यूप शब्द का प्रयोग यज्ञ स्तम्भ के लिए किया गया है। यूप की स्थापना वेदी से पूर्व दिशा में की जाती थी। यूप पर मानव, देव और ऋषियों के चित्र तथा लेख उत्कीर्ण किए जाते थे,जिससे ज्ञात होता है कि वैदिककालीन यज्ञ अत्यन्त श्रमसाध्य थे । वैदिक यज्ञवेदी की रचना वर्गाकार की जाती थी। वैदिकसाहित्य में श्मशान के निर्माण के सिद्धान्तों का वर्णन भी कई स्थानो पर प्राप्त होता है। श्मशान निर्माण के लिए शान्त स्थल का प्रयोग किया जाता था। उसके दोनो तरफ अश्वत्थ के वृक्ष लगाये जाते थे। इस प्रकार से वास्तुविद्या के बीज तो समस्त वैदिक वाङ्गमय में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते है। वास्तुविद्या आगे चलकर वास्तु,शिल्प और चित्र के रुप में त्रिधा विभक्त है। जो इस प्रकार है -
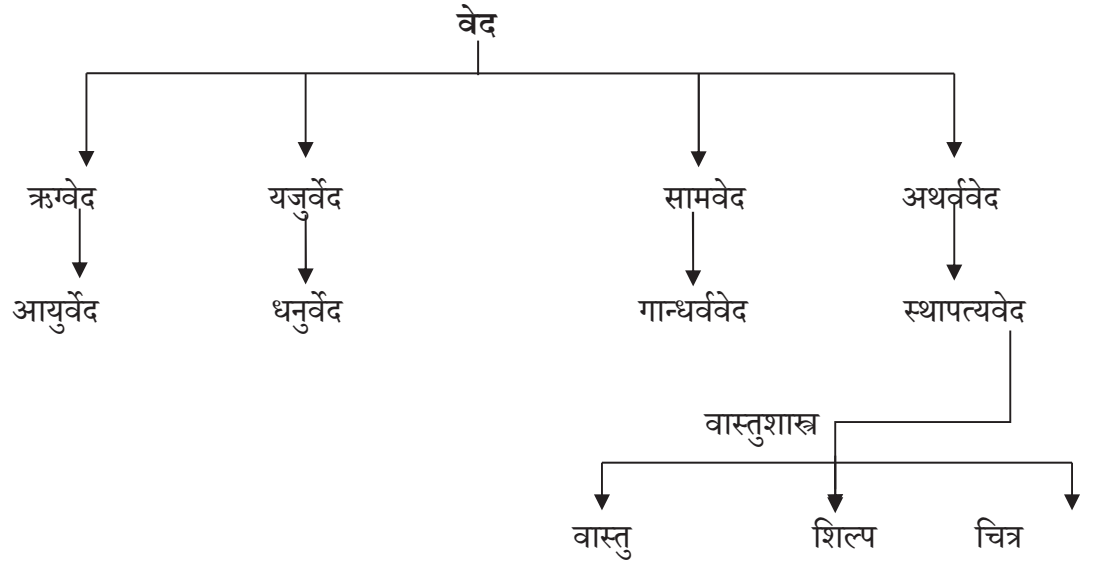
अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. वेदों की संख्या दस है।
2. आयुर्वेद सामवेद का उपवेद है।
3. ऋग्वेद में सुन्दर घर के लिए सुवास्तु शब्द का प्रयोग किया गया है।
4. शुल्व शब्द का अर्थ रज्जु नही है।
5. स्थापत्यवेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से है।
6. वैदिककाल में यज्ञवेदियों के निर्माण में वास्तुशास्त्र का प्रयोग होता था।
7. यूप की स्थापना वेदी से पश्चिम दिशा में होती थी।
8. वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है।

2.4. षड्वेदाङ्ग : सामान्य परिचय

जैसा कि आपको अब ज्ञात हो चुका है कि भारत की समस्त विद्याओं की तरह वास्तुविद्या का सूत्रपात भी वैदिककाल में ही हो गया था। परन्तु इस विद्या का वास्तविक विकास और पल्लवन उत्तरवैदिक काल में ही हुआ। वेदाङ्ग काल में यहां वास्तुविद्या को स्थिरता प्राप्त हुई वहीं पुराण और आगमकाल में इस विद्या का समुचित विकास हुआ और धीरे-धीरे यह वास्तुविद्या स्वतन्त्र शास्त्र का स्थान प्राप्त कर गई। वास्तव में वैदिककाल की यज्ञवेदी उत्तर वैदिककाल के भव्य-प्रासाद का मूल है। उत्तर वैदिककाल के साहित्य में छ: वेदाङ्गों और सूत्रसाहित्य की गणना होती है। शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरुक्त, छन्द और ज्योतिष संज्ञक छः वेदाङ्ग माने जाते है। तद्यथा-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षाघ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतं
तस्मात् साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते।।

इन छः वेदाङ्गों का विन्यास वेदपुरुष के शरीर में विविध अङ्गों के रूप में किया गया है। छन्दःशास्त्र को वेदपुरुष के पैर माना जाता है। कल्पसूत्रों को वेदपुरुष के हाथ माना जाता है। ज्योतिष-वेदाङ्ग को वेदपुरुष के शरीर में नेत्र का स्थान प्राप्त है। निरुक्तवेदाङ्ग को वेदपुरुष का श्रोत्रस्थान प्राप्त है। शिक्षा वेदपुरुष की नासिका है तथा व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है। इन छः वेदाङ्गों में से शिक्षा वेदाङ्ग में वर्णों तथा स्वरों का उच्चारणप्रकार वर्णित है। यथोक्तम्-

वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यया शिक्ष्यते उपदिश्यते वा सा शिक्षा

याज्ञवल्क्यशिक्षा, वासिष्ठीशिक्षा, कात्यायनीशिक्षा, पाराशरीयशिक्षा तथा **पाणिनीयशिक्षा** इस शिक्षा वेदाङ्ग से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। षड् वेदाङ्गों में से एक वेदाङ्ग व्याकरण है ।व्याकरण को वेद पुरुष का मुख माना गया है। वेदों के शुद्ध और स्पष्ट उच्चारण में इस व्याकरण की महत्वपूर्ण भूमिका है। महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण का प्रयोजन बताते हुए लिखा है – **"रक्षोहाहमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्"।** व्याकरण में शब्दों का प्रकृति-प्रत्ययपूर्वक विभाग किया गया है-

" येन शब्दाः प्रकृतिप्रत्ययाद्युपदेशरूपेण व्याक्रियन्ते तत् व्याकरणम् "। व्याकरण का प्रसिद्धतम् ग्रन्थ महर्षि **पाणिनी की अष्टाध्यायी** है। षड् वेदाङ्गों में एक अन्य वेदाङ्ग निरुक्तवेदाङ्ग है। इस वेदाङ्ग में व्याकरणादि के बिना शब्दों का व्युत्पत्तिपूर्वक अर्थ प्रकाशित किया जाता है। **यास्काचार्य द्वारा प्रणीत निरुक्त** इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इस वेदाङ्ग को वेदपुरुष का श्रोत्रस्थान प्राप्त है। षड् वेदाङ्गों में एक अन्य वेदाङ्ग छन्द है। जिसको वेदपुरुष के पैर माना जाता है। वेदों प्रायः छन्दोबद्ध ही है। इस वेदाङ्ग का प्रतिनिधित्व **पिङ्गलाचार्य का छन्दशास्त्र** करता है। वैदिक छन्दो के अतिरिक्त विविध काव्यों की रचना लौकिक छन्दों में की जाती है। लौकिक छन्दों के प्रतिनिधि ग्रन्थ श्रुतबोध,छन्दोमञ्जरी तथा वृत्तरत्नाकर है।

2.4.1. वेदाङ्गों में वास्तु का उद्भव और विकास

कल्पवेदाङ्ग को वेदपुरुष के शरीर में हाथ माना जाता है। इस वेदाङ्ग का साक्षात् सम्बन्ध वेद से माना जाता है। यथोक्तम्-

यत्र यागप्रयोगः कल्प्यते समर्थ्यते वा स कल्पः।

श्रोत-गृह्य-धर्म तथा शुल्वसूत्रों के नाम से चार प्रकार के कल्पसूत्र प्राप्त होते है। श्रोतसूत्रों में वेदविहित यागादिकर्मों की अनुष्ठानविधि का वर्णन प्राप्त होता है। गृह्यसूत्रों में गृहस्थों के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विविध यज्ञों तथा संस्कारों की अनुष्ठानविधि का वर्णन किया गया है। धर्मसूत्रों में वर्णाचार तथा आश्रमाचार का वर्णन है। शुल्वसूत्र का प्रयोग यज्ञवेदियों के निर्माण के लिए होता था। वस्तुतः षड्वेदाङ्गों में से वास्तुशास्त्र का एक सम्बन्ध इस वेदाङ्ग से है । यज्ञों का सम्पादन अत्यन्त विधिपूर्वक होता था ।विविध यज्ञों के सम्पादन हेतु विविध यज्ञवेदियों के निर्माण की परम्परा थी। इन यज्ञवेदियों का निर्माण अत्यन्त अनुशासनपूर्वक एक निश्चित मापन में किया जाता है। मापन हेतु शुल्व (रस्सी) का प्रयोग किया जाता था। शुल्वसूत्रों में प्रतिपादित इस मापन क्रम का प्रयोग कालान्तर में भव्य देवप्रासादों तथा राजप्रासादों में भी होने लगा। जिस प्रकार से वैदिक काल में

भवन की सुरक्षा की दृष्टि से चारों दिशाओं में रक्षा प्राचीर का निर्माण होता था उसी प्रकार से मौर्यवंशी,शुंगवंशी,शकवंशी राजाओं के शासन काल में भी स्तूप के चारों और वेदिका का निर्माण किया जाता था। इन सभी कार्यों में प्रमाण का महत्त्व सर्वाधिक है ।आज भी मापन को प्रत्येक निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। मापन किसी भी निर्माण का प्राण होता है । उसी प्रतिमा को पूज्य माना जाता है , जो मेय अर्थात् शास्त्रीय मान से निर्मित हो, मानरहित निर्मित प्रतिमा कितनी भी सुन्दर हो,वह पूज्य नहीं मानी जाती है। यथोक्तम्-

"प्रमाणे हि स्थापिता: देवा: पूजार्हाश्च भवन्ति ते ।"

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में प्रमाण का अत्यधिक महत्त्व है और प्रमाण का आधार कल्पवेदाङ्ग ही है। कल्पवेदाङ्ग के अन्तर्गत शुल्वसूत्रों से उद्भूत वास्तुशास्त्र अपने विकसित स्वरूप में गृहवास्तु. मन्दिरवास्तु तथा व्यावासिकवास्तु के रूप में तीन विभागों में विभक्त हो गया। कल्पवेदाङ्गान्तर्गत शुल्वसूत्रों से वास्तुशास्त्र के उद्भव और विकसित स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है।

वेदाङ्ग या शास्त्र
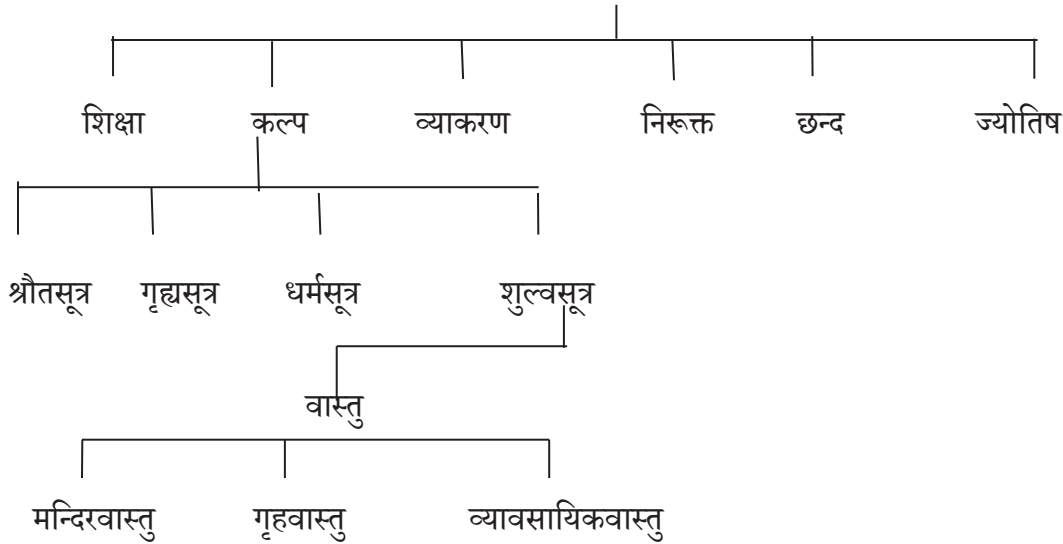
इसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध छः वेदाङ्गों में से एक ज्योतिष वेदाङ्ग से भी है। वास्तुशास्त्र भारतीय ज्योतिषशास्त्र की एक समृद्ध एवं विकसित शाखा है । इन दोनों में अङ्ग-अङ्गी भाव का विशेष सम्बन्ध है । जैसे शरीर का अपने विविध अङ्गो के साथ सहज और अटूट सम्बन्ध होता है। ठीक उसी प्रकार से ही ज्योतिषशास्त्र का अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं के साथ अटूट सम्बन्ध है। सामुद्रिकशास्त्र, स्वरशास्त्र, अंकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, शकुनशास्त्र और वास्तुशास्त्र

आदि ज्योतिषशास्त्र की विकसित शाखायें है और ज्योतिषशास्त्र रुपी वृक्ष ही इनके मूल में स्थित है।

ज्योतिषशास्त्र और इसकी शाखाओं में आपसी सम्बन्ध का कारण इन सभी शास्त्रों के उद्देश्यों में समानता होना है। ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र इन दोनों का विकास भी वैदिक धरातल पर ही हुआ है। दोनो ही शास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन से प्रेरित है। दोनों ही शास्त्रों का लक्ष्य मानवमात्र को सुविधा और सुरक्षा प्रदान करना है और दोनों ही शास्त्र मनुष्य के जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं पर विचार करते है। वास्तुशास्त्र का एक सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र से होने के कारण वास्तुशास्त्र भी मूल रूप से ग्रहों से ही सम्बन्धित है। इस शास्त्र का उद्भव ज्योतिषशास्त्र के संहितास्कन्धान्तर्गत माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण तीन स्कन्धों में विभक्त है ----

1. सिद्धान्त
2. संहिता
3. होरा

यथोक्तम् ---

"सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योति: शास्त्रमनुत्तमम॥"

सिद्धान्त :-

ज्योतिष शास्त्र के जिस स्कन्ध में त्रुट्यादि काल की गणना, सौरचान्दादिमासों
के भेदों का वर्णन, ग्रहचार के नियम, दिक्-देश-काल के ज्ञान की चर्चा, भूगोल-खगोल, व्यक्त और अव्यक्त गणित की चर्चा हो, उस स्कन्ध को सिद्धान्त स्कन्ध कहते है। यथोक्तम् ----

"त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेद: क्रमा—
च्चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तरा:
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्त: स: उदाहृदोऽत्रगणितस्कन्धप्रबन्ध बुधै: ॥"

यह सिद्धान्त स्कन्ध भी सिद्धान्त, तन्त्र और करण के रूप में त्रिविध विभक्त है, सिद्धान्त में गणितादि से, तन्त्र में युगादि से ग्रहगणित और करण में शकादि से ग्रहगणित होता है।

होरा :-

होरा स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का दूसरा स्कन्ध है। ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहों के द्वारा मनुष्यों

को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ, सुखदु:खादि का पूर्वानुमान करने की विधि का प्रतिपादन हो, उस स्कन्ध को होरा स्कन्ध कहा जाता है। यथोक्तम् ---

" होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पङ्क्तिं समभिव्यनक्ति।। "

अन्यञ्च----

" यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पङ्क्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।। "

होराशास्त्र के पांच विभाग है – जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न, स्वप्न।

संहिता स्कन्ध :-

यह ज्योतिषशास्त्र का तीसरा स्कन्ध है। जिस स्कन्ध में ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त और होरा स्कन्ध के अतिरिक्त सभी विषयों का विचार हो , उसे संहिता स्कन्ध कहते है। यथोक्तम् ---

" ज्योति: शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्।
तत्कात्स्न्योंपनस्य नाम मुनिभि: सङ्कीर्त्यते संहिता।। "

सम्भवत: यह स्कन्ध सिद्धान्त स्कन्ध से भी प्राचीन है। इस स्कन्ध के अन्तर्गत नारदसंहिता, गर्गसंहिता, पाराशरसंहिता, भृगुसंहिता, वासिष्ठसंहिता, बृहत्संहिता आदि मुख्यग्रन्थ है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहचार, ग्रहवर्ण, ग्रहगति, ग्रहसमागम, ग्रहयुद्ध, उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, इन्द्रधनुषलक्षण, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, वृक्षायुर्वेदविचार, अङ्गविद्या, वास्तुविद्या आदि का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत ही परिगणित किया है।

यथोक्तम् ----

" दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृति प्रमाण-वर्ण
-किरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागम
-चारादिभि: फ़लानि: नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:
सप्तर्षिचार: ग्रहभक्त्यो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागम
ग्रहवर्षफ़लगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधि
परिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घ
काण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तश्चक्र
मृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदो
गार्गलनीराजनखञ्जनकोत्पातशान्तिम्यूरचित्रकहतकम्बल-

-खड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोगजाश्वभपुरूषस्त्रीअलक्षणान्यन्त:
पुरचिन्ता पिटकलक्षणोपाछेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसन
-लक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानिशुभाऽशुभानि
निमित्तानि सामान्यानि च जगत: प्रतिपुरूषं पार्थिवे च
प्रतिक्षणमनन्य कर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि ॥ ”

इस प्रकार से इन सभी विषयों का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत होता है। वास्तुविद्या भी इन विषयों में अत्यन्त प्रमुख विषय है । बृहत्संहिता में ही आचार्य वराहमिहिर ने वास्तुविद्याध्याय, प्रासादाध्याय,प्रतिमालक्षणाध्याय, वज्रलेपाध्याय आदि वास्तुविद्या सम्बद्ध अध्यायों पर स्वतन्त्ररूप से चर्चा की है। ज्योतिषशास्त्रान्तर्गत संहिता स्कन्ध से वास्तुशास्त्र के उद्भव और विकास को आप इस प्रकार से समझ सकते है ---
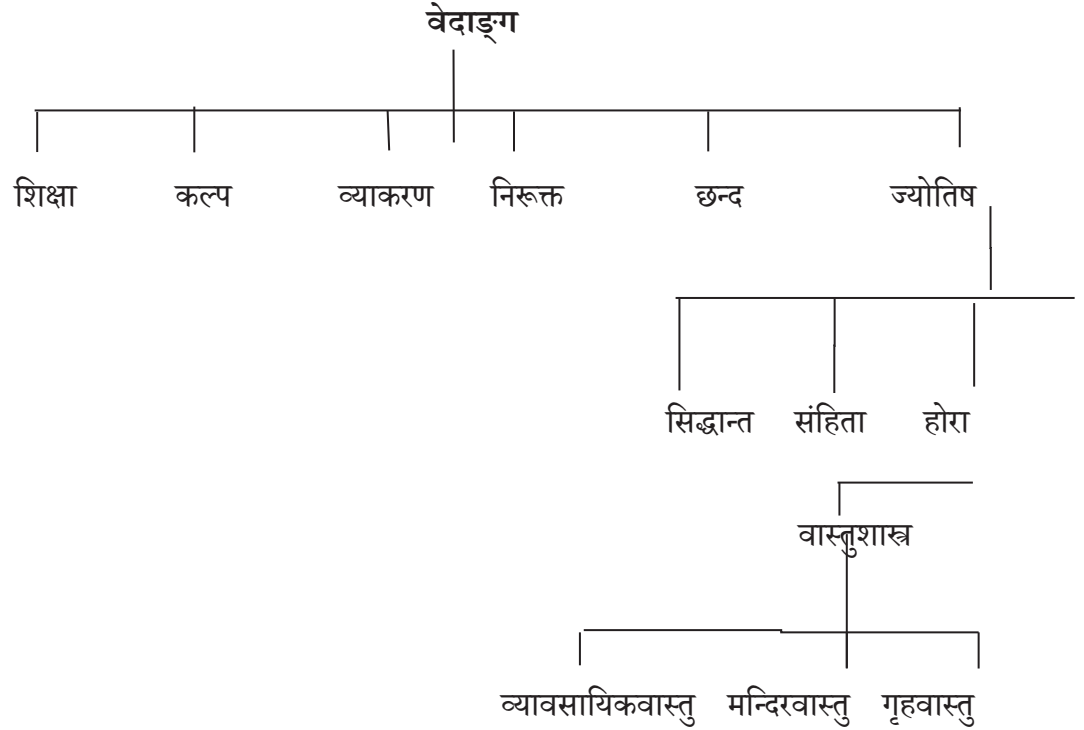
इस प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध वेदाङ्गज्योतिष और कल्प- वेदाङ्ग से है परन्तु इसका यह अभिप्रायः यह कदापि नही है कि वास्तु ज्योतिषशास्त्र और कल्पशास्त्र का अङ्ग मात्र ही है और इसका अपना स्वतन्त्र रूप नही है। वास्तु का सम्बन्ध ज्योतिष और कल्पवेदाङ्ग से तो है परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी है । जिस प्रकार से सभी भारतीय विज्ञानों का

पारस्परिक सम्बन्ध है, जैसे- पोरोहित्य, वेद, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद, धर्मशास्त्रादि सभी सम्बद्ध शास्त्र है उसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध भी सभी भारतीय विज्ञानों से है। जिनमें से ज्योतिष और कल्प वेदाङ्ग का वास्तुशास्त्र से सीधा सम्बन्ध है। वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में ज्योतिषशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा की गई है। ज्योतिषशास्त्र काल विषयक शास्त्र है। उसमें काल के विविध पक्षों का विचार किया गया है, परन्तु देशभेद से ही काल का विचार होता है। क्योंकि काल सर्वदा स्थान सापेक्ष ही होता है। ज्योतिषशास्त्र में काल की तथा वास्तुशास्त्र में दिशा की प्रमुखता है। परन्तु काल और दिशा दोनों ही स्थान पर आधारित है अर्थात देशसापेक्ष है। देश के ज्ञान के बिना दिशा और काल दोनों का ही ज्ञान नही हो सकता। इसलिए दिक्-देश और काल तीनों का ही आपसी सम्बन्ध है और अपना महत्व है। विशेषकर वास्तुशास्त्र में देवस्थापना, द्वारस्थापना, गृहारम्भ, प्रासादारम्भ, गृहप्रवेश, वापी-तड़ागादि का खनन, शिलान्यासादि अनेक विषयों में काल का महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य विश्वकर्मा ने काल का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है ----

" आदौ कालं परीक्षेत् सर्वकार्यार्थसिद्धये।
कालो हि सर्वजीवानां शुभाऽशुभफ़लप्रदः।।
कालातिक्रमणे दोषो द्रव्यहानिश्च जायते।
देवानामपि देवीनां विप्रादीनां विशेषत:।।
प्रासादभवनारम्भे स्तम्भस्थापनकर्मणि।
द्वारस्थापनवेलायां भवनानां प्रवेशने।।
वापीतडागनिर्माणे गोपुरारम्भकर्मणि।
विमानमण्डपरामगर्भगेहोद्धतो तथा।।
कालं शुभं परीक्षेत् मंङ्गलावाप्ति साधकम्।
देशभेदेन कालोऽपि भिन्नतां प्रतिपद्येत।।
इष्टिकान्यसनं शस्तं शुभकाले विशेषत:।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभं कालं न लङ्घयेत्।। "

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और काल का ज्ञान कालविधानशास्त्र ज्योतिष के अधीन है अत: काल के ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिए वास्तुशास्त्र के अनेक आचार्यों ने ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का एक अङ्ग मानते हुए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान वास्तुशास्त्र के अध्येताओं के लिए अनिवार्य कहा है। समराङ्गणसूत्रधारकार ने वास्तुशास्त्र

के आठ अङ्गों का वर्णन करते हुए अष्टाङ्गवास्तुशास्त्र की कल्पना की है और इन आठ अङ्गों के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र का सम्यक् प्रकार से ज्ञान होना सम्भव नही है। वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग इस प्रकार से है ----

" सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च ।
सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥
एतान्यंङ्गानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् ।
शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ "

सामुद्रिक, गणित, ज्योतिष, छन्द, शिराज्ञान, शिल्प, यन्त्रकर्म और विधि वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग है। वास्तुशास्त्र के आठ अङ्गों को इस प्रकार से समझ सकते है -

वास्तुशास्त्रम
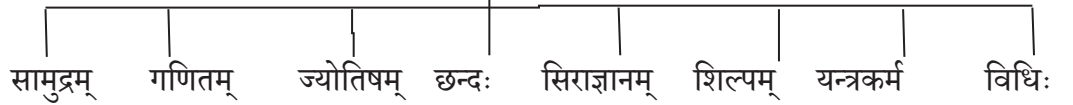
इस प्रकार से यहां कुछ आचार्यों के मत में वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का एक अङ्ग है, वहीं कुछ आचार्य ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का अङ्ग मानते हैं, परन्तु वास्तव में इन दोनों शास्त्रों का अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनों शास्त्र एक दूसरे के पूरक है तथा इन दोनों शास्त्रों का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण है। इन दोनों शास्त्रों का उपदेश हमारे आचार्यों ने मनुष्य के जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए किया है। इस शास्त्र की चर्चा वैदिक काल से आरम्भ होकर भारतीय सभ्यता के हर काल में हमें प्राप्त होती है। वेद, वेदाङ्ग, पुराण, रामायण, महाभारत आदि विविध कालों में रचित साहित्य में वास्तुकला के निदर्शन प्राप्त होते है जिससे इस शास्त्र की सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता का ज्ञान होता है। रामायण में कई पुरियों का वर्णन है जैसे- अयोध्यापुरी,किष्किन्धापुरी,लङ्कापुरी का वर्णन रामायणकाल की वास्तुकला और शिल्पकला का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। सुन्दरकाण्ड मे विभिन्न उद्यानों और पुष्पकविमान का वर्णन वास्तुशिल्प का एक अद्वितीय उदाहरण है। महाभारत में भी वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र के अद्भुत निदर्शन प्राप्त होते हैं। महाभारत में प्राप्त अनेक पुरियों का वर्णन उस काल के उत्कृष्ट वास्तुकौशल का परिचायक है। जैसे- इन्द्रप्रस्थपुरी, द्वारकापुरी और मिथिलापुरी का वर्णन वास्तुशास्त्र के पुरनिवेश की सङ्कल्पना का उदाहरण है। विभिन्न प्रकार के सभा भवन जैसे- पाण्डवसभा, यमसभा, वरुणसभा,

कुबेरसभा, इन्द्रसभा और लाक्षागृह का वर्णन भी वास्तुशास्त्र के उत्कृष्ट उदाहरण है । कौटिल्य-अर्थशास्त्र आदि उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में भी वास्तुशास्त्र की चर्चा दृष्टिगोचर होती है। वहां वास्तु की परिभाषा, दुर्गनिवेश, ग्रामनिवेश, नगरनिवेश, राष्ट्रनिवेश, भवन में द्वारविषयक चर्चा तथा ग्रन्थ में पुर-तोरण-प्रतोली आदि शब्दों के प्रयोग से एक बात तो निश्चित है कि कौटिल्यार्थशास्त्र के रचयिता वास्तुशास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान थे। मनुस्मृति में भी गुल्म-ग्राम-राष्ट्र-दुर्ग आदि के प्रसङ्ग से विविध वास्तुविषयों की चर्चा की गई है । शुक्रनीति में भी भवननिर्माण, राजधानी की स्थापना, राजप्रासाद, दुर्गनिर्माण, प्रतिमानिर्माण, मन्दिरनिर्माण और राजमार्गनिर्माण आदि वास्तु के विविध विषयों की चर्चा की गई है। आगम साहित्य में भी कई स्थानों पर वास्तुशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा प्राप्त होती है। कामिकागम के ४८ अध्यायों में वास्तुविद्या का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार से उत्तरवैदिककालीन साहित्य में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित चर्चाएँ अनेक स्थलों पर प्राप्त होती हैं। वैदिककाल में उद्भूत वास्तुशास्त्र का पल्लवन और विकास पौराणिक युग में अपने चरम पर पहुंच गया। लगभग सभी अष्टादशपुराणों में वास्तुशास्त्र की चर्चा कम या अधिक रूप में प्राप्त होती है। मत्स्यपुराण, अग्निपुराण,स्कन्धपुराण, गरूडपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वास्तुविषयक वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता है ।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. वेदाङ्गों की संख्या __________ है ।
2. व्याकरण को वेदपुरुष का ________ मानते है ।
3. कल्पवेदाङ्गान्तर्गत वास्तु का उद्भव ________सूत्र से हुआ ।
4. वास्तु का उद्भव ज्योतिषवेदाङ्ग के ________ स्कन्ध से हुआ ।
5. ज्योतिषशास्त्र के स्कन्धों की सङ्ख्या ____ है ।
6. ज्योतिषवेदाङ्ग को वेदपुरुष का _______ मानते है।
7. शुल्व शब्द का अर्थ_____ है ।

2.5. **सारांश --**

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि विविध भारतीय विद्याओं का मूल उद्गम वेदों से ही हुआ। वेद केवल आध्यात्मिक ज्ञान के ही स्रोत नहीं हैं अपितु विविध प्रकार के विज्ञानों के भी भण्डार है। मुख्य रूप से अथर्ववेद में विविध प्रकार के विज्ञानों के सूत्र प्राप्त होते हैं।

वास्तुशास्त्र का मूल उद्भव भी अथर्ववेद से ही माना जाता है । अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद ही वास्तुविद्या का मूल है। वैदिक काल में यहां वास्तुशास्त्र का उपयोग यज्ञवेदी और यज्ञशाला के निर्माण में ही होता था, वहीं उत्तरवैदिक काल में वास्तुशास्त्र के माध्यम से बडे-बडे भव्य देवप्रासादों, राजप्रासादों और वास्तुसम्मत भवनों का निर्माण होने लगा । वेद के विविध मन्त्रों में भव्य भवनों से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होता है। ''स्थापत्यवेद'' से उद्भूत वास्तुशास्त्र शनैःशनैः अपने विकसित स्वरूप में आया और विकास की यह परम्परा ''कल्पवेदाङ्ग'' और ''ज्योतिषवेदाङ्ग'' से होती हुई स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में दृष्टिगोचर हुई। वेदों के गूढार्थ के सम्यक् अवबोध हेतु षड् वेदाङ्गों की रचना हुई, जिनके नाम क्रमशः शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरुक्त,छन्द और ज्योतिष है । इन षड्वेदाङ्गों का महत्व इसी से ज्ञात हो जाता है कि इन वेदाङ्गों का विन्यास वेदपुरुष के शरीर में किया गया है । इसी कारण से महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में इन षड्वेदाङ्गों का अध्ययन अनिवार्य रूप से करने को कहा है । इन षड्वेदाङ्गों में से कल्पवेदाङ्ग तथा ज्योतिषवेदाङ्ग के साथ वास्तुशास्त्र का साक्षात् सम्बन्ध है। वास्तुशास्त्र का उद्भव कल्पवेदाङ्ग के अन्तर्गत शुल्वसूत्रों से हुआ । शुल्वशब्द का अर्थ ही रस्सी है। इसका प्रयोग वैदिककालीन विविध यज्ञों के सम्पादन के लिए यज्ञवेदियों के निर्माण में होता था । विविध प्रकार के यज्ञों के लिए विविध प्रकार की यज्ञवेदियों की रचना की जाती थी। इन यज्ञवेदियों का निर्माण एक निश्चित मान में ही किया जाता था। यह यज्ञवेदी ही कालान्तर में विविध प्रकार के भव्य भवनों में परिवर्तित हो गई।इन भव्य भवनों के निर्माण में भी उन्हीं मापन सिद्धान्तों का प्रयोग होता था, जिन सिद्धान्तों का प्रयोग यज्ञवेदी के निर्माण में किया जाता था ।अतः कहा जाने लगा कि भूमि पर यज्ञवेदी के रूप में उद्भूत वास्तुशास्त्र मन्दिर के शिखर के निर्माण से आकाश की ऊँचाई का स्पर्श करने लगा।कल्पवेदाङ्ग के अतिरिक्त वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध ज्योतिषवेदाङ्ग से है । ज्योतिषवेदाङ्ग के सिद्धान्त,संहिता और होरा के रूप में तीन स्कन्ध है । इन तीन स्कन्धों में से संहिता स्कन्ध से वास्तुशास्त्र का उद्भव माना जाता है। अपने विकासक्रम में वास्तुशास्त्र भी तीन भागों में विभक्त हो गया। जिन्हें गृहवास्तु, मन्दिरवास्तु तथा व्यावासयिकवास्तु कहा गया। इन तीनों प्रकार की वास्तु से सम्बन्धित कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई । इन ग्रन्थों में अष्टाङ्गवास्तु की कल्पना की गई। सामुद्रिक, गणित, ज्योतिष, छन्द, शिराज्ञान, शिल्प,यन्त्रकर्म और विधि वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग है । आप देख सकते है कि वास्तु के आठ अङ्गों मे ज्योतिष को भी एक अङ्ग माना गया। इसलिए वास्तु के प्रवर्तक आचार्य और ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्यों में कहीं-कहीं साम्यता भी दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार से वास्तु के विकासक्रम में ज्योतिष का अन्तर्भाव भी वास्तु के अङ्ग के रूप में हो गया ।

रामायण,महाभारत,कौटिल्यार्थशास्त्र,शुक्रनीति,कामिकागम आदि ग्रन्थों तथा विविध पुराणों में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते है । इसके अतिरिक्त रामायणकाल में अयोध्यापुरी,किष्किन्धापुरी,लङ्कापुरी तथा महाभारत काल में पाण्डवसभा, यमसभा, वरुणसभा, कुबेरसभा, इन्द्रसभा और लाक्षागृह का वर्णन भी तत्कालीन वास्तुकला के उन्नयन का परिचायक है। इस प्रकार से आपने जाना कि वास्तुशास्त्र का उद्भव किस प्रकार से हुआ और किस प्रकार से वास्तुशास्त्र अपने विकसित स्वरूप में एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रचलित हुआ।

2.6. पारिभाषिक शब्दावली

1) **आयुर्वेद -** आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद है , जिसमें विविध प्रकार की जड़ी-बूटियों तथा वनस्पतियों के माध्यम से रोगी की चिकित्सा की जाती है । यह भारतीय चिकित्सा पद्धति है। चरकसंहिता,अष्टाङ्गहृदय आदि आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

2)**धनुर्वेद** – यह यजुर्वेद का उपवेद है । इसमें अस्त्र.शस्त्र,व्यूहरचना एवं युद्धसम्बन्धी वर्णन प्राप्त होता है ।इसी उपवेद को सैन्य-विज्ञान का मूल माना जाता है ।

3) **गन्धर्ववेद** – यह सामवेद का उपवेद है ।इस वेद भारतीय संगीत,राग,सुर,गायन तथा वाद्य के सूत्र प्राप्त होते है । इसी को संगीतशास्त्र का मूल माना जाता है । कुछ आचार्यों ने इसे पञ्चम वेद भी कहा है । इसी से इस उपवेद का महत्व ज्ञात हो जाता है ।

4) **स्थापत्यवेद** – यह अथर्ववेद का उपवेद है । इस वेद में मुख्य रूप से भवन-निर्माण से सम्बन्धित भारतीय सिद्धान्तों के मूल विद्यमान है । इसी स्थापत्यवेद से उद्भूत यह विज्ञान कालान्तर में वास्तुशास्त्र के रूप में प्रख्यात हो गया।

5) **कल्पवेदाङ्ग-** यह छः वेदाङ्गों में से एक है । कल्पवेदाङ्ग के अन्तर्गत श्रोतसूत्र,गृह्यसूत्र,धर्मसूत्र और शुल्वसूत्रों की रचना हुई । इनमें से शुल्वसूत्रों का सम्बन्ध मापन से है ।मापन के इन सिद्धान्तों का प्रयोग प्राचीन काल में यज्ञवेदी के निर्माण में किया जाता था ।

6) **ज्योतिष**— ग्रहों की गति, स्थिति आदि के माध्यम से मनुष्य पर पडने वाले शुभाशुभ फ़ल का विचार जिस वेदाङ्ग में किया जाए, उसको ज्योतिष वेदाङ्ग कहते है । ज्योतिष वेदाङ्ग के तीन स्कन्ध है ।

1. सिद्धान्त
2. संहिता
3. होरा

वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध से है ।

2.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास – 1 की उत्तरमाला

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. असत्य
8. सत्य

अभ्यास – 2 की उत्तरमाला

1. छः
2. मुख
3. शुल्व
4. संहिता
5. तीन
6. नेत्र
7. रस्सी

2.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

2.9. सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

2.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1.) चार वेदों का विस्तृत परिचय दीजिए।
2.) चार उपवेदों का विस्तृत परिचय दीजिए।
3.) षड्वेदाङ्गों का विस्तृत परिचय दीजिए।
4.) वास्तुशास्त्र के उद्गम और विकास पर विस्तृत निबन्ध लिखें।
5.) वास्तु और ज्योतिष के सम्बन्ध पर निबन्ध लिखें।
6.) वास्तु और कल्प वेदाङ्ग पर निबन्ध लिखें।

इकाई - 3 वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक एवं आचार्य

इकाई की संरचना

3.1. प्रस्तावना

3.2. उद्देश्य

3.3. वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक

3.3.1. वास्तुशास्त्र की आचार्यपरम्परा

3.4. वास्तुशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्य

3.4.1. वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्य

3.5. सारांश

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

3.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.9. सहायक पाठ्य सामग्री

3.10. निबन्धात्मक प्रश्न

3.1. प्रस्तावना

" वसन्ति प्राणिनो यत्र " अर्थात प्राणियों के निवास स्थान को वास्तु कहा जाता है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वास्तु शब्द व्यापक अर्थ को समाहित किये हुए है। यह शब्द मात्र गृह के अर्थ में ही नहीं, अपितु गृह से सम्बन्ध रखने वाले धार्मिक , व्यवसायिक तथा समस्त भवनों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वास्तुशास्त्र के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिक और समृद्ध परम्परा का ज्ञान होता है। आदिकाल से ही विश्व की सभी संस्कृतियों में अपनी-अपनी मान्यताओं के आधार पर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु गृहनिर्माणादि की परम्परा थी । भारतीय परम्परा में गृहनिर्माण की यह परम्परा अत्यन्त सुनियोजित विधि से पाण्डुलिपियों में संरक्षित है , जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यह समस्त ज्ञानधारा एकाएक नहीं अपितु कई पीढ़ियों के अनुसन्धान व दैवीय शक्तियों से सम्पन्न आचार्यों के अथाह परिश्रम के फलस्वरूप वर्तमान काल में हमें प्राप्त हुई है । जिसमें देश-काल तथा परिस्थिति के आधार पर कालक्रमानुसार परिवर्तन भी होता रहा है परन्तु इस परिवर्तन में वास्तुशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों का पूर्णतः संरक्षण किया गया,जिससे आज भी हमें वास्तुशास्त्र का वही शुद्ध स्वरूप प्राप्त होता है । वास्तुशास्त्र के इस स्वरूप का वर्णन अनेक आचार्यों ने समय-समय पर किया । उन आचार्यों की एक दीर्घ सूची प्राप्त होती है । वास्तुशास्त्र के आचार्यों की संख्या के विषय में विविध ग्रन्थों में विविध मत प्राप्त होते है। इस इकाई में वास्तुशास्त्र के इन्हीं आचार्यों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों तथा उनकी रचनाओं से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक कौन थे ? वास्तुशास्त्र के विकास में किन आचार्यों का योगदान था ? वास्तुशास्त्र की आचार्य-परम्परा क्या है ? वास्तुशास्त्र के मुख्य ग्रन्थ कौन से है ?

3.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का उद्भव कैसै हुआ ?
- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों को जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र की आचार्यपरम्परा को समझ सकेंगे ।
- वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्यों को जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों से परिचित होगें ।

3.3. वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक

भारतीय परम्परा में प्रत्येक भारतीय शास्त्र के उद्भव के मूल में ईश्वरीय तत्त्व को स्वीकार किया गया है। वास्तुशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। वास्तुशास्त्र का मूल उद्गम ब्रह्मा जी से माना जाता है। ब्रह्मा जी को वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक के रूप में माना जाता है। पुराणों के अनुसार पृथु ने जब पृथ्वी को समतल किया और ब्रह्मा जी से पृथ्वी पर नगर- ग्राम आदि की रचना के सम्बन्ध में निवेदन किया। यथोक्तम् ---

" ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।
घोषान् व्रजान् सशिविरानाकारान् खेटखर्वटान्॥
प्राक् पृथोरिह नैतेषां पुरग्रामादिकल्पना।
यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः॥ "

पृथु के इस निवेदन को सुनकर ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से विश्वकर्मा आदि की उत्पत्ति की। ब्रह्मा के पूर्व मुख को विश्वभू, दक्षिण मुख को विश्वविद्, पश्चिम मुख को विश्वस्रष्टा और उत्तर मुख को विश्वस्थ कहा जाता है। ब्रह्मा के विश्वभू नामक मुख से विश्वकर्मा की, विश्वविद् नामक दक्षिण मुख से मय की, विश्वस्रष्टा नामक पश्चिम मुख से मनु की तथा उत्तर दिशा में स्थित विश्वस्थ नामक मुख से त्वष्टा की उत्पत्ति हुई। इन चारों का सम्बन्ध वास्तुशास्त्र से माना जाता है। इनमें से भी विश्वकर्मा, मय और त्वष्टा का तो साक्षात् सम्बन्ध वास्तुशास्त्र से है । विश्वकर्मा और मय की परम्परा तो वास्तुशास्त्र में अत्यधिक पल्लवित और विकसित हुई। कालान्तर में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थों की रचना की गई,जिनमें से कुछ आचार्यों ने विश्वकर्मा तथा कुछ आचार्यों ने मय की परम्परा का अनुसरण किया। इस शास्त्र के अध्येताओं और आचार्यों की एक अपनी विशिष्ट परम्परा थी। इसका शास्त्रीय और प्रायोगिक कलेवर द्विजों के ही परिश्रम का परिणाम था। वास्तुकला मर्मज्ञ सूत्रधार के गुणों की चर्चा करते हुए उसके द्विजत्व की भी चर्चा के गई है। यथोक्तम् ---

" सुशीलश्चतुरो दक्षः शास्त्रज्ञो लोभवर्जितः ।
क्षमायुक्तो द्विजश्चैव सूत्रधार स उच्यते ॥"

शनैः शनैः यह विद्या द्विजेतरों के हस्तगत हो गई और इस विद्या के अध्येताओं के ज्ञान, प्रयोग और चारित्रिक ह्रास के कारण यह विद्या अपना गरिमामय स्थान खो बैठी। विश्वकर्मा के शाप से दग्ध इस विद्या के अध्येता-शिल्पि विश्वकर्मा के शापित पुत्र कहलाए जो कि मालाकार, कर्मकार,

शंखकार, कुविन्द, कुम्भकार, कांस्यकार, सूत्रधार, चित्रकार, स्वर्णकार थे। ये विश्वकर्मा के शूद्रपुत्रों के रूप में विख्यात हुए। यथोक्तम् –

“ ततो बभूवु: पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिण:।
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दका:॥
कुम्भकार: कांस्यकार: स्वर्णकारस्तथैव च।
पतितास्ते ब्रह्मशापाद अयाज्या वर्णसङ्करा ॥”

इस प्रकार से विश्वकर्मा के ये सभी पुत्र विविध कलाओं में निष्णात थे । कालान्तर में अध्ययन से विमुखता के कारण विश्वकर्मा के इन पुत्रों का प्रायोगिक दृष्टि से तो विकास हुआ परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से ये शास्त्र के मर्म से अपरिचित होते गये। आज भी विविध कलाओं में निष्णात ये शिल्पी शास्त्रज्ञान से रहित दिखाई देते हैं।

3.3.1. वास्तुशास्त्र की आचार्यपरम्परा

वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों और पुराणों में प्राप्त होता है। **मत्स्यपुराण** में भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति इन अठारह आचार्यों का वर्णन किया गया है। यथोक्तम् ---

“ भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मामयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर:॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका:।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिण:॥”

अग्निपुराण में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या पच्चीस कही गई है। अग्निपुराण की इस सूची में हयशीर्ष (हयशीर्ष तन्त्र), गालव, त्रिलोकमोहन (त्रैलोक्यमोहन तन्त्र), नारद (नरदीय तन्त्र), विभव (विभव तन्त्र), सम्प्रश्न,पुष्कर (पौष्कर तन्त्र), शाण्डिल्य (शाण्डिल्य तन्त्र), प्रह्लाद (प्रह्लाद तन्त्र), विश्वक (वैश्वक तन्त्र), गर्ग (गार्ग्या तन्त्र), सत्य (सात्य तन्त्र), शुनक (शौनक तन्त्र), वशिष्ठ (वशिष्ठ तन्त्र), ज्ञानसार, स्वयम्भू (स्वायम्भुव तन्त्र), कपिल (कापिल तन्त्र), तार्क्ष्य, नारायण (नारायणिका तन्त्र), अत्रि (आत्रेय तन्त्र), नरसिंह (नारसिंह तन्त्र), आनन्द, अरुण (आरुण तन्त्र),

बौधायान, ऋषि (आर्ष) आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। तद्यथा-

" व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशति सङ्ख्यया।
हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।
नारदीयं च सम्प्रश्नं शाण्डिल्यं वैश्वकं तथा ॥
सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वशिष्ठं ज्ञानसागरम्।
स्वायम्भुवं कापिलं च ताक्ष्य नारायणीयकम् ॥
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारूणकम् ।
बौधायनं तथार्षं तु विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥"

वास्तुशास्त्र के एक अन्य मुख्य ग्रन्थ **मानसार** में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या बत्तीस कही गई है। मानसार में विश्वकर्मा, विश्वेश, विश्वेसार, प्रबोधक, वृत्र, मय, त्वष्टा, मनु, नल, मानवित, मानकल्प, मानसार, प्रष्टा, मानबोध, विश्वबोध, नय, आदिसार, विशाल, विश्वकाश्यप, वासुबोध, महातन्त्र, वास्तुविद्यापति, पाराशरीयक, कालयूपचैत्य, चित्रक, आवर्य, साधकसार, भानु, इन्द्र, लोकज्ञ और सूर्य इन आचार्यों का उल्लेख किया गया है । यथोक्तम् --

" विश्वकर्मा च विश्वेशः विश्वसारः प्रबोधकः ।
वृत्तश्चैव मयश्चैव त्वष्टा चैव मनुर्नलः ॥
मानविन्मानकल्पश्च मानसारो बहुश्रुतः ।
प्रष्टा च मानबोधश्च विश्वबोधो मयस्तथा ॥
आदिसारो विशालाश्च विश्वकाश्यप एव च ।
वास्तुबोधो महातन्त्रो वास्तुविद्यापतिस्तथा ॥
पाराशरीयकश्चैव कालयूपो महाऋषिः ।
चैत्याख्यः चित्रकः आवर्यः साधकसारसहितः ॥
भानुश्चेन्द्रश्च लोकज्ञः सौराख्यः शिल्पिवित्तमः ।
ते एव ऋषयः प्रोक्ता द्वाविंशति सङ्ख्यया ॥"

आचार्य वराहमिहिर ने **बृहत्संहिता** में गर्ग, मनु, वशिष्ठ, पाराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित, मय आदि सात आचार्यों की चर्चा वास्तुशास्त्रज्ञ के रूप में की है। **सनत्कुमार वास्तुशास्त्र** में ग्यारह वास्तुविदों का उल्लेख मिलता है। जिनके नाम क्रमशः ब्रह्मा,गौतम,भृगु,इन्द्र ,गार्ग्य, अंगिरा, यम, मनु, विश्वकर्मा, भार्गव, तथा व्यास है। **वास्तुकौस्तुभ** ग्रन्थ में शौनक, राम, रावण, परशुराम, हरि, गालव,

गौतम, शौभित, वैद्याचार्य, कार्तिकेय और च्यवन आदि आचार्यों का उल्लेख किया गया है। **विश्वकर्माप्रकाश** में पन्द्रह (१५) वास्तुविदों का उल्लेख मिलता है। जिनके नाम क्रमशः अगस्त्य , कश्यप, पालकप्य, नन्दी, लोकदर्शक, पुण्डरीक, नारद, कात्यायन,दीर्घदर्शी,बृहस्पति, मरीचि,पुनर्वसु,तिम्यलोक, चित्रतोयक तथा योगसार है। इसी प्रकार से रामायणकाल में वास्तुविद् के रूप में आचार्य नल और नील का वर्णन प्राप्त होता है। इन्होने ही समुद्र पर सेतु का निर्माण किया था। महाभारत काल में लाक्षागृह का निर्माण करने वाले आचार्य पुरोचन प्रमुख वास्तुविद् थे। आचार्य कश्यप का काश्यपशिल्प, अगस्त्य का सकलाधिकार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस प्रकार अनेक ग्रन्थों के अनुसार भिन्न-भिन्न वास्तुशास्त्रीय आचार्यों के नामोल्लेख का वर्णन प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र के कतिपय ग्रन्थ ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनका नाम ऋषियों के नाम पर रखा गया है।

1. अगस्त्य (अगस्त्य सकलाधिकार, अगस्त्य प्रोक्त सर्वाधिकार)
2. कश्यप (काश्यपशिल्प)
3. नारद (नारदसंहिता,नारदशिल्प)
4. नग्नजित् (चित्रलक्षण)
5. पिशुन (वास्तुविद्या)
6. पराशर (वास्तुशास्त्र)
7. विश्वकर्मा (विश्वकर्मशिल्प, विश्वकर्मपद्धति, विश्वकर्मप्रकाश, विश्वकर्मावास्तुशास्त्र,विश्वकर्म पुराण, विश्वकर्म संहिता)
8. सनत्कुमार (सनत्कुमार-वास्तु)
9. सिद्धार्थ (सिद्धार्थपृच्छा, सिद्धार्थ संहिता)
10. मय (मयमतम्,मयशिल्पशतिका, मयशिल्पशास्त्र विधान,मयवास्तु, मयशिल्प)

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों की सङ्ख्या के विषय में विविध मत है, परन्तु एक बात निश्चित है कि यह शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में विकसित था।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. वास्तुशास्त्र के मूल में ईश्वरीय तत्त्व है।
2. पृथ्वी को ब्रह्मा जी ने समतल किया।
3. ब्रह्मा जी के पश्चिम मुख की संज्ञा विश्वस्थ है।
4. मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के आचार्यों की संख्या 32 मानी गई है।
5. चित्रलक्षण ग्रन्थ के रचियता नग्नजित है।
6. नारदसंहिता की रचना महर्षि कश्यप ने की।
7. पुरोचन रामायण-कालीन वास्तुशिल्पी थे।
8. नल-नील महाभारत काल के वास्तुविद् थे।

3.4. वास्तुशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्य

जैसा कि आपने पढ़ा कि वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों की संख्या को लेकर विविध मत प्राप्त होते हैं,परन्तु इन सभी मतों में मत्स्यपुराण में प्रदत्त वास्तुशास्त्र के आचार्यों की संख्या ही सर्वसम्मत मानी जाती है। अपने उद्भव से लेकर वास्तुशास्त्र के जिन आचार्यों का विवरण प्राप्त होता है, उनमें से पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आचार्यों का वर्णन किया जा रहा है। कुछ पूर्ववर्ती आचार्य ऐसे भी है, जिनके विषय में अभी तक भी कुछ विशेष तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं। इसी क्रम में प्रप्रथम वास्तुशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों का वर्णन किया जा रहा है।

आचार्य भृगु

महर्षि भृगु के विषय में अनेक पौराणिक कथाएं प्राप्त होती हैं, जिनमें उन्हें ब्रह्मा का पुत्र माना गया है। इनका विवाह दैत्य कुल में हुआ। इनकी प्रथम पत्नी दिव्या (दैत्य हिरण्यकाश्यप की पुत्री) और द्वितीय पत्नी पौलामी (दानवाधिपति पुलोम ऋषि की पुत्री) थी। प्रथम पत्नी से दो पुत्र काव्य-शुक्र , त्वष्टा-विश्वकर्मा के नाम से विख्यात हुए। ये दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान थे। इनमें से काव्य-शुक्र खगोल शास्त्र तथा याज्ञिक-कर्मकाण्ड आदि में निष्णात था। मातृकुल में इन्हें आचार्य की उपाधि प्राप्त हुई, जो बाद में शुक्राचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। द्वितीय पुत्र त्वष्टा-विश्वकर्मा वास्तु एवं शिल्पशास्त्र में निपुण था तथा यह भी अपनी माता के कुल में ही मय नाम से प्रसिद्ध हुए। द्वितीय पत्नी से भी दो पुत्र प्राप्त हुए, जिनका नाम च्यवन और ऋचीक था।

इसी विषय में एक ओर आख्यान प्राप्त होता है। देवीभागवत , विष्णुपुराण, अग्निपुराण, श्रीमद्भागवत में प्राप्त वर्णन के अनुसार भृगु ऋषि प्रचेता ब्रह्मा के पुत्र थे और इनका विवाह प्रजापति की पुत्री ख्याति से हुआ। जिनसे उन्हें कालांतर में काव्य-शुक्र , त्वष्टा तथा एक पुत्री

श्री (लक्ष्मी) प्राप्त हुई। तदनंतर श्री/लक्ष्मी का विवाह भगवान विष्णु के साथ हुआ।

इस प्रकार से महर्षि भृगु के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। वर्तमान काल में ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित मनीषियों को इनके वंशानुक्रम का ज्ञान हो या ना हो किन्तु इनके द्वारा रचित **भृगुसंहिता** के विषय में ज्योतिषशास्त्र का प्रत्येक अध्येता विज्ञ है। महर्षि भृगु का ब्रह्मा के पुत्र होने के कारण ज्योतिष-वास्तु के ज्ञान में पारंगत होने पर तो किसी प्रकार का संशय नहीं किया जा सकता। इनके द्वारा रचित भृगु संहिता को ज्योतिष का मूल ग्रन्थ माना जाता है और ज्योतिषशास्त्र के अङ्गभूत होने के कारण आचार्य भृगु वास्तुशास्त्र के भी ज्ञाता थे। मत्स्यपुराण में इनकी गणना वास्तुशास्त्र के आद्याचार्यों में भी सर्वप्रथम की गई है। निश्चित रूप से इन्होंने वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित किसी ग्रन्थ की रचना भी की होगी परन्तु आज वह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

आचार्य अत्रि -

अत्रि ऋषि का वर्णन हिन्दू धर्मग्रंथों में कई स्थानों पर प्राप्त होता है। इन्हें भगवान ब्रह्मा का मानस पुत्र माना जाता है। इनकी धर्मपत्नी सती अनसूया है। आचार्य अत्रि को महर्षि की पदवी प्राप्त है और इनकी गणना सप्तऋषियों में होती है। माता अनुसूया से इन्हें तीन पुत्र हुए जो क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-महेश के अंशावतार ही माने जाते हैं। **ब्रह्मा ने चंद्र** के रूप में जन्म लिया, **विष्णु दत्तात्रेय** के रूप में अवतरित हुए और **भगवान शिव ने दुर्वासा** के रूप में जन्म लिया था। अत्रि ऋषि को ऋग्वेद में द्रष्टा ऋषि के रूप में भी स्वीकार किया जाता है तथा ऋग्वेद के पंचम मण्डल को इन्ही के नाम से (अत्रि मण्डल) कहा जाता है। महर्षि अत्रि के अनेक पुत्रवत् शिष्यों का वर्णन प्राप्त होता है जिन्होंने वैदिक ग्रंथों के संकलन में सहयोग प्रदान किया। न केवल ऋग्वेद अपितु आदिकाव्य रामायण तथा महाभारत में भी अत्रि ऋषि के विषय में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। रामायण में भगवान राम, लक्ष्मण और सीता के साथ महर्षि अत्रि के आश्रम में जाने और उनके साथ पास बैठ कर धर्म सम्बन्धी विविध चर्चाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इनके द्वारा वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित किस ग्रन्थ की रचना की गई? यह तो उपलब्ध नहीं होता परन्तु वास्तुशास्त्र के आद्याचार्यों में इनका स्पष्ट उल्लेख इस बात को पुष्ट करता है कि महर्षि अत्रि वास्तुशास्त्र के एक प्रमाणिक विद्वान थें। इनके द्वारा रचित वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ संस्कृतवाङ्मय के अन्य ग्रन्थों की ही तरह लुप्त हो चुके हैं।

आचार्य वशिष्ठ –

"ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः" ज्ञान के साक्षात्कार के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। भारतवर्ष में आदिकाल से ही इस ज्ञान परंपरा का अनुसरण ऋषियों,महर्षियों, तपस्वियों, आचार्यों के द्वारा किया गया है । मत्स्य पुराण में वर्णित वास्तुशास्त्र के १८ आचार्यों में तीसरे आचार्य के रूप में

आचार्य वशिष्ठ का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य वशिष्ठ की उत्पत्ति के विषय में दो मत प्राप्त होते हैं। एक मत के अनुसार वशिष्ठ को ब्रह्मा का मानस पुत्र माना जाता है और द्वितीय मत के अनुसार इनकी उत्पत्ति कुम्भ से मानी जाती है। महर्षि वशिष्ठ की गणना भी सप्तऋषियों में की जाती है। महर्षि वशिष्ठ ने जिन ग्रन्थों की रचना की, उनमें से एक प्रमुख ग्रन्थ वशिष्ठ संहिता है। यह ग्रन्थ 45 अध्यायों में विभक्त किया गया है। तद्यथा-

पञ्चोत्तरचत्वारिंशद्विपुलाध्यायैर्विराजते स्कन्धः।
अज्ञाज्ञानोपशमनमितरेषां बुद्धिवर्धनं नित्यम्।।

वशिष्ठ संहिता में 2743 श्लोक हैं। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ज्योतिष के विषय पर आधारित है किन्तु इसमे वास्तुशास्त्र के विषय को भी प्रतिपादित किया गया है। इस संहिता में 39वे अध्याय का नाम **वास्त्वध्याय** है जिसमें वास्तु से सम्बन्धित विषय का वर्णन पूर्ण रूप से प्राप्त होता है। इस अध्याय में वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित 222 श्लोक प्राप्त होते हैं जिनमे वास्तु के प्रत्येक मुख्य विषय को प्रतिपादित किया गया है। तद्यथा-

वास्तुज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
ग्रामसप्तपुरादीनां निर्माणं सूक्ष्मतोऽधुना।।

इस प्रकार वास्तु के विषय को प्रतिपादित करते हुए भूमिचयन, दिशाज्ञान, वास्तुपदमण्डल, गृहारम्भमुहूर्त, आय-पिण्ड साधन इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अन्त में वास्तुशान्ति और पूजन की विधि का भी विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। आचार्यवशिष्ठ के मतानुसार स्वस्तिवाचन और वास्तुशान्ति के पश्चात ही नवनिर्मित गृह में प्रवेश करना चाहिए। वास्तुपूजन के बिना गृहप्रवेश करने से रोगों तथा क्लेशों का सामना करना पड़ता है। यथोक्तम्-

वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे।
रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसंकटान्।।

आचार्य विश्वकर्मा

भारतीय संस्कृति में विश्वकर्मा को सृजन (निर्माण) का देवता माना गया है। वेदों में स्पष्ट रूप से विश्वकर्मा का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में विश्वकर्मा से सम्बन्धित सूक्त प्राप्त होता है, जिसमें 11 ऋचाएं है, जिसमें विश्वकर्मा को **विश्वकर्माभौवनऋषिः** की संज्ञा दी गई है। ना केवल ऋग्वेद अपितु यजुर्वेद में भी 16 मंत्रों में विश्वकर्मा का वर्णन किया गया है

" ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात......"

इस प्रकार वेदों में भी विश्वकर्मा की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वसम्पन्नता को दर्शाया गया है। माना

जाता है कि एक ही समान गुण-धर्मों से युक्त अनेक ऋषि हुए और कालांतर में गुणों की दृष्टि से समानता होने के कारण उन्हें विश्वकर्मा की उपाधि प्रदान की गई।

प्राचीन ग्रन्थों,उपनिषदों,पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदिकाल से ही विश्वकर्मा शिल्पी अपने निर्माण सम्बन्धी अतिवशिष्ट ज्ञान के कारण मानवों में ही नहीं ,अपितु देवताओं में भी पूज्य हैं । वैदिक ऋचाओं में, पुराणों में, काव्यों में नगर, पुर, प्रासाद, ग्राम, खेट, शस्त्र,विमान इत्यादि सभी प्रकार के निर्माण भगवान विश्वकर्मा के द्वारा ही किये जाते हैं । विश्वकर्मापुराण में तो यहाँ तक वर्णन प्राप्त होता है कि स्वयं ब्रह्मा-विष्णु-महेश को बनाने वाले भी भगवान विश्वकर्मा ही हैं। इस प्रकार से विश्वकर्मा को निर्माण के देवता के रूप में यदि स्वीकार किया जाए तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वकर्मावास्तुशास्त्रम् एक प्रमुख ग्रन्थ है। विश्वकर्मावास्तुशास्त्र ग्रन्थ के रचियता विश्वकर्मा को माना गया है । इसकी प्राचीनता को लेकर विद्वानों में मतभेद है। **प्रो. प्रसन्न कुमार आचार्य** के अनुसार यह ग्रन्थ पूर्व में अप्राप्य रहा होगा क्योंकि इनकी पुस्तक **एन एनसाक्लोपीडिया ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर** में वास्तुशास्त्र के प्राप्त ग्रंथों की सूची में इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं है। जिससे स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ एनसाक्लोपीडिया की रचना तक अप्राप्य था।यह वास्तुशास्त्र पर रचित स्वतंत्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के प्रमाण इतिहास ग्रंथों में भी प्राप्त होते हैं और इसका लेखनकाल सोलहवीं शताब्दी में माना जाता है । इस ग्रन्थ में वास्तुविषयक सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियों, नियमों तथा उनके मानकों को प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में 87 अध्याय हैं और अधिकांश श्लोक अनुष्टुप छन्द में हैं। इस ग्रन्थ में भगवान शङ्कर का स्तुतिपरक मंगलाचरण करते हुए ग्रन्थ का आरम्भ किया गया है। इसके आरम्भ में ही शिल्पशास्त्र के ज्ञान को अनिवार्य बताते हुए शिल्पशास्त्र के ज्ञान के बिना संसार में वास को ही दुष्कर माना गया है। यथोक्तम्-

शिल्पं विना नहि जगत्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
जगद्विना न शिल्पञ्च वर्तते वासव प्रभो।।

शिल्पशास्त्र की महत्ता को बताते हुए वास्तुशास्त्र के विभिन्न विषयों को विश्वकर्मा ने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया हैं। यह ग्रन्थ वास्तुविद्या का प्रतिनिधित्व करने वाला एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें भवन, देवालय, ग्राम, खेट, नगर, पुर इत्यादि तथा साथ ही साथ समुद्र, नदी, जलाशय, कूप, छोटे-छोटे जलस्रोतों का पहाड़-जंगल-जल में स्थित प्रासादों का भी वर्णन किया गया है। वास्तुशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हमें इस ग्रन्थ के माध्यम से प्राप्त होता है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में आचार्य विश्वकर्मा का नामोल्लेख प्राप्त होता है। मानसार नामक ग्रन्थ में विश्वकर्मा का वर्णन ब्रह्माण्ड के कर्ता के रूप में हुआ है।

वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में भी विश्वकर्मा का उल्लेख स्पष्टतया प्राप्त होता है । समराङ्गणसूत्रधार और अपराजितपृच्छा के अनुसार इतिहासकार डॉ. डी. एन. शुक्ल जी ने विश्वकर्मा को प्रभास वसु का पुत्र बताया है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित पुष्पक विमान का निर्माण भी भगवान विश्वकर्मा ने स्वयं ब्रह्मा जी के लिए किया था। महाभारत में वर्णित सभागार का निर्माण भी स्वयं विश्वकर्मा के द्वारा स्फटिकों के माध्यम से किया गया था।

आचार्य मय

आचार्य मय के पिता का नाम कश्यप था और इनकी माता दिति थीं। कश्यप और दिति (दुन) के पुत्र, नमुचि का भाई मय एक प्रसिद्ध दानव था। ये ज्योतिष और शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ थें । ज्योतिष से अधिक वास्तुशिल्प के क्षेत्र में इन्हें ख्याति प्राप्त हुई। आदिकाल से ही इन्हें दानवों के विश्वकर्मा के रूप में जाना जाता है। पुराणों से लेकर आदिकाव्य रामायण तथा महाभारत में भी इनके द्वारा निर्मित भवन-सभागार इत्यादि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इनकी दो पत्नियां थीं हेमा और रम्भा, जिनसे उन्हें पाँच पुत्र और तीन कन्याएं प्राप्त हुई। रामायण के अनुसार मय को दशानन रावण का ससुर भी माना जाता है क्योंकि मन्दोदरी मयासुर की ही कन्या थीं।

महाभारत में **मयसभा** का वर्णन प्राप्त होता है जिसे स्वयं मयासुर ने क्षमाप्रार्थी होकर युधिष्ठिर के लिये बनाया था। वस्तुतः खाण्डववन में अग्नि संकट के समय भगवान श्रीकृष्ण ने चक्र से मयासुर का वध करना चाहा किन्तु अर्जुन ने उसे बचा लिया अतः बदले में मयासुर ने एक अद्भुत सभागार का निर्माण किया जिसे बाद में मयसभा के नाम से प्रसिद्धि मिली।

शिवपुराण के अनुसार मयासुर बहुत ही भक्तिभाव वाला दानव था। उसका जन्म तो राक्षस कुल में हुआ,परन्तु वह धर्म के मर्म का ज्ञान रखता था और सदैव असुरभाव से दूर रहता था । भगवान शङ्कर ने प्रसन्न होकर इनको विततलोक का राज्य प्रदान किया। इन्होंने वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ मयमतम् की रचना की। मयासुर द्वारा रचित मयमतम् नामक ग्रन्थ अद्भुत कृति है। इसके अतिरिक्त मय के अन्य ग्रन्थ भी हैं जिनमें से **मयवास्तु तथा मयशिल्पशास्त्र** तेलगु लिपि में प्राप्त होता हैं। मयमतम का प्रथम संस्करण श्री टी. गणपति शास्त्री द्वारा १९११ ई. में " अनन्तशयन संस्कृत-ग्रंथावली " के ग्रन्थाङ्क ६५ में प्रकाशित हुआ था। वर्तमान में यह ग्रन्थ चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन द्वारा डॉ. शैलजा पाण्डेय कृत हिन्दी टीका में भी उपलब्ध होता है।

आचार्य मय के इस वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ में छत्तीस ३६ अध्याय हैं जिन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है । मयमतम् में वास्तु शब्द की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि **मर्त्य** और **अमर्त्य** के लिय उपयुक्त स्थान को **वस्तु** एवं **वास्तु** कहते है । तद्यथा-

अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यत्र यत्र वसन्ति हि।

तदवस्त्विति मतं तज्ज्ञैस्तद्भेदं च वदाम्यहम् ॥

मयमतम् में प्रतिपादित विषयों के आधार पर हम इसको चार भागो में विभक्त कर सकते हैं, जिसमें सभी विषयों का प्रतिपादन हो जाता है। **प्रथम १-१०** अध्याय जिन में वास्तुशास्त्र, गृह, भूमि, धार्मिक कृत्य, मापन पद्धति,शिलान्यास से सम्बन्धित वास्तुशास्त्र के मुख्य विषयों का समावेश किया गया है। **द्वितीय ११-२०** अध्याय जिनमें निर्माण से सम्बन्धित विषयों जैसे स्थापत्यसिद्धांत, दिङ्-निर्णय, पदविन्यास को दिया गया है **तृतीय २१ से ३०** अध्याय जिनमें गृह निर्माण से सम्बन्धित भवन, ग्राम तथा नगर विन्यास आदि विषय **चतुर्थ ३१-३६** अध्याय में चतुर्विधवास्तु के भेद अनुसार इस खण्ड में अंतिम दो अध्यायों में वाहन और शयन के साथ-साथ प्रतिमा विज्ञान के विषय में बताया गया है।

आचार्य नारद

आचार्य नारद का नाम भगवान ब्रह्मा के छः पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र के रूप में प्राप्त होता है। इन्होंने कठिन तपस्या के मध्यम से ब्रह्मऋषि का पद प्राप्त किया था। यह भगवान विष्णु के अनन्य भक्त माने जाते हैं और निरन्तर नारायण नाम सुमिरण में लगे रहते हैं। यह धर्म के प्रचार तथा लोककल्याण की दृष्टि से सदा प्रयत्नशील रहते हैं। शास्त्रों में इन्हें भगवान का मन माना गया है। सम्भवतः इसी कारण से सर्वत्र समस्त लोकों में इनकी गति मानी जाति है। इनकी इसी महानता के कारण ही इन्हें गीता के २६वें अध्याय में भगवान ने स्वयं को नारद के रूप में ही बताया है। अथर्ववेद से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों,उपनिषदों , पुराणों तथा आदिकाव्य में भी इनका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है ।इनके नाम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि **नारं ददातीति नारदः** नारं अर्थात् परमात्मविषयकं ज्ञानं ददातीति " सदा ज्ञान को प्रदान करने वाला।

वास्तुशास्त्र के प्रमुख १८ आचार्यों में नारदमुनि का नाम छठे स्थान पर प्राप्त होता है। इनके दो मुख्य ग्रन्थ प्राप्त होते है, जिनमें वास्तु के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है, जिसके आधार पर यह निश्चित माना जा सकता है कि महर्षि नारद भी वास्तुशास्त्र के मुख्य आचार्यों में से एक हैं, इनके यह दोनों ग्रन्थ वर्तमान में सुलभता से प्राप्त हैं। वैसे तो यह दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ न होकर एक ही हैं, किन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि यह भेद ग्रंथ के आधार पर नहीं अपितु लेखन शैली और काल के अनुसार है। इन दोनों ग्रंथों में श्लोकों की विभिन्नता नाम मात्र ही प्राप्त होती है। इस ग्रंथ का अध्ययन करने से प्राप्त होता है कि इस ग्रंथ में वास्तुशास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों पर प्रकाश डाला गया है तथा इस सम्पूर्ण संहिता में **वस्तुविधान अध्याय** एवं **वास्तुलक्षण अध्याय**

नामक दो सम्पूर्ण अध्यायों का ही प्रतिपादन किया गया है। संहिता के ३१ वें अध्याय में वास्तुसंबद्ध ६२ श्लोकों का वर्णन प्रप्त होता है, जिसमें प्रथमतया भूमि शोधन का ही वर्णन किया गया है। तद्यथा-

निर्माणे पत्तनग्रामगृहादीनां समासतः।
क्षेत्रमादौ परीक्षेत् गन्धवर्णरसप्लवैः ।।

अर्थात गृह, ग्राम तथा शहर के निर्माणकाल के समय सर्वप्रथम संक्षेप में गन्ध-वर्ण-रस-प्लव आदि के द्वारा भूमि की परीक्षा करनी आवश्यक होती है। इस प्रकार भूमिशोधन से अध्याय का आरम्भ कर दिक्-साधन, दिशाक्रमानुसार द्वारफल का विवेचन तथा वास्तुचक्र निर्माण का विधान किया गया है।इसके पश्चात अष्टकवर्ग विचार, काकिणी विचार, पिण्डसाधन, शंङ्कुरोपण आदि वास्तु निर्माण कार्य के समय प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट मापन विधियों का सविस्तार विवेचन किया गया है। काकिणी विचार को नारदसंहिता में ऋणी-धनी विचार नाम से संज्ञा दी गई है।तद्यथा-

विभजेदष्टभिः शेषः साधकस्य धनं भवेत्।
व्यत्यये नाशकं तस्य ऋणमल्पं धनाच्छुभम्।।
स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्।।

इसके पश्चात नारद संहिता में कक्षविन्यास का विवेचन किया गया है। जिसमें षोडशकक्षों का विन्यास किया गया है और उनकी दिशा के विषय में भी विवेचन किया गया है। नारदसंहिता में गृह समीप निन्दित वृक्षों का वर्णन किया गया है।देश-काल के अनुसार गृह की ऊंचाई के अनुसार मान को भी बताया गया है। यथोक्तम् –

स्नानागारं दिशि प्राच्यमाग्नेय्यां पचनालयम्।
याम्यायां शयनागारं नैऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्।।
एवं कुर्यादिदं स्थानं क्षीरपानाज्यशालिकाः।
शय्यामूत्रास्त्रतद्विद्याभोजनामंगलाश्रयाः ।।
धान्यस्त्रीभोगवित्तं च श्रृङ्गारायतनानि च।
ईशान्यादिक्रमस्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम्।।

इस प्रकार १६ प्रकार के जीवनोपयोगी कक्षों के दिशा के अनुसार स्थापना का विधान
बताया गया है जो कि गृहस्वामी के लिये लाभकारक और धन की वृद्धि करने वाला होता है। यथा पूर्वादि से प्रदक्षिणा क्रमानुसार स्नानागार, भोजनालय, शयनागार, शस्त्रागार, दुग्धगृह, जलपानस्थान,

घृतगृह, शय्या, मूत्र, शस्त्र, भोजनस्थान इत्यादि कक्षों का निर्माण प्रशस्त कहा गया है । गृह की भित्तियों के निर्माण के विषय में चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिसमें घर की दीवारों को एक सामान्य मध्यम मान के अनुसार ही रखने का निर्देश किया गया है । तद्यथा-

"नात्यच्छितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचिः ।"

वास्तुपदमण्डल का शुभाशुभ विचार लक्षण, वास्तु निर्माण, वास्तुपूजनविधि और एकशीतिवास्तुपदमंडल का कोष्ठकों के आधार पर यथाविधि विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है,जिसको चक्र के माध्यम से बहुत ही सरल रूप में समझाया गया है। ईशान कोण से आरम्भ कर क्रमशः ३२ देवताओं का वर्णन कर उन्हें प्रथम पूजनीय बताया गया है,तत्पश्चात पुनः वास्तुचक्र के भीतर स्थित १३ देवताओं का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है ।इस प्रकार वास्तुपदमण्डल के ४५ देवताओं का वर्णन किया गया है ।

नारदीय संहिता –

नारदीयसंहिता के नाम से एक अन्य ग्रन्थ प्राप्त होता है । इस पञ्चरात्रागामीय नारदीय संहिता को ३० अध्यायों में विभक्त किया गया है। कतिपय विद्वानों ने इसको ३१अध्यायों में भी विभाजित किया है ।वस्तुतः यह संहिता महर्षि गौतम को नारद मुनि द्वारा सुनाई गई है, इसीलिये इसका नाम नारदीय संहिता रखा गया है । संक्षेप में यदि देखा जाए तो यह ज्ञान गंगा भगवान वासुदेव के मुखारविंद से नारद मुनि को प्राप्त हुई। नारदमुनि ने यह ज्ञान महर्षि गौतम को प्रदान किया,तत्पश्चात भृगु ऋषि, तदनंतर अत्रि को यह ज्ञान प्राप्त हुआ। इस संहिता में वास्तुशास्त्र की दृष्टि से सम्पूर्ण स्थापत्य कला का ६ अध्यायों के माध्यम से व्याख्यान किया गया है । इसमें अध्याय १३ से लेकर १८ अध्याय तक वास्तुशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्राप्त होता है ।इस ग्रन्थ में महर्षि गौतम द्वारा प्रश्न किया जा रहा है और नारदमुनि उनकी सभी शंकाओं का निवारण करते जा रहे हैं । इस संहिता में ३० शंकाएं हैं जिन्हे अध्याय के रूप में प्रस्तुत किया गया है । यथोक्तम् –

अद्य मे भगवन् ब्रूहि प्रासादस्य च लक्षणम् ।
यस्मिन् संस्थाप्य देवेशं नरः प्राप्नोति सद्गतिम् ।।

आचार्य नग्नजित्

आचार्य नग्नजित के विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं । चित्रलक्षण नामक ग्रन्थ में प्राप्त कथा के अनुसार नग्नजित को आदि चित्रकार व चित्रविद्या के प्रवर्तक माना गया है । प्राचीन काल में पृथ्वी पर एक भयजित नाम के राजा रहते थे। वह बहुत ही यशस्वी और धर्मात्मा थे । अपनी तपश्चर्या से वह बहुत शक्तिशाली हो गए। उनकी प्रजा निर्भय होकर रहती थी । एक बार

प्रजा में एक ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु के कारण उन्होंने यम से युद्ध किया। जब यम को हार का अनुभव हुआ, तभी वहाँ ब्रह्मा जी पधारे और राजा को बालक का चित्र बनाने को कहा और उसमें प्राण डाल दिए। इस प्रकार वह बालक पुनः जीवित हो गया । तब ब्रह्मा जी ने राजा भयजित् को वरदान दिया कि तुमने नग्नप्रेतों को भी जीत लिया,इसलिये तुम्हारा नाम आज से नग्नजित है

" अथ ब्रह्मा नृपं प्राह नग्नं प्रेतं निवारय ।"

तुम्हारे द्वारा चित्रित यह प्रथम चित्र है । इस विद्या के द्वारा संसार का बड़ा कल्याण होगा और तुम संसार में सदा पूजनीय होगें । शतपथ ब्राह्मण में भी एक गान्धार-राजा का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत में भी कई स्थानों पर नग्नजित नाम का उल्लेख मिलता है तथा जैनसूत्रों में भी गांधार-राजा नग्नजित का उल्लेख मिलता है । वर्तमान में एक चित्रलक्षण नामक ग्रन्थ भी प्राप्त होता है, जिसके मात्र तीन ही अध्याय प्राप्त होते हैं। सम्भव है कि इस ग्रन्थ में इससे अधिक भी अध्याय हो किन्तु अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं । चित्र लक्षण में प्राप्त प्रमाण के अनुसार तो **नग्नजित् विश्वकर्मा के ही शिष्य हैं** जिन्होंने ब्रह्मा जी के आदेश पर विश्वकर्मा से चित्रविद्या का ज्ञान प्राप्त किया । चित्र-लक्षण की मूल प्रति में **नग्नजिच्चित्रलक्षणनिर्देश** इस प्रकार से ग्रन्थ का आरंभ किया गया है अतः यह माना जा सकता है कि चित्रलक्षण नग्नजित् का ही है जिसका वर्णन वास्तुशास्त्र के अष्टादश आचार्यों में किया गया है क्योंकि चित्र और मूर्ति निर्माण को वास्तुशिल्प का ही अंग माना जाता है, इसीलिये इनके नाम को भी मुख्य आचार्य के रूप में ग्रहण किया गया है । चित्रलक्षण के तीन अध्याय ही वर्तमान में प्राप्त होते हैं। विद्वानों का मत है कि इसका कुछ ही अंश वर्तमान में प्राप्य है । इसके रचनाकाल के विषय में भी संदेह है किन्तु तथापि यह माना जाता है कि छठी शताब्दी से पूर्व इसकी प्रसिद्धि हो चुकी थी क्योंकि वराहमिहिर की बृहद्संहिता में दो स्थानों में इसका उल्लेख मिलता है।

चित्रलक्षण में तीन अध्याय हैं । इसके मंगलाचरण में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में विश्वकर्मा-प्रह्लाद-नग्नजित् इन तीनों के द्वारा निर्दिष्ट सिद्धांतों को इसमे संगृहीत किया गया है।तद्यथा-

विश्वकृन्नग्नजिद्देवप्रह्लादसारमुज्ज्वलम्।
लक्षणमनुसृत्यैच विदुषां सुधियां पुनः॥

इस ग्रन्थ के अनुसार ब्राह्मण पुत्र का चित्र बनाने के बाद नग्नजित् ने ब्रह्मा जी से प्रश्न किए और उनकी जिज्ञासा को देखते हुए भगवान ब्रह्मा ने उन्हें विश्वकर्मा जी के पास भेजा तथा विश्वकर्मा जी के द्वारा नग्नजित् को चित्र विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ । अतः नग्नजित् विश्वर्मा के ही शिष्य हैं । तद्यथा -

नग्नजिद् गच्छ तस्मात् त्वं विश्वकर्म समीपतः। लक्षणविधिमानं च तुभ्यं स उपदेक्ष्यति॥

द्वितीय अध्याय में २३ श्लोक हैं तथा इस अध्याय को चित्रलक्षण में पूजन पद्धति नाम से कहा गया है “। इस अध्याय में चित्रविद्या की उत्पत्ति के विषय में भगवान विश्वकर्मा जी द्वारा नग्नजित् को ज्ञान दिया गया है तथा किस प्रकार ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि का आरम्भ हुआ। शनैः शनैः सभी देवी-देवताओं की उत्पत्ति हुई और उनके पूजन के लिय उनकी प्रतिमा भी प्रकट हुई। सभी देवता अपने चित्रों को देख कर प्रसन्न हुए और ब्रह्मा जी ने कहा कि इन्हीं मूर्तियों को यथाविधि पूजन-आहार आदि प्रदान कर संसारिक जन कृतार्थ होगे ।तद्यथा-

लोकपूजाव्यवस्थायै प्रतिमानां यथायथम्। नामादिकीर्तनं कार्य स्तवपूजादिकं तथा॥

प्रतिमां यां प्रतिदिनं पुण्यात्मा पूजयिष्यति। तयैव दीयते शान्तिस्तस्मै भक्ताय सर्वतः॥

तृतीय अध्याय में चित्र-मूर्ति इत्यादि के परिमाण के विषय में बतया गया है किस देवता की कितने प्रमाण की मूर्ति होनी चाहिय इस विषय में सम्पूर्ण जिज्ञासा का शमन किया गया है । इस अध्याय में सर्वाधिक १६५ श्लोक प्राप्त होते हैं । इसमें चित्र निर्माण के समय ध्यान रखने योग्य सभी नियमों का विस्तार से वर्णन किया गया है ।इस अध्याय में शरीर के विभिन्न अंगों का चित्र की दृष्टि से विवेचन किया गया है तथा विशेष रूप से पाँच प्रकार की आँखों का वर्णन करते हुए कहा है कि **भोगी** की चक्षु **धनुराकृति** की**, सर्वसाधारण की उत्पलाकृति की , राजा-रमणी और प्रेमिका** के चक्षु **मत्स्योदराकृति** के, **मोह और क्रोध** में चक्षु **कीड** के सदृश, **भय और क्रन्दन** में **पद्मपत्राकृति के** चक्षु होने चाहिए।इस प्रकार से आचार्य नग्नजित चित्रकला के प्रवर्तक आचार्य हैं।

आचार्य विशालाक्ष-

आचार्य विशालाक्ष के विषय में तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में अभी तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है । सम्भव है कि संस्कृत के अनेकों आचार्यों की तरह इन्होंने अपने द्वारा रचित ग्रन्थों में अपना नामोल्लेख नहीं किया हो। परन्तु 18 प्रवर्तक आचार्यों में इनकी गणना इनके वास्तुशास्त्रीय ज्ञान के प्रमाण की परिचायक है ।

आचार्य पुरन्दर-

आचार्य पुरन्दर के विषय में भी कोई प्रामाणिक ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। **पुरन्दर** नाम का एक दुर्ग है,जो वर्तमान में महाराष्ट्र में स्थित है । जिस प्रकार से मय द्वारा रचित सभा का नाम **मयसभा** था, उसी प्रकार इस दुर्ग का सम्बन्ध भी आचार्य पुरन्दर से होने की सम्भावना व्यक्त की जाती है । यह दुर्ग महान मराठा राजा छत्रपति शिवाजी द्वारा कृत **पुरन्दर की संधि** के नाम से भी प्रसिद्ध है, यहीं शिवाजी महाराज के पुत्र संभाजी का जन्म हुआ था । यह किला यादव वंश के शासन में बनवाया गया था। यह माना जाता है कि पुरन्दर भगवान परशुराम की ही एक नाम

है।

आचार्य ब्रह्मा-

भारतीय धर्मशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा के विषय में बहुत सी कथाएं प्रचलित हैं । आदिकाल से ही ब्रह्मा का स्थान सर्वोपरि माना गया है । वस्तुतः भारतीय परम्परा में तीन मुख्य देवता हैं ।उनमें से ही एक ब्रह्मा भी हैं । ब्रह्मा को **स्वयम्भू** भी कहा जाता है जिसका अर्थ है स्वयं उत्पन्न होने वाला। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी के चार मुख हैं जो चारों दिशाओं में हैं। इन्हें चारों वेदों के निर्माता भी कहा जाता है । वास्तुशास्त्र के प्रत्येक ग्रन्थ में ब्रह्मा की चर्चा प्राप्त होती है, जिन्हें वास्तुस्थापत्य के आदिगुरु के रूप में स्वीकार किया गया है । भृगु-अत्रि-वशिष्ठ-विश्वकर्मा-नारद-गर्ग इत्यादि सभी ऋषिगणों को ब्रह्मा के मानस पुत्र माना जाता है । वास्तुशास्त्र में ब्रह्मा को प्रमुख देवता मानते हुए वास्तुपदविन्यास में मध्य में भगवान ब्रह्मा को ही स्थान दिया गया है। इनका कोई भी स्वतन्त्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता परञ्च 18 प्रवर्तकों में इनकी गणना होती है।

आचार्य कुमार-

आचार्यकुमार द्राविड परम्परा के आचार्य हैं । इनका जन्म केरल के ब्राह्मण परिवार में हुआ। यह देवनारायण की राज्यसभा में रहते थे। देवनारायण स्वभाव से धार्मिक और विद्वानों का आदर करने वाला राजा था। इनके आश्रय में अन्य भी कई विद्वान रहते थे । आचार्य कुमार द्वारा रचित वास्तुशास्त्र का द्राविडशैली का एक अंतिम प्रतिनिधित्व ग्रन्थ **शिल्परत्न** है, जिसके संपादक महा. टी. गणपति शास्त्री जी ने श्री कुमार को १६वीं शताब्दी का माना है ।

शिल्परत्न आचार्य कुमार द्वारा रचित एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ है । शिल्पशास्त्र के अधेयताओं का मानना है कि मयमतम्-मानसार-शिल्परत्न यह तीनों ग्रन्थ एक ही परंपरा के पोषक हैं अर्थात ये तीनों ही मय के सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थ हैं । ग्रन्थ के आरम्भ में ही ग्रंथकार ने सभी आचार्यों को नमन किया है ।तत्पश्चात आचार्य मय के प्रति अपना विशेष आभार व्यक्त किया है ।तद्यथा-

त्रिपुरत्रयरचना यत्करयोः कर्मचातुरी जाता ।
शिल्पवरं तं दनुजैरर्चितचरणं मयं वन्दे ॥

शिल्परत्न का मुख्य स्रोत आगम को ही माना गया है। इस ग्रन्थ में एक और विभिन्न स्थलों, मंदिरों,देवताओं की मूर्ति आदि का उत्कृष्ट वर्णन है,वहीं स्थापत्यकला में शिल्प को एक विशिष्ट स्थान देने का प्रयास भी किया है।तद्यथा-

ब्राह्मं क्षात्रं च तेजोऽप्यहमहमिकया वर्णिते यत्र वीरे ,

तस्य श्रीदेवनारायणधरणिपतेराज्ञयाज्ञाकरोऽहम् ।
मन्दोऽप्यत्यन्तमोहादितिविपुलतरेभ्योथ पूर्वागमेभ्यः ,,
संक्षिप्तं शिल्परत्नं प्रलिखितुमधुना प्रक्रमे तत्प्रमेण ॥

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में ४६ अध्याय हैं तथा द्वितीय भाग मैं ३५ अध्याय हैं। कुल मिलाकर इसमे ८१ अध्यायों में शिल्पशास्त्र का विस्तारपूर्वक विवेचन मिलता है। इसके पूर्व भाग में स्थापत्य कला में वर्णित गृह, ग्राम, नागर, पुर आदि निर्माण का विस्तार से वर्णन किया गया है। साथ ही साथ वास्तुशास्त्र के विभिन्न अंगों के बारे में भी चर्चा की गई है।तद्यथा-

एवं सर्वविमानानि गोपुरादीनि वा पुनः ।
मनोहरतरं कुर्यान्नानाचित्रैर्विचित्रितम् ॥

ग्रन्थ के उत्तर भाग में देवी-देवताओं की प्रतिमा, लक्षण, आकार-प्रकार के विषय में वर्णन किया गया है तथा अंतिम पाँच अध्यायों में मनुष्य के लिये उपयोगी वास्तु यथा-साधारण गृह, जलाशय, कूप, उपयोगीयंत्र,उपवन आदि के विषय में चर्चा की गई है।

आचार्य नन्दीश-

वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों में परिगणित आचार्य नन्दीश के विषय में तथा इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में भी अभी तक कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है ।

आचार्य शौनक-

शौनक ऋषि को वैदिक ऋषि भी माना जाता है। वस्तुतः शौनक ऋषि वैदिक संस्कृत व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान तथा ऋक्प्रतिशाख्य के रचयिता ऋषि माने गए हैं। प्रतिशाख्य शिक्षा के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनमें संस्कृत व्याकरण के विषय में पूर्ण वैदिक ज्ञान संगृहीत है । इन्हें ऋषि कात्यायन और आश्वलायन का गुरु माना जाता है। इन्होंने ऋग्वेद की वाष्कल और शाकल शाखाओं का एकीकरण किया। विष्णुपुराण के अनुसार शौनक को ऋषि गृत्समद का पुत्र माना जाता है। शौनक ऋषि का सम्बन्ध ऋग्वेद से है तथा वास्तुशास्त्र का वर्णन ऋग्वेद के मंत्रों में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है तो यह कहना निरर्थक नहीं है कि ऋषि शौनक वास्तुविद्या के भी आचार्य हैं। तद्यथा –

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फ़ानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ।।
वास्तोष्पते शग्मथा संसदा ते साक्षीमदि गातुपत्या एवया।
पाहि क्षेत्रं उत योगे परं नो यूयं घात स्वस्तिभिः सदा नः मदे।

चारों वेदों की अपनी-अपनी शाखाएं और संहितायें भी प्रचलित हैं यथा **ऋग्वेद** की **शाकलसंहिता, यजुर्वेद** की **वाजसनेयीसंहिता, सामवेद** की **कौथुमीयसंहिता, अथर्ववेद** की **शौनकसंहिता ।** आचार्य शौनक के नाम पर ही **शौनक संहिता** का नामकरण किया गया है ।इसमें ७३० स्तोत्रों का संग्रह है, जिसमें ५९८७ मन्त्र हैं और इसको २० काण्डों में विभक्त किया हुआ है । अथर्ववेद में निम्न मन्त्रों में वास्तुविषयक प्रसंगों का वर्णन प्राप्त होता है।

आचार्य गर्ग-

गर्ग नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र आदि विभिन्न विद्याओं के आचार्य गर्ग एक ही व्यक्ति है- ऐसा कहना सही नहीं है क्योंकि इनके काल में भेद माना गया है । गर्ग ऋषि को ब्रह्मा जी का मानस पुत्र माना गया है।

गर्ग संहिता के दो प्रतिलिपियां प्राप्त होती हैं, जिसमें से एक में भगवान कृष्ण की मधुरलीला तथा द्वितीय गर्गसंहिता ज्योतिष का ग्रन्थ है।

ज्योतिष तथा वास्तु में अङ्गाङ्गिभाव माना जाता है।

आचार्य वासुदेव-

वास्तशास्त्र के प्रवर्तकों में परिगणित आचार्य वासुदेव तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में कोई भी प्रमाणिक चर्चा प्राप्त नहीं होती है।

आचार्य अनिरुद्ध-

आचार्य अनिरुद्ध की गणना भी वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों में की गई है परन्तु इनके तथा इनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में कुछ विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

आचार्य शुक्र-

आचार्य शुक्र को दैत्यों का पुरोहित माना जाता है। दैत्यराज मय को भी वास्तु का महान आचार्य माना जाता है तो संभवतः यह शुक्र वही शुक्राचार्य ही होंगे। शुक्राचार्य भृगु ऋषि तथा हिरण्यकश्यपु की पुत्री दिव्या के पुत्र मानें जाते हैं। पुराणों में ये दैत्यों के पुरोहित माने गये हैं । इनके विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि आरम्भ में इन्होंने अंगिरस ऋषि का शिष्यत्व ग्रहण किया। तत्पश्चात भगवान शङ्कर को अपना गुरु मानकर उनसे मृतसंजीविनी का वर प्राप्त किया। इनके द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ शुक्रनीति है।

आचार्य बृहस्पति-

आचार्य बृहस्पति का उल्लेख विभिन्न जगह प्राप्त होता है । वेदोत्तर साहित्य में

बृहस्पति को देवताओं का पुरोहित माना गया है। इनका जन्म अंगिरा ऋषि की सुरुपा नाम की पत्नी से हुआ। इनकी दो पत्नियाँ थीं तारा और शुभा।

इनके विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि देवगुरु बृहस्पति स्वर्ण का मुकुट तथा कण्ठ में सुन्दर माला धारण किए हुए हैं। पीतवस्त्र धारण कर कमल आसन पर विराजमान हैं। यह स्वर्णनिर्मित भवन में रहते हैं और इनका रथ भी सोने का है, जिसमें पीतवर्ण के आठ घोड़े जुते हैं। महर्षि बृहस्पति द्वारा रचित **बार्हस्पत्यसूत्रम्** ग्रन्थ में सूत्रों के माध्यम से महर्षि बृहस्पति द्वारा नीतिशास्त्र-कलाशास्त्र-राजधर्म-नितयोपासनविधि-आवास-मुहूर्त इत्यादि के विषय में सूत्र शैली में ज्ञान को प्रदान किया गया है।

इस ग्रन्थ के तृतीय और चतुर्थ अध्याय में वास्तुशास्त्र से संबन्धित सूत्रों का वर्णन प्राप्त होता है।

3.4.1. वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्य

वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्यों से तात्पर्य उन आचार्यों से हैं, जिनकी चर्चा पुराणोक्त अष्टादश आचार्यों में तो प्राप्त नहीं होती, किन्तु इन आचार्यों के वास्तुशास्त्र पर स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।इनमें से प्रथम आचार्य वराहमिहिर हैं।

आचार्य वराहमिहिर-

आचार्य वराहमिहिर का नाम ज्योतिष और खगोल शास्त्र में सर्वोपरि माना जाता है। इन्होनें गणित एवं ज्योतिष का ज्ञान अपने पिता आदित्यदास से ही परम्परागत विधि के द्वारा प्राप्त किया था। भारतीय इतिहास में इनको गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा इनके द्वारा निर्मित समय मापक घटयंत्र, वेधशाला, लौहस्तम्भ आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। महान खगोलज्ञ आर्यभट्ट से मिलने पर इन्हें ज्योतिष विद्या एवं खगोल ज्ञान में कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन्हें अपनी सभा के नवरत्नों में स्थान प्रदान किया। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों (**सिद्धांत-संहिता-होरा**) पर अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है। वास्तुशास्त्र ज्योतिष का ही अङ्गरूप है इसमें कोई संदेह नहीं है। ज्योतिष के संहितास्कन्ध में वास्तु के विषय को यथावत् प्रस्तुत किया गया है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भी वास्तुविद्या का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है । इन्होंने न केवल भारत में अपितु सुदूर स्थित यूनान आदि देशों में भी भारतीय-ज्ञान-परम्परा का परचम लहराया है । इस प्रकार सन् ४९९-५८७ तक इनका जीवनकाल अनेक आविष्कारों के साथ आगे बढ़ा । इनके द्वारा रचित समस्त ग्रंथों को आज भी ग्रन्थरत्न माना जाता है।वराहमिहिर द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित है-

१. पञ्चसिद्धान्तिका। २. बृहज्जातक।
३. लघुजातक। ४. बृहद्संहिता।
५. टिकनिकयात्रा। ६. बृहद्यात्रा या महायात्रा।
७. योगयात्रा या स्वल्पयात्रा। ८. बृहद् विवाहपटल।
९. लघु विवाहपटल। १०. कुतूहल मंजरी।
११. दैवज्ञवल्लभ १२. लग्नवाराही।

इनमें से बृहत्संहिता में वास्तुविषयक ज्ञान का प्रतिपादन विस्तार पूर्वक किया गया है। वस्तुतः यह ग्रंथ एक संग्रह ग्रन्थ के रूप में है। इसमें कश्यप,पराशर,देवल आदि पूर्व आचार्यों की संहिताओं का संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थ साथपत्यविद्या का एक विलक्षण ग्रन्थ है जिसमें ना केवल वास्तुस्थापत्य अपितु मानवजीवनोपयोगी सभी चर्चाओं को भी शामिल किया गया है। यथा- **वस्तुविद्याध्याय, प्रासादलक्षणाध्याय, वनसम्प्रवेशाध्याय और प्रतिमाप्रतिष्ठापनाध्याय** इस ग्रन्थ में वास्तु के ना केवल बाहरी अपितु आंतरिक आवश्यक वस्तुओं शय्या आदि के निर्माण का भी वर्णन किया गया है, जिसके लिये प्रशस्त और अप्रशस्त दारू का भी वर्णन किया गया है।तद्यथा -

आसनस्पन्दनचन्दनहरिद्रसुरदारू तिन्दुकीशालाः।
कश्मर्थञ्जनपद्मकशाका वा शिंशीपा च शुभा॥

श्रीमन् महाराजाधिराजभोजराज-

महाराजाधिराजभोजराज भारत के महान शासकों में से एक थे। वह चतुर्मखी प्रतिभासम्पन्न राजा माने जाते थे। इन्होंने सन् १०१८-१०६० तक सम्पूर्ण भारत में राज किया था। इनकी राजधानी धारा नगरी थी, इसी कारण से इन्हें धराधिप, धारेश्वर के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने अपनी राजधानी में **सरस्वती मंदिर एवं सरस्वती पाठशाला** का भी निर्माण करवाया था।भोजराज ने अनेक ग्रंथों का प्रतिपादन किया और करवाया था। इन्होंने भोपाल के रम्य प्राकृतिक वातावरण में एक अत्यधिक सुन्दर २५०-३५०वर्गमील का एक अतिविशाल कृत्रिम तालाब का भी निर्माण करवाया था, जो वर्तमान में यथास्थिति में प्राप्त होता है। भोजराज ने ना केवल अपने राज्य में अपितु सम्पूर्ण भारत में वापी, कूप, तालाब इत्यादि का निर्माण करवाया था। इन्होंने ज्योतिष और वास्तुविद्या के संरक्षण में भी महान कार्य किया और **राजमार्तण्ड, समराङ्गणसुत्रधार, युक्तिकल्पतरु** नामक ज्योतिष-वास्तु के ग्रंथों की रचना की,इसके अतिरिक्त

जिनमें भोजराज ने नीति-धर्मशास्त्र-व्याकरण-चिकित्सा-काव्य-कोष इत्यादि विषयों पर अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया।

सूत्रधारमण्डन-

आचार्य मण्डन का नाम परवर्ती आचार्यों में सर्वोपरि है। इन्होंने वास्तुशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र पर अपनी शोध की दृष्टिको प्रस्तुत किया है तथा ग्रंथों का लेखन कर अग्रिम पीढ़ी के लिये एक आधारयुक्त सीढ़ी का काम किया है।

इनके विषय में प्राप्त होता है कि इनका जन्म गुजरात के सोमपुरा शिल्पज्ञ कुल में हुआ था। इनके गोत्र के विषय में कहा जाता है कि इनका गोत्र भारद्वाज था।ये महाराणा कुम्भा के दरबारी शिल्पि थे। महाराणा कुम्भा का राज्यकाल विक्रम सम्वत १४९०-१५२५ तदनुसार १४३३-१४६८ ई. माना जाता है।इनका सबसे उत्तम कार्य यह रहा कि इन्होंने अपने लिखित ग्रन्थों में अपने नाम को **मण्डन शब्द** से सम्बोधित किया है, जिससे इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की पहचान करना सरल रहा। सूत्रधार मण्डन के वंशानुक्रम के विषय में राजवल्लभ-वास्तुशास्त्र में प्राप्त वर्णन के अनुसार यह दो भाई थे।इनके पिता का नाम क्षेत्रार्क था।गोविन्द और ईश्वर नाम से इनके दो पुत्र हुए इस प्रकार इनका वंश आगे बढ़ा।

सूत्रधारमण्डन विरचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है।

१. देवतामूर्तिप्रकारणम्। **२. प्रासादमण्डन।**

३. राजवाल्लभवास्तुशास्त्रम्। **४. रूपमण्डन।**

५. वास्तुमण्डन। **६. वास्तुशास्त्र।**

७. वास्तुसार। **८. वास्तुमजरी।**

९. आपतत्व।

आचार्य भुवनदेव-

आचार्य भुवनदेव मेवाड़ के थे और इन्होंने लगभग बारहवीं शताब्दी तक अपनी कालजई रचना अपराजितपृच्छा का सम्पादन किया था।

अपराजित पृच्छा मात्र वास्तु-स्थापत्य पर आधारित नहीं है,अपितु इसमें ज्योतिष-वास्तु-गणित-चित्र-मापन पद्धति-प्रतिमा-आयुध इत्यादि शस्त्रों की भी चर्चा की गई है। १२वीं शताब्दी में प्रचलित सामाजिक परम्पराओं, आवश्यकताओं, शासकीय संकल्पों इत्यादि विविध विषयों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ पर भोजराज कृत समराङ्गण सूत्रधार का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों तथा प्रमुख परवर्ती आचार्यों की चर्चा प्राप्त होती है।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आचार्य भृगु द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम ___________ है।
2. वशिष्ठ संहिता _________ अध्यायों में विभक्त है।
3. वास्तुमण्डन के रचनाकार_________ है।
4. भोजराज की राजधानी _____ नगरी थी।
5. शौनक संहिता का सम्बन्ध ________ वेद से है।
6. शिल्परत्न के रचनाकार______ है।
7. आचार्य नग्नजित के ग्रन्थ की संज्ञा ________ है।

3.5. सारांश --

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि वास्तुशास्त्र का उद्भव किन प्रवर्तक आचार्यों से हुआ तथा इस शास्त्र की आचार्य परम्परा कौन सी है ? इस शास्त्र के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आचार्यों का वर्णन भी आपने पढ़ा। ज्योतिषवेदाङ्ग के संहिता स्कन्ध से वास्तु का सम्बन्ध है तथा अष्टाङ्गवास्तु में वास्तु के आठ अङ्गों मे ज्योतिष को भी एक अङ्ग माना गया। इसलिए वास्तु के प्रवर्तक आचार्य और ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्यों में कहीं-कहीं साम्यता भी दृष्टिगोचर होती है। मत्स्यपुराण में वास्तु के अष्टादश, अग्निपुराण में पच्चीस और मानसार में बत्तीस आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र दो परम्पराओं के रूप में विकसित हुआ। एक विश्वकर्मा परम्परा और दूसरी मय परम्परा। विश्वकर्मा नागर परम्परा के तथा मय द्राविड परम्परा के जनक कहलाए। इन दोनों परम्पराओं में वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। इन ग्रन्थों में वर्णित सिद्धान्तों का अनुपालन अद्यावधि भव्य भवनों के निर्माण में किया जाता है । इन सभी आचार्यों में आचार्य विश्वकर्मा और मय ने वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्य के रूप में स्थान प्राप्त किया है । इन दोनों आचार्यों की अपनी-अपनी परम्पराओं का विकास समय के साथ-साथ होता गया। विश्वकर्मा देवशिल्पि और मयाचार्य दानवशिल्पि के रूप में विख्यात हुए। विश्वकर्मा नागर परम्परा के प्रवर्तकाचार्य थे । इन्होने ही ब्रह्मा के सृष्टिकार्य में उनका सहयोग किया। इनको ६४ कलाओं का ज्ञाता माना जाता है। इनका स्वरूप चित्रण करते हुए बताया गया है कि ऐरावत हाथी पर आरूढ, प्रसन्नमुख, आभूषणों से सुसज्जित, चतुर्भुज, पीले वस्त्र धारण करने वाले, शान्तरूप हाथ में सूत्रादि धारण करने वाले देवता है।विश्वकर्मा के जन्म के विषय में विविध वास्तुग्रन्थों में विविध मत प्राप्त होते

है। समराङ्गण सूत्रधार में इनको बृहस्पति के भाग्नेय, प्रभासवसु के पुत्र कहा गया है।जबकि अपराजितपृच्छा में इनका जन्म चाक्षुष मनु के वंश में माना गया है । जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित इनके मानस पुत्र माने जाते है। इनमें से जय और अपराजित दोनों ही वास्तुविद के रूप में विख्यात हुए। जय और अपराजित दोनो का प्रश्नोत्तररूप ग्रन्थ "जयपृच्छा" तथा "अपराजितपृच्छा" के रूप में प्राप्त होता है। आचार्य विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र, विश्वकर्माप्रकाश, दीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा, वास्तुप्रदीप आदि ग्रन्थों का उपदेश किया। वास्तुशास्त्र की द्राविड परम्परा के जनक मयाचार्य है। महाभारत में एक प्रसंङ्ग में आचार्य मय कहते है ---

" अहं हि विश्वकर्मा दानवानां महाकावि: ॥"

विश्वकर्मा यहां देवशिल्पि थे और मयाचार्य दानवों के शिल्पि थे। रामायण के अनुसार- "मय दिति के पुत्र थे।स्वर्ग की अप्सरा हेमा इनकी पत्नी थी और मन्दोदरी इनकी पुत्री थी। जिसका विवाह रावण से हुआ । इस प्रकार यह रावण के श्वसुर थे। मयाचार्य ने पाण्डवों के सभा भवन, पुष्पक विमानादि अनेक रचनायें की। इनका प्रमुख ग्रन्थ "मयमतम्" है। इसके अतिरिक्त मानसार, कश्यपशिल्प, मनुष्यालयचन्द्रिका, ईशानशिवगुरूदेव पद्धति आदि मय परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ है।

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

१) **वास्तु के प्रवर्तक** -- वास्तुशास्त्र का प्रवर्तक ब्रह्मा जी को माना जाता है । ब्रह्मा जी के चार मुखों से विश्वकर्मा आदि का प्राकट्य हुआ । जिनसे वास्तुशास्त्र का उद्भव हुआ ।

२) **पूर्ववर्ती आचार्य-** वास्तुशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों में उन आचार्यों की गणना की जाती है, जिन आचार्यों की चर्चा विविध पुराणों तथा विविध ग्रन्थों में प्राप्त होती है । विविध ग्रन्थों में इन आचार्यों की संख्या में मतभेद है । इन सब ग्रन्थों में मत्स्य पुराण में वर्णित 18 आचार्यों की संख्या तथा नाम के विषय में अधिकतर आचार्यों में मतैक्य दिखाई देता है ।

३) **परवर्ती आचार्य** – वराहमिहिर, भोजराज ,सूत्रधारमण्डन आदि को वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्य माना जाता है । इन आचार्यों ने वास्तुशास्त्र पर स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की । इन ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र के विविध सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है ।

3.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१) सत्य

२) असत्य

३) असत्य

४) असत्य

५) सत्य

६) असत्य

७) असत्य

८) असत्य

अभ्यास – २ की उत्तरमाला

२) भृगुसंहिता

३) 45

४) सूत्रधार

५) धारा

६) अथर्ववेद

७) आचार्यकुमार

८) चित्रलक्षण

3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

3.9.सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

3.10. निबन्धात्मक प्रश्न

१) वास्तुशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

२) वास्तुशास्त्र के परवर्ती आचार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

३) वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों का वर्णन कीजिए।

४) वास्तुशास्त्र की मयपरम्परा पर निबन्ध लिखें।

५) वास्तुशास्त्र की विश्वकर्मा परम्परा पर निबन्ध लिखें।

६) वास्तुशास्त्र की आचार्य परम्परा पर निबन्ध लिखें।

इकाई - 4 वास्तुशास्त्र का प्रयोजन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारतीय संस्कृति और शास्त्रपरम्परा

4.3.1 भारतीय शास्त्रपरम्परा का प्रयोजन

4.4 शास्त्र के लक्षणों की कसौटी पर वास्तुशास्त्र

4.4.1 वास्तुशास्त्र का प्रयोजन एवं उपयोगिता

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1. प्रस्तावना

जब से इस सृष्टि पर जीवन का सूत्रपात हुआ, तभी से मानव ने अपनी लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति का चिन्तन करना आरम्भ कर दिया। इसी चिन्तन के परिणामस्वरूप अनेकों प्रकार के विज्ञान तथा शास्त्र अस्तित्व में आयें। वेद,वेदाङ्ग,उपनिषद्,ब्राह्मणग्रन्थ,आरण्यकग्रन्थ तथा विविध पुराण इसी चिन्तन का फल है। हमारे मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने केवल पारलौकिक उन्नति की ही बात नहीं की अपितु लौकिक उन्नति को भी मानवीय जीवन में महत्वपूर्ण माना। भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म,अर्थ,काम तथा मोक्ष की बात की गई है। मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है परन्तु मोक्ष के साथ-साथ प्रथम तीन पुरुषार्थों का भी अपना महत्व है। गृहस्थ को धर्मसम्मत अर्थ तथा काम का सेवन करने का उपदेश किया गया है। इसी प्रकार चारों आश्रमों का क्रमानुसार पालन करने का विधान है। यथोक्तम्-

"आश्रमादाश्रमं गच्छेत्"

इन चारों आश्रमों में से प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम, द्वितीय गृहस्थाश्रम, तृतीय वानप्रस्थाश्रम तथा चतुर्थ सन्यासाश्रम है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि अन्य तीनों आश्रम गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित होते है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपने लौकिक दायित्वों का सम्पादन करते हुए त्यागपूर्ण भोग का आश्रय लेकर पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि हेतु प्रयत्न करना चाहिए। इसी दिशा में हमारे आचार्यों ने ऐसी विद्याओं का,ऐसे शास्त्रों का अन्वेषण और प्रवचन किया जो ना केवल लौकिक रूप से अपितु पारलौकिक रूप से भी मनुष्य के उत्कर्ष के साधन थें। इन शास्त्रों में प्रत्येक शास्त्र के आरम्भ में ही उस शास्त्र के अधिकारी, प्रयोजन, विषय और सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। इन चार तत्त्वों को ही अनुबन्ध चतुष्टय का नाम दिया गया। यद्यपि समस्त भारतीय विज्ञानों का मूल उद्गम स्थल वेद ही है अतः सभी शास्त्रों के अनुबन्ध चतुष्टयों के वर्णन में भी कहीं कहीं साम्यता दिखाई देती है।

इस इकाई में वास्तुशास्त्र का प्रयोजन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप वास्तुशास्त्र के प्रयोजन से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र की रचना का उद्देश्य क्या है? वास्तुशास्त्र का प्रयोजन क्या है? वास्तुशास्त्र के प्रयोग से भवन रचना मे क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? वास्तुशास्त्र और आधुनिक वास्तुकला में क्या साम्यता तथा क्या विषमता है।

4.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का प्रयोजन क्या हैं ?
- वास्तुशास्त्र की रचना के उद्देश्य को जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र के वास्तविक स्वरूप को समझ सकेंगे।
- वास्तुशास्त्र और आधुनिक वास्तुकला की साम्यता-विषमता के भेद को समझ पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

4.3. भारतीय संस्कृति और शास्त्रपरम्परा

भारतीय संस्कृति त्यागपरक संस्कृति है। भारतीय परम्परा में त्याग का महत्त्व किसी भी प्रकार के भोग से अधिक माना जाता है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में राजाओं को वो सम्मान तथा आदर प्राप्त नहीं हुआ,जो आदर तथा सम्मान ऋषियों,महर्षियों,त्यागियों तथा सन्यासियों को प्राप्त हुआ है। भारतीय जनमानस के हृदयस्थान में विराजमान भगवान श्री रामचन्द्र की श्रेष्ठता उनके राजा होने के कारण नहीं अपितु उनकी त्यागपरायणता के कारण है । रघुकुल में श्री रामचन्द्र से पहले भी कई श्रेष्ठ राजा हुए, परन्तु जो मर्यादा श्री राम ने स्थापित की, उसी के कारण श्री राम का चरित्र आज भी प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय बना हुआ है। आरम्भ से ही भारत की राजसत्ता ने अपने से ऊँचा स्थान अपने गुरुओं तथा आचार्यों को प्रदान किया । आज भी भारतीय समाज में जो स्थान त्यागपूर्ण जीवन-यापन करने वाले सन्यासियों का है, वह किसी ओर का नहीं है । त्याग की यह शिक्षा इन मनीषियों को भारतीय शास्त्रों से प्राप्त हुई क्योंकि भारत के गुरुकुलों में जिन सच्चरित्रसम्पन्न गुरुओं के सानिध्य में इन कुमारों का अध्ययन हुआ, उनके उपदेश का प्रभाव इन मनीषियों के जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आज भी भारतीय ग्रन्थराशि में उपदिष्ट धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय का अनुकरण करते हुए धर्मसंयुत अर्थ तथा काम का भोग करते हुए मोक्षमार्ग का अनुगमन करना ही प्रत्येक भारतीय का परम लक्ष्य है। भारतीय शास्त्रपरम्परा ने ना केवल पारलौकिक अपितु लौकिक प्रयोजनों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति की लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति का चिन्तन किया।

4.3.1. भारतीय शास्त्रपरम्परा का प्रयोजन

भारतीय शास्त्रपरम्परा में विरचित समस्त शास्त्रों का लौकिक तथा पारलौकिक प्रयोजन है। धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

यतोऽभ्युदय-निश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः

अर्थात् जिससे मानव का अभ्युदय तथा निश्रेयस् दोनों ही सिद्ध हो सकें वही धर्म है। अभ्युदय का अर्थ सांसारिक उन्नति से है। आमोद-प्रमोद,खान-पान, परिधान, अलङ्करण और रहन-सहन के साधन जितने प्रचुर हो, सुलभ हो,उतने ही अभ्युदय के द्योतक होते हैं। जब तक मानव जंगलों में रहता था। उसके पास पहनने के लिए वस्त्र नहीं थे,वह कन्दराओं में,गुफाओं में रहता था,तो उसको जंगली तथा असभ्य कहा जाता था। जब से मानव व्यवस्थित होकर के अपने निवास के लिए भवन बना कर रहने लगा , वह सभ्य कहलाने लगा। धीरे-धीरे उसने वस्त्र ,भोजन तथा वास को अपनी मूलभूत आवश्कताएँ मानते हुए इनको अपने जीवन में अत्यधिक महत्व प्रदान करना आरम्भ कर दिया और आज के इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति जागरूक है। आज के युग में वस्त्र ,वास और भोजन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है। किस प्रकार से अपनी इन मूलभूत आवश्यकताओं को अपने लिए सर्वाधिक सुविधाजनक,सुरक्षित तथा सुखदायक बनाया जायें? इसी को लेकर के विश्व के विविध विश्वविद्यालयों में अनेक प्रकार के शोधकार्य निरन्तर चल रहे है। आज विश्व जिस दिशा में सोचने लगा है तथा धीरे-धीरे चलने लगा है,आज से अनेकों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने उस दिशा में गहन चिन्तन करते हुए अपनी दूरदृष्टि का परिचय दिया। इन विषयों में हमारे क्रान्तद्रष्टा ऋषियों के चिन्तन के परिणामस्वरूप विविध शास्त्रों का आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार से भारतीय परम्परा में केवल मोक्ष की प्राप्ति हेतु सब कुछ त्यागने का उपदेश ही नहीं किया गया अपितु विविध भोगों को भोगते हुए लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए भी प्रयासरत रहने का उपदेश किया गया है। प्रायशः मानव का यह सहज स्वभाव है कि वह प्रत्येक लौकिक सुख की शीघ्रातिशीघ्र प्राप्ति चाहता है तथा प्रत्येक कष्ट तथा दुःख से दूर रहना चाहता है। मानव के इसी प्रयोजन की सिद्धि हेतु वेद सहित विविध शास्त्रों की रचना हुई। वैदिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर रचे गये समस्त शास्त्रों के प्रयोजन में बहुत अधिक साम्यता है। इन समस्त शास्त्रों का प्रयोजन इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट का परिहार है । इस संसार के प्रत्येक जीव के लिए सुख ही इष्ट है तथा दुःख अनिष्ट है। प्रत्येक व्यक्ति सुख ही चाहता है तथा दुःख की पूर्णतया निवृति चाहता है। इष्ट अर्थात् सुख की प्राप्ति कैसे हो ? अनिष्ट अर्थात् दुःख की निवृति कैसे हो ? इसी प्रयोजन को लेकर समस्त भारतीय शास्त्र उपदेश करते है। सभी शास्त्रों के प्रयोजन में साम्यता होने के कारण इन शास्त्रों में भी अन्योऽन्याश्रयभाव परिलक्षित होता है। कुछ शास्त्र जहां लौकिक सुखों की प्राप्ति तथा लौकिक दुःखों की निवृत्ति हेतु प्रयासरत है,वहीं कुछ शास्त्रों में पारलौकिक सुखों की प्राप्ति तथा पारलौकिक दुःखों की निवृत्ति हेतु उपदेश किया गया है। क्योंकि भारतीय परम्परा में आत्यन्तिक दुःख पुनरपि जननं

पुनरपि मरणं ही माना जाता है ,अतः विविध वेदान्तादि दर्शनों में इस आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति तथा परम सुख मोक्ष की प्राप्ति हेतु चिन्तन किया गया है। लौकिक जीवन में विविध प्रकार के सुखों के लिए जिन शास्त्रों ने चिन्तन किया, उनमें से प्रमुख है- ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र।

ज्योतिषशास्त्र और इसकी शाखाओं में आपसी सम्बन्ध का कारण इन सभी शास्त्रों के उद्देश्यों में समानता होना है। ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र इन दोनों का विकास भी वैदिक धरातल पर ही हुआ है। दोनो ही शास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन से प्रेरित है। दोनों ही शास्त्रों का लक्ष्य मानवमात्र को सुविधा और सुरक्षा प्रदान करना है और दोनो ही शास्त्र मनुष्य के जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं पर विचार करते है परन्तु इन शास्त्रों में अत्यधिक साम्यता होने पर भी कुछ मौलिक अन्तर है। वास्तुशास्त्र किसी भवन में निवास करने वाले मनुष्य के जीवन में घटने वाले शुभाशुभ का विचार करता है, जिसका आधार प्राकृतिक शक्तियां है। यह शास्त्र इस बात का विचार करता है कि प्रकृति में विद्यमान गुरुत्व शक्ति, चुम्बकीय शक्ति और सौर ऊर्जा का प्रयोग भवन में किस प्रकार से किया जाए, जिसके कारण उस भवन में रहकर मनुष्य का जीवन समृद्ध हो सके और मनुष्य को जीवन में सन्तुष्टि और प्रगति की प्राप्ति हो, जबकि ज्योतिषशास्त्र जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं के चार कारण मानता है -

१) वंशानुक्रम
२) वातावरण
३) कर्म
४) काल

वास्तव में यही विचारणीय तत्त्व है जो ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के दृष्टिकोण के आधार में परिवर्तन करते हैं। वास्तुशास्त्र दिक् और देश को आधार बनाकर विचार करता है जबकि ज्योतिष दिक्, देश और काल के आधार पर विचार करता है। एक ही भवन में रहने वाली दो पीढियों को परस्पर विरोधी फ़ल की प्राप्ति होते देखी गई है। भवन वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तो का अनुपालन करते हुए बना होने पर भी उस भवन में निवास करने वाले सभी लोगो को एक ही तरह के फ़ल की प्राप्ति नही होती है क्योंकि यह शास्त्र काल का विचार नही करता। ज्योतिषशास्त्र दिक्, देश और काल इन तीनो सिद्धान्तों को आधार बनाकर विचार करता है, इसलिए ज्योतिषशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है। आधुनिक युग में महानगरीय संस्कृति में बहुमञ्जिले भवनों के निर्माण की परम्परा है और एक भवन में बने जिन फ़्लैटों के मुख पूर्व की ओर या उत्तर की ओर है तो उन फ़्लैटों के सामने वाले फ़्लैटों के मुख पश्चिम या दक्षिण की ओर ही होंगे तथा पूर्वमुखी यां उत्तरमुखी फ़्लैटों का निर्माण एक ही दिशा में

होने पर भी उन फ़्लैटों में रहने वाले लोगों को अपने जीवन में एक ही समान फ़ल की प्राप्ति नही होती है। इसका भी कारण वास्तुशास्त्र के द्वारा केवल दिक् और देश का विचार करना ही है , जबकि इस प्रश्न का उत्तर ज्योतिषशास्त्र के पास है क्योंकि ज्योतिषशास्त्र इसके साथ –साथ काल का विचार भी करता है।

वास्तुशास्त्र की इन कमियों को रेखांकित करने का अभिप्राय: यह नही है कि यह शास्त्र व्यर्थ है। इस सबका विचार करने का अभिप्राय यह है कि वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से पहले इस शास्त्र के सभी पक्षों का विचार कर लिया जाए। क्योंकि हर शास्त्र की अपनी सीमाऐं होती है, अपनी विशेषताएँ होती है, अपना दृष्टिकोण होता है, अपनी उपयोगिता होती है। वास्तव में इस संसार में ऐसा कुछ भी नही है जो परिपूर्ण हो, कोई भी शास्त्र अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। अगर कोई एक ही शास्त्र सम्पूर्ण होता तो अन्य शास्त्रों की रचना न होती, एक ही विषय पर अनेक शास्त्रों की रचना इस बात का प्रमाण है कि हर शास्त्र की अपनी सीमाएँ है। हमारी संस्कृति में ही छ: आस्तिक दर्शन एवं तीन नास्तिक दर्शन है। इसी प्रकार से रोगों के उपचार के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों और चिकित्सा शास्त्रों का होना भी सभी शास्त्रों की सीमाओं का द्योतक है। वास्तव में ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनो एक दूसरे के पूरक है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र को समझ पाना सम्भव नही है और वास्तुशास्त्र के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की सम्पूर्णता नही है । इसलिए ये दोनो शास्त्र एक दूसरे के पूरक है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

8. भारतीय संस्कृति भौतिकवादी संस्कृति है।
9. ज्योतिष और वास्तु में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है।
10. आधुनिकयुग आध्यात्मवादी है।
11. भवन व्यक्ति की मूलभूत आवश्यता है।
12. भारतीय ऋषि क्रान्तद्रष्टा थे।
13. इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार ही वेद का प्रयोजन है।
14. प्रत्येक जीव दुःख ही चाहता है।
15. भारतीयों ने सदैव त्यागपरायणता को महत्त्व दिया है।

4.4. शास्त्र के लक्षणों की कसौटी पर वास्तुशास्त्र

जिन मानवीय अनुभवों में कार्यकारणता, अनुकरणीयता, स्थिरता, सूत्रबद्धता, प्रयोजकता एवं सार्वभौमिकता हो – वही शास्त्र कहलाते है। प्रत्येक मानवीय अनुभव को शास्त्र के रूप में स्थापित होने के लिए आवश्यक है कि वह कार्यकारण सम्बन्ध पर आधारित होने चाहिए,वह अनुकरण करने के योग्य होने चाहिए , वह अपनी मूल संकल्पना और उद्देश्य के बीच स्थिर होने चाहिए ,वह सूत्रों के अनुशासन में उपनिबद्ध होने चाहिए , उसका कोई कल्याणकारी प्रयोजन होना चाहिए और वह सम्पूर्ण विश्व में आचरणीय होने चाहिए क्योंकि वास्तुशास्त्र में उपर्युक्त सभी लक्षण प्राप्त होते है। अतः भवन निर्माण की यह विद्या शास्त्र के अन्तर्गत परिगणित है।

कार्यकारणता-

कार्य और कारण का नित्य सम्बन्ध है। कारण के बिना कार्य सम्भव नहीं होता। कारण को देखकर होने वाले कार्य का और कार्य को देखकर उसके कारण का अनुमान किया जाता है। उदाहरणार्थ- गुरुत्वबल आवास एवं भूमि के घनत्व या ठोस होने पर आधारित है , जैसे ठोस भूमि पर बना आवास स्थिर और पोली,भूसा,राख,कोयला या हड्डी वाली भूमि पर बना मकान अस्थिर होता है तथा पर्णकुटी से मिट्टी के कच्चे मकान उससे ईट के मकान और उससे पत्थर के मकान में उत्तरोत्तर गुरुत्व। ठोसपन होने के कारण गुरुत्वबल अधिक मिलता है। परिणामतः वे उत्तरोत्तर अधिक टिकाऊ होते है।

उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों के बीच में याम्योत्तर क्रम में चुम्बकीय बल प्रवाहित होता है। इसलिए उत्तर की ओर सिरहाना कर सोने वालों के शरीर में हृदय से शरीर के अवयवों तक रक्त संचार में परिवर्तन के कारण मस्तिष्क को पूरा विश्राम नहीं मिलता। परिणामतः अनिद्रा, दुःस्वप्न, सिरदर्द, अपचन, वायुविकार एवं जोड़ों के दर्द आदि बीमारियां हो सकती हैं। इसलिए दक्षिण की ओर सिरहाना कर सोना और भूखंड के दक्षिणी भाग में शयनकक्ष बनाना वास्तु शास्त्र के अनुसार प्रशस्त माना जाता है।

पूर्व और पश्चिम के बीच में पूर्वापर क्रम से सौर ऊर्जा का प्रवाह रहता है। पूर्व एवं उत्तर द्वार वाले कक्षों में तथा भूखंड के पूर्व, ईशान एवं उत्तर भाग में बने कमरों से सौर ऊर्जा के प्रभाव के कारण रहने वाले लोगों में चुस्ती एवं स्फूर्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। परिणामस्वरूप इनमें रहने वाले लोग जीवन में पर्याप्त प्रगति करते हैं।

अनुकरणीयता – सुखी जीवन की कामना से लोग वास्तु के नियमों के अनुसार भूखण्ड का चयन

कर उस पर शास्त्र सम्मत रीति से द्वार, खिड़की एवं कमरों का निर्माण कर सुखी रहते हैं। इसको देखकर वास्तुशास्त्र के नियमों के विरुद्ध बने मकानों में रहने वाले परेशान लोगों की कठिनाइयाँ दूर करने के लिए उन में आवश्यक सुधार किया जा सकता है। अनुकरणीयता का सबसे बड़ा साक्ष्य है - 30 अक्टूबर, 1999 को उड़ीसा के पाराद्वीप, पुरी एवं भुवनेश्वर क्षेत्र में आयें विनाशकारी तूफान में वास्तुशास्त्र के अनुसार बने सभी मन्दिरों का सुरक्षित रहना और दिल्ली में मोहम्मद तुगलक द्वारा वास्तु के विरुद्ध बनाये गये तुगलकाबाद के किले का कभी भी आवाद ना होना। हमारे देश में वास्तु के अनुसार बने अन्य स्थलों में तिरुपति के बालाजी का मन्दिर, वृन्दावन में रंगनाथ मंदिर, काशी में विश्वनाथ मंदिर, पुरी में जगन्नाथ मंदिर, आगरा का ताजमहल, दिल्ली की जामा मस्जिद, श्रवणवेलगोला में महाबलि की प्रतिमा, उत्तराखण्ड का केदारनाथ मन्दिर और अमृतसर में स्वर्णमंदिर आदि वास्तु के नियमों और उसके परिणामों के उदाहरण हैं।

स्थिरता-

भवन - चाहे वह आवास, व्यवसाय, उद्योग या धार्मिक उद्देश्य से बनाया गया हो- भूमि पर आधारित है। भूमि अपने अक्ष और अपनी कक्षा पर आधारित है, जो 460 करोड वर्षों से अपने अक्ष पर घूमने के साथ-साथ अपनी कक्षा में परिभ्रमण करते हुए अपना परिभ्रमण स्थिर कर चुकी है। दीर्घकालीन परिभ्रमण के कारण इसमें अपार एवं सुस्थिर चुम्बकीय शक्ति है, जिससे दिक् सूचक यन्त्र उत्तर दिशा का संकेत देता है। भूमि के इस स्थिर धरातल पर भवन निर्माण के सुस्थिर नियमों का प्रतिपादन करने के कारण वास्तुशास्त्र में स्थिरता है। कभी-कभी नयी परिस्थिति एवं नये वातावरण के कारण इसके नियमों / उपनियमों में संशोधन या परिवर्धन होता है किंतु मूल संकल्पना से लेकर उद्देश्य तक सदैव स्थिर रहता है

सूत्रबद्धता-

जैसे पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों की गति, स्थिति एवं झुकाव आदि का ज्ञान सूत्रों के द्वारा होता है, वैसे ही वास्तुशास्त्र के आधारभूत सिद्धांत भी सूत्रों पर ही आधारित है। उदाहरणार्थ- भूमि जितनी ठोस होगी और उस पर जितने ठोस पदार्थ से आवास बनाया जायेगा, वह उतना ही अधिक टिकाऊ होगा - यह एक सूत्र है। ईशान कोण में कुँआं या बोरिंग होना चाहिए - यह भी एक सूत्र है। ऋण ध्रुव जनित दक्षिण का भू-भाग ऊँचा होना चाहिए- यह भी एक अन्य सूत्र है। वस्तुतः इस शास्त्र के सभी आधारभूत सिद्धांत-नियमों एवं उपनियमों के सूत्रों में उपनिबद्ध हैं। इसलिए यह शास्त्र सूत्रबद्ध अनुशासन है।

प्रयोजकता-

प्रयोजक के बिना कोई भी शास्त्र लोकोपकारी नहीं होता । मानव जाति बुद्धिमानों की जाति है। प्रयोजन के बिना तो पागल भी कुछ नहीं करता फिर बुद्धिशाली मनुष्यों की बात ही और है । वस्तुतः मनुष्य अपने जीवन को सुखी एवं संतुष्ट बनाने के लिए अनेक क्षेत्रों में निरन्तर नये प्रयोग करता रहता है। इनमें से जो प्रयोग उसके उद्देश्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, उन्हें वह शास्त्र के रूप में संकलित कर अगली पीढ़ी को पढ़ाता है ।

यदि जीवन में प्रगति चाहिए, तो आपके तन, मन एवं जीवन में संतुलन होना चाहिए । सन्तुलन के बिना गति हो सकती है, किन्तु वह उद्देश्य की ओर ना हो दाएं-बाएं मुड़ कर लक्ष्य से भिन्न दिशा में जा सकती है । लक्ष्य एवं उद्देश्य को तभी पाया जा सकता है, जब संतुलन हो ।
वास्तुशास्त्र जीवन के संतुलन के लिए भूमि एवं भवन के संतुलन का प्रतिपादन करता है। इस शास्त्र के अनुसार समतल भूमि में वर्गाकार, आयताकार एवं वृत्ताकार भवन की रचना कर उसमें शास्त्रीय रीति से कक्षों का निर्माण कर रहने से जीवन में प्रगति एवं संतुष्टि के साथ-साथ संतुलन मिलता है, जो इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है ।

सार्वभौमिकता-

यह शास्त्र गुरुत्व बल, चुम्बकीय बल एवं सौर ऊर्जा इन तीन प्रकार के प्राकृतिक बलों का उपयोग करने के नियमों का प्रतिपादन करता है। इन तीनों प्रकार के बलों के केन्द्र पृथ्वी एवं सूर्य हैं, जिनका सम्बन्ध पूरे भूमण्डल से है । इसके अतिरिक्त यह शास्त्र धर्म,वर्ण,जाति या क्षेत्र के किसी भी आग्रह से पूर्ण रूप से मुक्त होकर मानव मात्र की भलाई के लिए भूमि एवं भवन के उपयोग का मार्ग बतलाता है अतः यह पूरे विश्व में सभी लोगों के लिए समान रूप से स्वीकार्य है ।
इस प्रकार वास्तुशास्त्र में शास्त्र के लक्षणों का पूरा-पूरा निर्वाह होने के कारण ही यह शास्त्र कहलाता है।

4.4.1. वास्तुशास्त्र का प्रयोजन एवं उपयोगिता

इस सम्पूर्ण सृष्टि में जो प्राणी प्रकृति के अत्यन्त समीप रहकर, उसकी शरणागति स्वीकार कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वह सदैव प्रसन्न, सुखी और समृद्ध रहते हैं । इसके विपरीत जो कोई भी प्रकृति विरुद्ध आचरण कर भौतिक उन्नति का प्रयास करता है, उसका समूल नाश हो जाता है ।यह प्रकृति एक मां की तरह है। जब तक मानव अपनी शैशवावस्था में अपनी मां की छत्रछाया में रहता है, तब तक मां उसकी रक्षा करती है और उसे किसी भी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होने देती है। परन्तु जब वही बच्चा युवा होकर अपनी मां से दूर चला जाता है, तो उसे अपने जीवन में

अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। अत एव भारतीय मनीषियों ने सदैव प्रकृतिरूपी मां की गोद में ही जीवन व्यतीत करने का आदेश और उपदेश अपने ग्रंथों में दिया है ।वास्तुशास्त्र भी मनुष्य को यही उपदेश देता है। घर मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतओं में से एक है। प्रत्येक प्राणी अपने लिए घर की व्यवस्था करता है। पक्षी भी अपने लिए घोंसले बनाते हैं ।वस्तुतः निवासस्थान ही सुख प्राप्ति और आत्मरक्षा का उत्तम साधन है। तद्यथा-

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तुनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ।
वापी देव गृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्री विश्वकर्मादयः ।।

अर्थात् स्त्री, पुत्र आदि के भोग का सुख धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति, कुएँ,जलाशय और देवालय आदि के निर्माण का पुण्य, घर में ही प्राप्त होता है।

इस प्रकार से घर सभी प्रकार के सुखों का साधन है। भारतीय संस्कृति में घर केवल ईट-पत्थर और लकड़ी से निर्मित भवनमात्र ही नहीं है, अपितु घर की प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक कोने में, प्रत्येक भाग में एक देवता का निवास है, जो घर को भी एक मंदिर की भांति पूज्य बना देता है। जिसमें निवास करने वाला मनुष्य कभी किसी अधर्म के कार्य की ओर अग्रसर हो ही नहीं सकता। ऐसे ही घर का निर्माण करना भारतीय वास्तुशास्त्र का वास्तविक प्रयोजन है। ऐसे घर में रहकर मनुष्य ना केवल भौतिक उन्नति अपितु शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते हुए धर्म, अर्थ, काम का उपभोग करते हुए अन्ततोगत्वा मोक्ष की प्राप्ति कर पुरुषार्थ चतुष्टय का साधक बन जाता है।

जन-जीवन में वास्तुशास्त्र की उपयोगिता के कारण इस शास्त्र की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पञ्चमहाभूतों से निर्मित प्राणी के जीवन में इन महाभूतों से निर्मित वातावरण के साथ उसका सामञ्जस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। दर्शन, विज्ञान एवं कला से सम्बन्धित सभी शास्त्र यह मानते हैं कि मानव एवं अन्य प्राणी पञ्चमहाभूतों से बने हैं और मानव का तन, मन एवं जीवन इस महाभूतों के संतुलन से स्वतः स्फूर्त और असंतुलन से निष्क्रिय सा हो जाता है। किन्तु इन सभी शास्त्रों में इन महाभूतों का संतुलन कैसे बनाया जाये ? इसके लिए किन विधियों एवं प्रविधियों का उपयोग किया जाए ? इस बारे में वास्तुशास्त्र को छोड़कर आज तक के सभी ज्ञान एवं विज्ञान मूकदर्शक की तरह खड़े दिखलाई देते हैं क्योंकि वास्तुशास्त्र पांच भौतिक प्राणी के जीवन में भूमि, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पांचों महाभूतों का कैसे उपयोग

किया जाये और मानव मात्र की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को उन्नत कर उन्हें कैसे स्वतः स्फूर्त किया जाए ? इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर अपने नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं विवेचन करता है। अतः इसका महत्त्व एवं इसकी हमारे जीवन में उपयोगिता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. भवन में कुएँ की दिशा ___________ है।
2. वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध _________ से है।
3. भूखण्ड का दक्षिणी भाग _________ होना चाहिए।
4. प्रकृति एक _____ के समान है।
5. गृह मनुष्य की________ आवश्यकता है।
6. वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध ______के सामञ्जस्य से है।
7. गृहनिर्माण सर्वविध ________ को प्रदान करता है।

4.5. सारांश --

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि वैदिक पृष्ठभूमि पर आधारित समस्त शास्त्रों के प्रयोजन में साम्यता है। समस्त शास्त्र मानव मात्र के लिए इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार हेतु उपदेश करते है। कुछ शास्त्र विविध प्रकार के लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति तथा दुःखों की निवृत्ति हेतु निर्देश करते हैं।वास्तुशास्त्र का प्रयोजन भी एक ऐसे भवन का निर्माण करने से है, जिस भवन में रहकर मानव को विविध प्रकार के सुख,समृद्धि तथा सुरक्षा की प्राप्ति हो। भवन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है, जब से मनुष्य जंगलों के स्थान पर भवन में रहने लगा, तब से वह सभ्य कहलाने लगा। धीरे– धीरे अपने निवास को सुन्दर और सुविधाजनक बनाने की दिशा में प्रवृत्त मानव ने भवन निर्माण के विविध सिद्धान्तों का निर्माण किया और इसे वास्तुशास्त्र का नाम दिया उसने प्रकृति के साथ सामञ्जस्य करते हुए भवन निर्माण की कल्पना की और "यत पिण्डे तत ब्रह्माण्डे" इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ऐसे भवन के निर्माण की कल्पना की, जिसमें पञ्चमहाभूतों का समुचित उपयोग हो सके और वास्तुशास्त्र में ये सिद्धान्त निबद्ध किए गए।

4.6. पारिभाषिक शब्दावली

१) **इष्ट**- जिसको प्रत्येक मानव प्राप्त करना चाहता हो, इष्ट से अभिप्रायः सुख से है।

२) **अनिष्ट** – जिसको मानव प्राप्त करना ना चाहे। कोई भी व्यक्ति दुःख नहीं चाहता अतः इसी को अनिष्ट कहते है।

३) **पुरुषार्थ** – भारतीय परम्परा में धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय माना जाता है। इन्हीं की प्राप्ति प्रत्येक मानव का परम लक्ष्य माना जाता है।

4.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१) असत्य

२) सत्य

३) असत्य

४) सत्य

५) सत्य

६) सत्य

७) असत्य

८) सत्य

अभ्यास – २ की उत्तरमाला

1. ईशानकोण
2. गृहनिर्माण
3. ऊँचा
4. माँ
5. मूलभूत
6. पञ्चमहाभूतों
7. पुण्य

4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोषः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

4.9. सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

4.10. निबन्धात्मक प्रश्न

१) भारतीय संस्कृति तथा भारतीय शास्त्रपरम्परा पर निबन्ध लिखें।

२) भारतीय शास्त्रपरम्परा के प्रयोजन पर निबन्ध लिखें।

३) शास्त्र के लक्षणों की कसौटी पर वास्तुशास्त्र का स्थान निर्धारण करें।

४) वास्तुशास्त्र के प्रयोजन पर निबन्ध लिखें।

इकाई - 5 वास्तुशास्त्र में पञ्चमहाभूत स्वरूप

इकाई की संरचना

5.1. प्रस्तावना

वेद समस्त प्रकार के विज्ञानों के उत्पत्तिस्थल है। वेद के ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि विकसित की और इस अन्तर्दृष्टि के माध्यम से उन्होंने इस सृष्टि के अदृष्ट रहस्यों को भी देखा और मानवमात्र के कल्याण हेतु वेद में उनका उपदेश किया। उन्हीं वैदिक सिद्धान्तों को आधार बनाकर विविध प्रकार के शास्त्र और विज्ञान विकसित हुए। उन्हीं विज्ञानों में से एक वास्तुविज्ञान भी है , जो किसी भी भवन के मूर्त तत्त्वों के साथ-साथ अमूर्त तत्त्वों का भी विश्लेषण करता है। इन अमूर्त तत्त्वों के अध्ययन का आधार पञ्च महाभूतों की भवन में स्थिति है । इस सम्पूर्ण सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ की संरचना पृथ्वी,जल,तेज,वायु तथा आकाश आदि पञ्च-महाभूतों से ही हुई है । मानव के निवास से सम्बन्धित गृहादि भवनों में भी ये महाभूत एक निश्चित अनुपात में होते है। किसी भी भवन में इन महाभूतों का अनुपात समुचित होने पर उस भवन में रहने वाले समस्त लोगों को सुख,सुविधा और सुरक्षा की प्राप्ति होती है तथा किसी भी भवन में इन महाभूतों का अनुपात ठीक ना होने पर उस भवन में रहने वाले निवासियों को विविध प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इन महाभूतों का सर्वश्रेष्ठ लाभ प्राप्त करने हेतु इन महाभूतों की प्रकृति का ज्ञान होना परमावश्यक है।

इस इकाई में इन पञ्च महाभूतों का ही वर्णन किया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन से आप पञ्च महाभूतों का परिचय प्राप्त कर सकेगें और जान पायेगें कि पञ्च महाभूत क्या है? इनका मूल स्वरूप क्या है? वास्तुशास्त्र की दृष्टि से इनका क्या महत्व है? भवन में इनका उपयोग कहाँ-कहाँ होता है? भवन में रहने वाले लोगों पर इन महाभूतों का कैसा प्रभाव पड़ता है ?

5.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि पञ्च महाभूत किसे कहते हैं ?
- पञ्च महाभूतों के परिचय को जान पायेंगे ।
- पञ्चमहाभूतों के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- वास्तुशास्त्र में पञ्च महाभूतों के महत्व को समझ पायेंगे।
- भवन में पञ्चमहाभूतों के समायोजन को समझ सकेंगे ।

5.3. भारतीय वास्तुशास्त्र में अदृष्ट तत्त्व

भारतीय वास्तुशास्त्र मानव के निवास हेतु निर्मित होने वाले विविध भवनों से सम्बन्धित विज्ञान है। यह भवन निर्माण के विज्ञान की एक प्रोन्नत तकनीक है। भवन के निर्माण के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विज्ञानों का उद्भव और विकास विश्व के विविध राष्ट्रों तथा संस्कृतियों में हुआ। आज भी विश्व के विविध विकसित राष्ट्रों में अनेक प्रकार के भव्य,गगनचुम्बी तथा समस्त सुविधाओं से सुसज्जित भवन दिखाई देते हैं। इन भव्य भवनों के निर्माण में अत्याधुनिक तकनीकों तथा विविध प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है। भारतीय परम्परा में जिस विद्या का प्रयोग भवन निर्माण हेतु किया जाता था, उसकी संज्ञा वास्तुविज्ञान है। यह वास्तुविज्ञान भवन निर्माण का एक प्राचीन विज्ञान है,परन्तु आज के समय में भी यह विज्ञान उतना ही उपकारक है, जितना प्राचीन काल में था। उसका कारण इस वास्तुविज्ञान के प्रयोजन की सार्वभौमिकता तथा सार्वकालिकता है। वास्तुविज्ञान भवन में निवास करने वाले समस्त गृहजनों को सुख,सुविधा,सुरक्षा तथा समृद्धि की प्राप्ति किस प्रकार से हो? इस दिशा में चिन्तन करता है। सुख कदापि भौतिक पदार्थों से प्राप्त नहीं होता। अगर भौतिक पदार्थों में सुख निहित होता तो बड़े तथा भव्य घरों में रहने वाले और बड़ी बड़ी गाड़ियों में चलने वाले कभी दुःखी ही ना होते परन्तु लोक में अत्यन्त धनवानों को भी दुःखी तथा निर्धनों को भी सुखी देखा गया है। इससे यही ज्ञात होता है कि सुख कोई अदृष्ट तत्त्व ही है ।इसी अदृष्ट तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को जानकर हमारे मन्त्रद्रष्टा आचार्य विविध दृष्ट भौतिक पदार्थों के माध्यम से अदृष्ट सुख की प्राप्त के ज्ञान हेतु प्रवृत हुयें। इसी अन्वेषण में उन्हे भवन निर्माण के सम्बन्ध में जिस ज्ञान का साक्षात्कार हुआ,उसे उन्होंने वास्तुविज्ञान का नाम दिया। यह वास्तुविज्ञान भवन के अदृष्ट तत्त्वों पर काम करता है। इन अदृष्ट तत्त्वों में पृथ्वी,जल,तेज,वायु तथा आकाश रूपी पञ्चमहाभूतों का विचार किया जाता है।

5.3.1. पञ्चमहाभूतों का परिचय

प्राचीन समय से ही भारतीय ऋषि-मुनियों का मत रहा है कि सृष्टि की संरचना पांच तत्त्वों से मिलकर हुई है। जो कुछ भी हमें दिखाई पड रहा है वह समस्त चराचर जगत भी इन्हीं पांच तत्त्वों से मिलकर बना हुआ है। आकाश- वायु- अग्नि- जल और पृथ्वी इन पञ्चतत्त्वों को पञ्चमहाभूत भी कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इस मत का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ‘‘प्रत्येक जीव का देह पञ्चमहाभूतों से निर्मित है जो क्रमशः-क्षिति अर्थात- भूमि (पृथ्वी), जल, पावक-

अग्नि(तेज), गगन- आकाश, समीर- वायु है। यथोक्तम्-

"क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पञ्च रचित यह अधम शरीरा॥"

भारतीय वास्तुशास्त्रोपदेष्टा ऋषियों ने अपनी योगसाधना एवं आध्यात्मिक साधनाओं के बल पर **"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे"** के सिद्धान्त को जानकर जीव और ब्रह्माण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध से घटित होने वाले शुभाशुभ परिणामों का व्यापक अध्ययन किया ताकि पञ्चमहाभूतों से बने इस ब्रह्माण्ड और समस्त प्राणियों के मध्य सामञ्जस्य का ज्ञान कर उसके सम्यक् सन्तुलन से होने वाले लाभ को जाना जा सके। उन्होंने यह जानने का प्रयास किया कि इन महाभूतों का मानव के प्रयोग में आने वाले विविध भौतिक पदार्थों से सामञ्जस्य कैसे स्थापित हो? और कैसे इन आध्यात्मिक शक्तियों का सदुपयोग किया जा सके ? जिससे समस्त मानव जाति के साथ- साथ अन्य जीव-जन्तु भी समुचित लाभ उठा सके। हमारे मन्त्रद्रष्टा एवं त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियों ने इसी सर्वजनहितकारी उद्देश्य को पूरा करने के लिए वास्तुशास्त्र के विविध नियमों,विधियों एवं सिद्धान्तो का बीजवपन किया ताकि समय समय पर सुधीजन शास्त्रज्ञान के साथ-साथ इस वास्तुशास्त्ररूपीवृक्ष के विशाल होते ही अपने और दूसरों के जीवन को समृद्ध एवं दीर्घजीवी बना सके। यही वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। अमूल्यज्ञान निधि वेदों मे कहा भी है-

"जीवेम शरदः शतम्॥"

उन्हीं मुख्य सिद्धान्तों में से सर्वप्रथम आधारभूत सिद्धान्त है- पञ्चमहाभूत एवं उनका मानवमात्र पर पडने वाला प्रभाव। ये पञ्चमहाभूत मानव की पञ्चेन्द्रियों से भी सम्बन्धित है। सांख्य दर्शन के अनुसार २५ तत्त्व मिलकर इस चराचर जगत के निर्माण में सहायक होते है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्राएं, पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति मानी गई है।

सांख्यकारिका नामक दार्शनिक ग्रन्थ में आचार्य ईश्वरकृष्ण ने २५ तत्त्वों के माध्यम से सृष्टिनिर्माण प्रक्रिया का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यथोक्तम्-

"प्रकृतेर्महास्ततोऽहंकारस्तस्माद गणश्च षोडशकः।

तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्य: पञ्चभूतानि॥"

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. वास्तुशास्त्र शरीर से सम्बन्धित विज्ञान है।
2. सुख अदृष्ट तत्त्व है।
3. महाभूतों की संख्या पाँच मानी जाती है।
4. यह शरीर पाँच महाभूतों से बना है।
5. महत् से प्रकृति की उत्पत्ति हुई।
6. सांख्यदर्शन में 30 तत्त्वों की चर्चा की गई है।
7. शब्द का सम्बन्ध आकाश से है।
8. गन्ध का सम्बन्ध पृथ्वी से है।

5.4. पञ्चमहाभूतों का ग्रहों से सम्बन्ध

पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाशादि पाँच महाभूतों के समन्वय से सृष्टि के समस्त पदार्थों का निर्माण हुआ है। इन पाँच महाभूतों में प्रत्येक के अपने गुण-धर्म है। जिस पदार्थ में जिस महाभूत का आधिक्य रहता है, उस पदार्थ में उस महाभूत का ही गुण-धर्म भी परिलक्षित होता है। पञ्च महाभूतों से निर्मित सृष्टि के इन समस्त पदार्थों का सम्बन्ध ग्रहों से भी है क्योंकि प्रत्येक ग्रह का पञ्च तत्त्वों में से किसी न किसी तत्त्व के साथ विशेष सम्बन्ध है ,जिसका परिज्ञान ज्योतिषशास्त्र के विविध ग्रन्थों के अध्ययन से होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इन पञ्चतत्त्वों के स्वामी ग्रह माने गये हैं । यथा-

पञ्चतत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
स्वामी ग्रह	बुध	शुक्र, चन्द्र	सूर्य, भौम	शनि	बृहस्पति

इसी प्रकार से द्वादश राशियों को भी ४ महाभूतों मे वर्गीकृत किया गया है । यथा-

द्वादशराशियां	तत्त्व
मेष,सिंह,धनु (१,५,९)	अग्नितत्त्व
वृष,कन्या,मकर (२,६,१०)	पृथ्वीतत्त्व
मिथुन,तुला,कुम्भ (३,७,११)	वायुतत्त्व
कर्क,वृश्चिक,मीन (४,८,१२)	जलतत्त्व

इस प्रकार से द्वादश राशियों में से मेष,सिंह तथा धनु राशि का सम्बन्ध अग्नितत्त्व से वृष,कन्या तथा मकर राशि का सम्बन्ध पृथ्वीतत्त्व से मिथुन,तुला तथा कुम्भ राशि का सम्बन्ध वायुतत्त्व से और कर्क,वृश्चिक तथा मीन राशि का सम्बन्ध जलतत्त्व से होता है। जिन जातकों की जन्मराशि, जन्मलग्न अथवा नवमांशलग्न जिस तत्त्व से सम्बन्धित राशि का हो, उस जातक में उसी तत्त्व का प्रभाव देखा जाता है। यह प्रभाव उस जातक के स्वभाव तथा शारीरिक स्वास्थ्य में परिलक्षित होता है।इन पञ्चमहाभूतों के गुण-प्रकारादि का वर्णन इस प्रकार से है-

क्र. सं.	गुण-प्रकार	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
1.	**प्रकृति**	भारी	शीतल	ऊष्ण	अनिश्चित	मिश्रित
2.	**गुण**	वजन, एकजुटता	द्रवता, संकुचन	गर्म, फ़ैलाव	गति	फैलाव
3.	**वर्ण**	पीला	अभास्वर शुक्ल,सफेद	लाल	अनिश्चित	नीला
4.	**चक्र**	मूलाधार	स्वाधिष्ठान	मणिपूर क	अनाहत	विशुद्धि
5.	**तन्मात्रा**	गन्ध	रस	रूप	स्पर्श	शब्द
6.	**कोश**	अन्नमय	प्राणमय	मनोमय	विज्ञानमय	आनंद -मय
7.	**दिशा**	नैऋत्यकोण	ऐशान्यकोण	आग्नेय कोण	वायव्य-कोण	केन्द्र-स्थान
8.	**ग्रहस्वामी**	बुध	चन्द्र,शुक्र	सूर्य,भौ म	शनि	बृहस्पति

इस प्रकार से द्वादश राशियों तथा ग्रहों का पञ्च महाभूतों से सम्बन्ध है।

प्राणीमात्र का शरीर नि:सन्देह पञ्चमहाभूतों से बना है परन्तु समस्त प्राणियों के शरीर मे इन पञ्चमहाभूतों मे भूमितत्त्व का सबसे बडा भाग विद्यमान रहता है। आश्चर्य की बात यह है कि हमारे भवनादि निर्माण सम्बन्धी आवासों मे भी सर्वाधिक हिस्सा पृथ्वीतत्त्व का ही रहता है। जिसका अर्थ

है कि उस भवन मे रहने वाले सदस्यों पर सर्वाधिक प्रभाव वहां की भूमि का पड़ेगा, तदनन्तर अन्य चार महाभूतों का प्रभाव पडता है।

5.4.1. पञ्चमहाभूतों का स्वरूप तथा महत्त्व

पृथ्वीतत्त्व -

इस संसार में उत्पन्न समस्त प्राणियों को मातृवत आश्रय देने वाला सबसे पहला तत्त्व है पृथ्वीतत्त्व। जो सबसे भारी है तथा जिसे हम सभी माता कहकर पुकारते है। भवनादि निर्माण में भी सर्वाधिक एवं सर्वप्रथम अंश पृथ्वीतत्त्व का ही रहता है। अथर्ववेद भी भूमितत्त्व को मातृत्त्व स्वीकार करता है ‘‘धरती हमारी मां है और हम उसके पुत्र है। ’’ यथोक्तम्-

“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥”

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पृथ्वी तत्त्व का कारक ग्रह बुध माना जाता है। पृथ्वी का लक्षण है-

‘‘गन्धवती पृथ्वी सा चैका विभु नित्याश्च’’

अर्थात् पृथ्वी गन्ध नामक गुण से परिपूर्ण है। वह एक है, व्यापक है और नित्य है। इस तत्त्व के अन्तर्गत मनुष्य की त्रिनाडी (वात-पित्त-कफ), शरीर मे हड्डियां, मांस तथा पृथ्वी पर मिट्टी-पर्वत-पाषाणादि आते हैं। पृथ्वी पर पायी जाने वाली प्रत्येक भारी वस्तु इसके अधिकार क्षेत्र में है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में इसके आधिभौतिक और आधिदैविक दोनो स्वरूपों का वर्णन मिलता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार पृथ्वी एक विशाल चुंबक है। इस चुंबक का दक्षिणी सिरा उत्तरी ध्रुव में स्थित है तथा उत्तरी सिरा दक्षिणी ध्रुव में स्थित है। इन दोनो स्थानों पर इलेक्ट्रो मैग्नेटिक फील्ड (E.M.F) सर्वाधिक रहता है। इसी कारण दिशा सूचक यन्त्र भी सदैव उत्तर दिशा (North Direction) का ही संकेत करता है। जिससे अन्य दिशाओं का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

वास्तुशास्त्र एक वैदिक विज्ञान है जिसमें गृहस्वामी को दक्षिण दिशा की तरफ भार बढाने के लिए अधिक बल दिया जाता है ताकि उसका अहित न हो और घर मे रहने वाले समस्त प्राणी पृथ्वी तत्त्व के अन्तर्गत आने वाले दोषों से दूर रह सके। एक अन्य धार्मिक मान्यता के अनुसार दक्षिण दिशा की

तरफ पैर करके न सोने का विधान है क्योंकि इस दिशा का स्वामी यम को माना गया है जो मृत्यु के कारक है। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण कदाचित यह हो सकते है कि इस दिशा की तरफ पैर करने से इलैक्ट्रो मैग्नेटिक फील्ड अधिक होने से शरीर में रक्त का सञ्चार रुक सकता है और मस्तिष्क तक रक्त न पहुंचने से व्यक्ति की शीघ्र ही मृत्यु भी होना सम्भव है। बहुत समय पूर्व ही हमारे पूर्वज त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियों ने देश- काल और स्थिति के अनुसार वैज्ञानिक तथ्यों को धार्मिक मान्यताओं के साथ कहीं न कहीं इसलिए जोड़े रखा ताकि धार्मिक रीति-रिवाजों के साथ-साथ विज्ञान को भी बढावा मिले और जन साधारण को इन वैज्ञानिकताओं का लाभ स्वत: ही मिल जायेगा।

वास्तु एक प्राचीन विद्या है इसमे कोई संशय नही है। सुधीजनों ने सृष्टि में व्याप्त अनेकों अनिष्ट्कारी शक्तियों से हमारी रक्षण के उद्देश्य से ही इस विज्ञान को विकसित किया। पृथ्वी पर पृथ्वी तत्त्व की अधिकता या अल्पता से समुद्री विघट्न,मार्गों, पेड तथा पहाडो का अपने स्थान से विचलित होना शामिल है, जिससे अनेक प्राकृतिक आपदाएं जन्म ले सकती है जो पृथ्वी पर मानव जीवन के लिए अहितकारी है। अत: मानव को अपने स्वार्थवश पेड़-पौधों का अन्धाधुन्ध कटान तथा मार्गों का निर्माण आवश्यकता से अधिक नही करना चाहिये । मानव शरीर में पृथ्वी तत्त्व की अधिकता या न्यूनता से असंख्य रोग उत्पन्न हो सकते है क्योंकि इस तत्त्व के अन्तर्गत वात-पित्त तथा कफ तीनो ही नाडियां परिगणित है । मानव अपने किसी भी प्रकार के निर्माण सम्बन्धी कार्य गृह,मन्दिर,नगर या ग्राम के लिए सर्वप्रथमभूमि पर ही निर्भर है। अतः कहा गया है-

"पूर्वं भूमिं परीक्षेत् पश्चाद् वास्तुं समारभेत् ॥"

देश-काल और स्थिति के अनुसार भूमि का आकार-प्रकार एवं गुण बदलते रहते हैं । दिशानुसार पृथ्वी तत्त्व नैऋत्यकोण में विद्यमान रहता है । अत: मानव इस तत्त्व को सन्तुलित करने के लिए अनेक वस्तुओं का संग्रह इस कोण में करना चाहिये तथा भारी वस्तुएं इस स्थान पर रखनी चाहिए। वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि परीक्षण के लिए अनेक विधियां प्रशस्त है, जिनके माध्यम से भूमि की उच्चतम गुणवत्ता का ज्ञान तथा भू-प्लवत्व के आधार पर भूखण्ड का चयन तथा उसके आकार-प्रकार का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । यह सभी प्रक्रियाएं पृथ्वीतत्त्व के अन्तर्गत आती है । मानव शरीर में पृथ्वी तत्त्व के अनन्तर जल,तेज,वायु तथा आकाश का अंश उत्तरोत्तर कम होता चला जाता है और जिस मकान में हम निवास करते है उसमें भी लगभग उसी क्रम मे पञ्चमहाभूत पाये जाते है।

यथा- जिस भूमि पर हम भवनादि निर्माण करते है उसकी मृदा सहित सीमेन्ट,रेत,पत्थर,ईंट इत्यादि की मात्रा सर्वाधिक रहती है, फिर जल तत्त्व से भवन निर्मित होता है, उसकी मात्रा भूमि तत्त्व से कम होनी चाहिये। तदनन्तर तेज,वायु एवं आकाशादि तत्त्वों की मात्रा रहनी चाहिये। तभी भवन अधिक काल तक चिरस्थायी बना रह सकता है । इसके अतिरिक्त भवन बन जाने के बाद भी उसमें वही पांचों तत्त्व लगभग उसी अनुपात मे रखने पर उनका उचित सामञ्जस्य मनुष्य को चिरस्थायी स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करता है ।

जलतत्त्व -

पृथ्वी पर निवास करने वाले समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है- जल तत्त्व । इसके बिना मानव जीवन की कल्पना करना भी निरर्थक है । पृथ्वी का 71 प्रतिशत हिस्सा जल से ढका हुआ है तथा 1.6 प्रतिशत पानी जमीन के नीचे है और 0.001 प्रतिशत वाष्प और बादलों के रूप मे है। पृथ्वी की सतह पर जो पानी है, उसमें से 97 प्रतिशत सागरों और महासागरों में है। उसका स्वाद नमकीन है अर्थात् पीने योग्य नही है । इससे ज्ञात होता है कि पृथ्वी पर मानव जीवन के लिए सबसे उपयोगी तत्त्वों मे से जलतत्त्व का केवल 3% प्रतिशत भाग ही पीने योग्य है । उसमें भी अधिकांश हिस्सा या तो ध्रुवीय हिम के रूप मे या मृदा मे मिल जाता है । अत: हम जो पानी प्रयोग करते है, वह पृथ्वी के सतही जल की कुल मात्रा का 0.5% है । अत: इसका संरक्षण अनिवार्य है । मानव शरीर में लगभग 60 प्रतिशत जलतत्त्व होता है । मानव शरीर मे भी जलतत्त्व की कमी से अनेकों रोग उत्पन्न होते है । जैसे- ऊर्जा की कमी और थकान अधिक होना, अधिक वजन या मोटापे का बढना, समय से पूर्व बुढापे का आना, कब्ज होना, खराब कोलेस्ट्राल का बढना इत्यादि गम्भीर रोग शामिल है । पृथ्वी पर भी पानी की कमी से सूखा, वर्षा का न होना इत्यादि प्राकृतिक समस्याएं शामिल है । ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जलतत्त्व के कारक ग्रह शुक्र तथा चन्द्र है । तर्कशास्त्रानुसार जल का लक्षण है-

“शीतस्पर्शवत्यापस्तच्च मधुरम्”

अर्थात्- जो शीतल गुण लिए हुए है, त्वगेन्द्रिय द्वारा स्पर्श किया जा सकता है। जिसका स्वाद मधुर है, वह जल है । इस तत्त्व की धातु कफ है । वास्तुशास्त्र के अनुसार जल तत्त्व के देवता वरुण तथा इन्द्र है । पूर्व और उत्तर के मध्य ऐशान्य कोण मे इस तत्त्व का स्थान रहता है । यह तत्त्व मानव शरीर

मे उपस्थित जल का प्रतिनिधित्व करता है। हैण्डपंप, भूमिगत पानी की टंकी, बरसाती पानी व अन्य साफ पानी का जल प्रवाह व भण्डारण उत्तर- पूर्व मे होना सर्वोत्तम माना जाता है। स्नानघर के लिए भी पूर्वदिशा उचित मानी गयी है। जल तत्त्व प्रदूषित होने से परिवार में सदैव कलह की आशंका बनी रहती है। त्रिनाडी क्रम मे इस तत्त्व के अन्तर्गत कफ दोष आता है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में कफ दोष के प्रभावित होने से 20 प्रकार के रोग पैदा होते है। जिनमें इस दोष के बढ़ने से हमेशा सुस्ती रहना,ज्यादा नींद आना, शरीर में भारीपन, पसीने में चिपचिपाहट,शरीर में गीलापन या लेप लगा हुआ महसूस होना, सांस लेने मे कठिनाई होना, डिप्रेशन होना इत्यादि प्रमुखरूप से शामिल है। कफ की कमी के कारण शरीर मे रूखापन, बहुत प्यास लगना, नींद में कमी, शरीर में कमजोरी आना,शरीर में अन्दर से जलन महसूस होना इत्यादि समस्याएं शामिल है। अतः गृह स्वामी को इस स्थान पर जल सम्बन्धी भण्डारण का कार्य करना चाहिये, जिससे इस तत्त्व का सामञ्जस्य उसके शरीर में उचित अनुपात में बना रहे और वह उत्तरोत्तर स्वस्थता और आरोग्य को प्राप्त कर सके। विश्व में विचरण करने वाले समस्त जीव-जन्तु,पेड-पौधे एवं अन्य प्राणी समुदायों को अपने जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वायु तत्त्व के पश्चात् जलतत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। भौगोलिक विविधता के आधार पर हिमपात,अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तथा चक्रवाती तूफानों से प्रभावित होने वाले समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में वहां की जलवायु को ध्यान में रखकर ही भिन्न-भिन्न प्रकार के भवन-निर्माण का विधान है ताकि उनके उपर बर्फ या जल का ठहराव न हो सके अन्यथा भवनों की छतों को भारी क्षति पहुंच सकती है। अल्पवृष्टि वाले स्थानों पर भी जल के संरक्षण एवं भण्डारण के लिये वर्षा के जल का एकत्रीकरण किया जाये,जिससे जल की कमी को पूरा किया जा सके। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए भी वास्तुशास्त्र में जलतत्त्व को इकट्ठा करके रखने के लिए भवन में पूर्व और उत्तर के मध्यवर्ती स्थान अर्थात् ऐशान्यकोण को प्रधानता दी गयी है। तटीय क्षेत्रों में भी समुद्री तूफान तथा विभिन्न प्रकार के चक्रवातों से सुरक्षा की दृष्टि से भी वास्तुशास्त्र मे घर के चारों ओर ऊंची दीवार या मजबूत भित्ति बनाने का विधान किया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार नये जल का उत्पन्न होना असम्भव है अर्थात् मनुष्य जितने भी प्रयास कर ले, वह नये जल का निर्माण कदापि नही कर सकता है। पृथ्वी में विद्यमान जल को ही वह उपयोग में ला सकता है। बादल भी बारम्बार उसी जल को समुद्र से वाष्परूप में सोखते है और पुन: उसी जल को समुद्र मे या अन्य स्थानों पर लौटा देते है। यदि जल का वाष्पीकरण होना स्थिर हो जाता है तो बादल दोबारा कभी जलनिर्माण नही कर पायेंगे जिससे सम्पूर्ण मानव जाति के साथ-साथ अन्य प्राणियों,जीव-जन्तुओं को जल के अभाव मे मृत्यु को प्राप्त होना पडेगा। अत: हाईड्रोजन के दो अणु तथा आक्सीजन का एक परमाणु

मिलकर के जलतत्त्व का निर्माण करते है। वह जल भी हवा मे पहले से ही विद्यमान रहता है अर्थात् नये जल का निर्माण तभी सम्भव है जब वह पहले से ही विद्यमान हो।

घर मे उत्तरी भाग में जलतत्त्व का प्रभाव रहता है। जल स्वच्छता का कारक है और इसका स्वभाव है उत्तरोत्तर आगे बढते रहना। घर में जल तत्त्व का सन्तुलन अच्छा हो तो घर मे निवास करने वाले सदस्यों की चिन्तन शक्ति अधिक होती है जो निरन्तर उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग प्रशस्त करती रहती है। ऐसे घर मे रहने वाले लोग आध्यात्मिक तथा सांसारिक दोनो ही क्षेत्रों मे दक्ष होते है और यदि घर मे जल तत्त्व असन्तुलित हो या उत्तरी भाग मे कोई वास्तुदोष हो तो ऐसे घर में रहने वाले लोगो की चिन्तन शक्ति संकुचित होती है तथा जीवन मे उन्नति के अवसर कम प्राप्त होते है, जिसके परिणामस्वरूप ये लोग उन्नति और ऐश्वर्य की अपेक्षा साधारण सी आवश्यकताओं को पूरा करने में ही सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते है। छोटी-छोटी बाते परेशानियों की जड़े बन जाती है, जिससे अकारण ही चिन्ता व तनाव बना रहता है। जल के स्थान पर अन्य तत्त्वों के स्थित होने पर ऐसा प्रायः कम ही होता है क्योंकि जल का अन्य तत्त्वो के साथ सामञ्जस्य हो सकता है परन्तु जल के स्थान पर अग्नितत्त्व की उपस्थिति गृहजनों के विविध दुःखों का कारण बन जाती है क्योंकि जल व अग्नि दोनो ही एक दूसरे के विरोधाभासी तत्त्व है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक सूर्यादि नवग्रहों पर आध्यात्मिक दृष्टि से आस्था रखते हो या नही परन्तु वे सूर्यचन्द्रादि ग्रहों पर भारतीय ज्योतिष की शतप्रतिशत कालगणना से अवश्य ही प्रभावित होंगे और पूर्णिमा एवं अमावस्या को ही समुद्र में उत्पन्न होने वाले जवार- भाटे के उतार चढाव से अन्य दिनों की अपेक्षा सर्वाधिक क्यों है इस तथ्य से अवश्य हतप्रभ होंगे। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण सूर्य एवं चन्द्र दोनो प्रत्यक्ष ग्रह है।पूर्णिमा वाले दिन दोनो ही आमने-सामने १८० डिग्री पर रहते है तथा अमावस्या वाले दिन दोनो एक ही राश्यंशों पर साथ-साथ गोचर में भ्रमण करते हुए दृष्टिगोचर होते है। इस विशलेषण से यह ज्ञात होता है कि ये दोनो ग्रह अपने आकर्षण या विकर्षण के द्वारा समुद्र की समतलता में,वायुमण्डल में दबाव और भूमि के सन्तुलन में एक विलक्षण संक्षोभ पैदा करने मे समर्थ है, जिसके कारण उसी दिन ज्वार-भाटे का घटना और बढ़ना, भूकम्प,तूफान,चक्रवात जैसी प्राकृतिक घटनायें घटित होती है। उसी दिन मानव के रक्तचाप का बढना और घटना भी दिखाई देते है। ज्योतिष में मन का कारक चन्द्र को माना जाता है, जिसके फलस्वरूप दुनिया मानसिक रोगियों की हालत गम्भीर हो जाती है और आत्महत्या के मामले बढ़ जाते हैं। यह विविध अनुसन्धानों में भी सिद्ध हो चुका है। इसके पीछे यही कारण है कि मानव शरीर

में जलतत्व की अधिकता रहती है जिसका कारक चन्द्र है और पूर्णिमा या अमावस्या वाले दिन चन्द्र के प्रभावित होने से मानव भी प्रभावित होता है। इस घटनाक्रम के परिप्रेक्ष्य में हमारे त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनिजनों द्वारा प्रणीत यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे का सिद्धान्त ही लागू होता है।

अग्नितत्त्व-

मानव को जीवित रहने के लिए जिस तीसरे तत्त्व की सर्वाधिक आवश्यकता है वह है- अग्नितत्त्व। भोजन को पकाने का कार्य हो या शरीर में जठराग्नि द्वारा भोजन को पचाने का कार्य। यह अग्नि तत्त्व के बिना सम्भव नही है। शरीर में इस तत्त्व की न्यूनता या अधिकता हो जाने से असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं, जिनका उपचार अत्यन्त दुर्गम है। भारतीय मनीषियों ने अग्नि को तीन प्रकार की बताया है – दावाग्नि-जठराग्नि तथा बडवाग्नि। प्रथम रूप मे दावाग्नि- जो वन में उत्पन्न होती है। दूसरी है जठराग्नि- जो भोजन को पचाने का कार्य करती है तथा तीसरी है- बडवाग्नि- जो समुद्र में उत्पन्न होती है। इन तीनो ही अग्नि के स्वरूपों की अधिकता समस्त विश्व में रहने वाले जीव-जन्तुओ तथा मानवों के लिए घातक है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य तथा भौम इस तत्त्व के कारक ग्रह है। सृष्टि में सूर्य इस ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। जिससे प्रकाशित होकर अन्य ग्रह ऊर्जान्वित होते रहते हैं। वेदों मे सूर्यदेव को इस समस्त जड और चेतन जगत की आत्मा कहा है। यजुर्वेद (७/४२) के इस मन्त्र में इसका विवेचन मिलता है। यथा-

"सूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्च ।।"

सूर्य अखण्ड प्रकाश पुंजों से ब्रह्माण्ड को आलोकित करता है। सूर्य हमारे सौरमण्डल का सबसे बडा पिण्ड है,जिसका व्यास लगभग १३ लाख १० हजार किलोमीटर है जो पृथ्वी से लगभग १०९ गुणा अधिक है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह हाईड्रोजन एवं हीलियम गैसों का एक विशाल गोला है। सूर्य की किरणे जगत के सभी पदार्थों में रस और शक्तिवर्धन का कार्य करती है और पृथ्वी तथा वायुमण्डल सूर्य से ही ताप ग्रहण करते हैं। सूर्य की ऊर्जा को विद्युतीय ऊर्जा में परिवर्तित करने को ही मुख्य रूप से सौर ऊर्जा कहा जाता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार सौर ऊर्जा वह ऊर्जा है जो सीधे सूर्य से प्राप्त की जा सकती है। यह ऊर्जा ही पृथ्वी पर मौसम एवं जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण बनती है। अत: अग्नि एवं प्रकाशतत्त्व के जनक सूर्य को माना जाता है। अग्नितत्त्व ऊर्जा,उष्मा और ताप का प्रतीक है। अग्नित्तत्त्व के लक्षण बताते हुए तर्कशास्त्र में कहा गया है कि

"उष्णस्पर्शवत्तेजः"

मानव शरीरान्तर्गत त्रिनाडी क्रम मे इस तत्त्व की धातु पित्त कही गई है। केवल पित्त के प्रकोप से होने वाले रोगों की संख्या 40 मानी गई है, जिनमें शरीर में पित्त बढ़ने से बहुत अधिक थकावट,नींद मे कमी, शरीर में तेज जलन, ज्यादा गर्मी लगना और ज्यादा पसीना आना, त्वचा का रंग बदल जाना,अङ्गों से दुर्गन्ध आना, गले में सदा भारीपन, ज्यादा गुस्सा आना इत्यादि प्रमुखरूप से शामिल है। पित्त के कम होने से शरीर के तापमान में कमी, चेहरे की कान्ति मलिन होना, अधिक ठण्ड लगने जैसी समस्याएं होती है। वास्तुशास्त्र के अनुसार अग्नि का स्थान आग्नेयकोण में कहा गया है। अतः रसोई या अग्निसम्बन्धी (इलैक्ट्रोनिक उपकरणों आदि) के रखने के लिए इस कोण का उपयोग प्रशस्त है। इस तत्त्व के अधिष्ठात्री देवता स्वयं अग्नि तथा सूर्य है। पानी की टंकी इस स्थान पर न रखें क्योंकि जल और अग्नितत्त्व का परस्पर विरोधाभाव रहता है।

जिस प्रकार से वायुतत्त्व को प्राण कहा गया है उसी तरह अग्नितत्त्व को भी प्राण कहा जाता है। शास्त्रों मे कहा गया है- "**अग्निर्वैप्राण:**" अर्थात् अग्नि ही प्राण है। अन्य चार तत्त्वों से बना हुआ शरीर तो मात्र काष्ठ या मिट्टी की मूर्ति मात्र है परन्तु जैसे ही उस मूर्ति में प्राणरूपी अग्नितत्त्व की चेतनता जीवात्मा का प्रकाश बनकर ईश्वर द्वारा स्थापित की जाती है, तभी से वह मूर्ति चेतनता को प्राप्त करती है। लोक मे आपने देखा होगा कि जब व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसका शरीर ठण्डा पड जाता है अतः जो गर्मी रूपी उष्णता लिए हुए चेतनतत्त्व था,जब वह शरीर से निकल जाता है तो व्यक्ति निष्प्राण हो जाता है, उसे ही प्राणतत्त्व कहते है। अग्नि को ही वेदों में अमृततत्त्व अर्थात् प्राणतत्त्व कहा गया है और वह जब तक इस भौतिक देह मे स्थित है तभी तक जीवित प्राणियों की सत्ता है और उसके समाप्त होते ही स्पन्दन अर्थात् गति रुक जाती है। कहा भी गया है- अग्नि ही वह अमृतमयी ज्योति है जो मृत्युलोक के समस्त प्राणियों मे समाविष्ट होकर उन्हे चेतनता और दीर्घायु प्रदान करती है। यथोक्तम् –

"इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु"

पृथ्वी पर सूर्य एकमात्र अग्नितत्त्व अर्थात् सौर ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। भवन निर्माण करते समय सूर्य के प्रकाश को ध्यान में रखते हुए ही भूखण्ड की स्थिति का चयन उसके साथ-साथ द्वार,खिडकियों,बरामदा,रसोईघर इत्यादि का निर्माण करवाना स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है और

शरीर मे विटामिन डी की कमी नही रहती है तथा घर मे पैदा होने वाले भयानक बैक्टीरिया, कीटाणुओ आदि का नाश होता है। फलस्वरूप वहां रहने वाले प्राणियों में त्वचा जनित फंगल इन्फ़ैक्सन इत्यादि गम्भीर रोग उत्पन्न नही होते है। अतः भवन निर्माण करते समय अग्नितत्त्व को पूर्व और दक्षिण के मध्य स्थित आग्नेयकोण मे स्थापित करने के लिए रसोईघर,विद्युत मीटरादि का निर्माण करवाये तथा यह भी ध्यान रखें कि सूर्य की किरणों का घर के समस्त कक्षों मे प्रवेश अनिवार्य हो ताकि इस तत्व का उचित सामञ्जस्य भवन में बना रहे और जिसका लाभ घर में निवास करने वाले सभी मनुष्यों तथा जीवों को प्राप्त हो सके।

वायुतत्त्व -

मानव को क्षण मात्र भी जीवित रहने के लिए वायुतत्त्व की आवश्यकता पड़ती है अतः इसी से इसकी महत्ता का पता चलता है। तर्कशास्त्रानुसार इसका लक्षण बताया गया है कि –

“रूपरहितस्पर्शवान्वायुः

अर्थात् जो रूप से रहित है। जिसका कोई भी आकार या प्रकार नही है और जो केवल स्पर्शेन्द्रिय से ग्राह्य है वह वायुतत्त्व है। वायु का अर्थ आयुर्वेदानुसार वात है। यह मानव शरीर के त्रिनाडी दोषान्तर्गत आता है। पांच प्रकार की वायु मानव शरीर में विचरण करती है जो “प्राण-अपान-व्यान-उदान तथा समान है। प्राणवायु- हृदय प्रदेश में निवास करता है तथा अपान- गुदा प्रदेश में रहता है,व्यान- समस्त शरीरवर्ती है। उदान- कण्ठ प्रदेश में रहने वाला तथा समान- नाभिमण्डल में व्याप्त रहता है। उक्तञ्च-

“ हृदेप्राणः गुदेऽपानः समानं नाभिमण्डले।
उदानं कण्ठदेशस्थं व्यानं तु सर्वशरीरगः॥”

इन पञ्चवायु की अधिकता तथा न्यूनता मानव शरीर में अनेक तरह के रोगो को जन्म देती है। अतः इनका उचित अनुपात ही लाभकारी एवं आयुवर्धक माना गया है। सृष्टि में भी वायु तत्त्व की अधिकता से चक्रवात, तूफान, समुद्र में सुनामी इत्यादि अनेक विकट आपदाएं पैदा होती है। पृथ्वी को सर्वत्र वातरूपी आवरण से ढकने के कारण यह वात का आवरण ही वातावरण कहलाता है। इसमें पायी जाने वाली आक्सीजन गैस के कारण ही मानव सांस लेने में समर्थ होता है और उसका जीवनचक्र अनवरत चलता रहता है। कदाचित् हमारे मस्तिष्क तक आक्सीजन गैस पहंचने में

विलम्ब हो जाये तो हमारी अनेक कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो सकती है और शीघ्र ही हमारी मृत्यु भी हो सकती है। अतः गृह निर्माण में यह तत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। गृह में अधिक से अधिक खिडकियां निर्मित करवानी चाहिए ताकि हवा का प्रवाह निरन्तर बना रहे और घर में निवास करने वाले सभी प्राणियों का स्वास्थ्य उत्तम रहे। वास्तु के अनुसार घर के वायव्यकोण में इस तत्त्व का आधिक्य रहना अनिवार्य है। हमारे शरीर में गति से जुडी कोई भी प्रक्रिया वात के कारण ही सम्भव है। चरकसंहिता में इस वायुतत्त्व को ही पाचक, अग्नि बढ़ाने वाला, सभी इन्द्रियों का प्रेरक और उत्साहवर्धक माना गया है। वात का मुख्य स्थान पेट और आंत है। इसमें योगवाहिता का खास गुण होता है इसका अर्थ है यह अन्य दोषों कफ और पित्त के साथ मिलकर उनके गुण- दोषों को भी धारण कर लेता है जैसे कि यह कफ के साथ मिलकर शीतलता वाले गुण धारण कर लेता है और पित्त के साथ मिलकर दाहकता (गर्मी) वाले गुण धारण कर लेता है।

आयुर्वेद के अनुसार केवल वात दोष के प्रकोप से होने वाले रोगों की संख्या ८0 है। जिनमें से प्रमुख है- अङ्गों मे रूखापन और जकडन, सूई के चुभने जैसा दर्द, हड्डियों का खिसकना और टूटना, अङ्गों मे कंपकपी, सुन्न होना और ठण्डा पडना, कब्ज आदि वात के आधिक्य से होने वाले रोग है। वात कम होने से बोलने में दिक्कत, सोचने-समझने की क्षमता मे कमी, पाचन में कमी, जी मचलाना इत्यादि शामिल है। अत: गृहादि में वायव्यकोण में अनापेक्षित चीजे न रखें और यथा सम्भव वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का परिपालन करें,जिससे वहां रहने वाले प्राणियों के शरीर में वायुतत्त्व का सामञ्जस्य बना रहे।

आकाशतत्त्व –

वास्तुशास्त्र में आकाश शब्द का अर्थ है- रिक्त स्थान। पृथ्वी के साथ- साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष सहित इस तत्त्व के अधिकार क्षेत्र में आता है। यह तत्त्व शेष चार महाभूतों को अपने भीतर व्याप्त करता है। ये तत्त्व उसमें क्रीडा करने वाले बालक के समान है और यह छत्रधारी पिता की तरह उनको आश्रय प्रदान करने वाला है। इस प्रकार समस्त जड़-चेतन, अचेतनादि की स्थिति एवं आवश्यकता आकाशतत्त्व पर ही निर्भर करती है। आकाश का विशेष गुण है- शब्दशक्ति। यथा-

“शब्दगुणकमाकाशम् नित्यं विभुञ्चैकम् ॥”

अर्थात् जो सर्वदा रहने वाला तथा शब्द गुणधारी, व्यापक और अनन्त एक है- वह आकाश है। शब्द तन्मात्रा का सम्बन्ध प्राणियों के श्रोत्रेन्द्रिय से है। जिन कानो से सभी प्राणी सुनते हैं वह शब्दशक्ति आकाशतत्त्व में निहित है। इसके बिना श्रवण प्रक्रिया असम्भव है। ज्योतिषशास्त्र में श्रवणशक्ति का कारक ग्रह गुरु को माना गया है। इस तत्त्व के देवता ब्रह्मा है। वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन का उत्तर-पूर्व कोण और ब्रह्म स्थान इस तत्त्व से प्रशासित होता है। अतः इस क्षेत्र को स्वच्छ, खुला और हल्का रखें ताकि इस क्षेत्र से आने वाली सकारात्मक ऊर्जाएं बाधित न हो और घर में रहने वाले प्राणियों के शरीर में सुगमता से प्रविष्ट होकर शुभफल प्रदान कर सकें। यह क्षेत्र आत्मनिरीक्षण,शांतिपाठ,पूजन व योग की दृष्टि से सर्वोत्तम माना जाता है।

जिस प्रकार आकाश की सीमा अनन्त है उसी तरह जीवन में गुरु की महिमा भी अनन्त कही गई है। गुरु की आकाश से तुलना कदाचित इसी भावना को ध्यान रखते हुए की गई होगी। वेदों और पुराणों में इसी तत्त्व के ग्राह्य गुण शब्द, अक्षर को नाद ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। किसी भी प्रकार की क्रिया को करने के लिए एक खुला स्थान होना अनिवार्य है जो आकाशतत्त्व कहलाता है। सृष्टि में विचरण करने वाले समस्त जीवजन्तुओं के उदर में यदि खाली स्थान न होता तो खाद्य पदार्थों के पचने के लिए रिक्तस्थान के अभाव में उनका जीवन नष्टप्रायः ही हो जाता। कल्पना कीजिए कि यदि आकाश न होता तो क्या होता? तब न धरती होती, न सृष्टि होती, न ब्रह्माण्ड होता,वस्तुत: कुछ भी न होता। उसी तरह घर में रिक्तस्थान न होता तो कुछ भी निर्माणकार्य सम्भव नही हो पाता अत: आकाशतत्त्व का महत्त्व उसकी व्यापकता की तरह अनन्त और अक्षुण्ण है।

जिस प्रकार हमारे शरीर के सभी अङ्ग अपनी स्वाभाविक क्रिया केवल आकाशतत्त्व के माध्यम से ही कर पाते है। भवन में चलना, उठना, बैठना,एक दूसरे से वार्तालाप करना,संगीत सुनना,वाद्ययन्त्र बजाना, हंसना आदि कार्य इस तत्त्व की उपस्थिति के कारण ही सम्पन्न होते है। उसी तरह ब्रह्माण्ड में भी ग्रहों की गति, नक्षत्रों का स्थिर होना, निहारिका, आकाशगंगा तथा बादलों आदि की स्थिति इसी महत्त्वपूर्ण तत्त्व के कारण सम्भव है। भवन मे ब्रह्मस्थान को रिक्त रखने का विधान है जो आकाशतत्त्व का द्योतक है। घर के मुख्य केन्द्र स्थान से सभी तत्त्व केन्द्रित एवं संचालित होते है यही सभी प्रकार की सकारात्मक ऊर्जाओं का केन्द्रबिन्दु है अत: इस स्थान को खुला एवं स्वच्छ रखना अनिवार्य है, अन्यथा उस स्थान पर भारी भरकम सामग्री रखने से या शौचालयादि निर्माण करने से सम्पूर्ण भवन में नकारात्मक ऊर्जाओं का आधिपत्य हो जाता है तथा ज्योतिष के अनुसार जन्माङ्ग

चक्र का बृहस्पति पीड़ित हो जाता है,जिसके फलस्वरूप उस भवन में रहने वालो की अवनति होने लगती है क्योंकि ज्योतिषशास्त्र के अनुसार बृहस्पति सर्वाधिक भावों का कारकत्व रखता है। अतः भवननिर्माण के समय इस स्थान को पीड़ित होने से बचाना चाहिये तथा निर्माण के बाद में भी अनर्गल कूडा-कचरा आदि वहां एकत्र नही होने देना चाहिये और वहां संभव हो सके तो तुलसी का पौधा लगाना चाहिये तथा गाय के शुद्ध घी का दीपक जलाना चाहिये।

मानव शरीर तंत्रिकाओं पर खड़ा हुआ है। विभिन्न प्रकार के ऊतकों से मिलकर अङ्गों का निर्माण हुआ है। शारीरिक तंत्र में मुख्य चार अवयव है- मस्तिष्क,प्रमस्तिष्क,मेरुदण्ड और तंत्रिकाओं का पुंज। इसके अलावा कई और तंत्र है जैसे- श्वसनतंत्र, पाचनतंत्र, ज्ञानेन्द्रियां, प्रजनन तंत्रादि। इन सभी तत्त्वों को समझकर हम पांच तत्त्वों के गुणधर्मों द्वारा शरीर को सन्तुलित कर सकते है। हमारे हाथ की पांचों उंगलिया भी इन पञ्चतत्त्वों के विषय मे बताती है कि शरीर मे कौन से तत्त्व की अधिकता है और किस तत्त्व की कमी है जैसे- अंगूठा- अग्नितत्त्व का,तर्जनी- वायुतत्त्व का,मध्यमा- आकाशतत्त्व का,अनामिका- पृथ्वीतत्त्व का और कनिष्ठिका- जल तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। इन पांचों उंगलियों मे विद्युत धारा प्रवाहित होती रहती है। अतः ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक क्षेत्र के मार्गदर्शन द्वारा शरीर में जिस तत्त्व की कमी या अधिकता है, उसके उचित अनुपात को शरीर में बनाये रखने के लिए ध्यान का मार्ग प्रशस्त किया है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में जल तत्त्व की कमी होने से कनिष्ठिका और अंगूठे को मिलाकर कुछ दिन तक अभ्यास करके ध्यान लगाने से उस तत्त्व की वृद्धि होती है। भगवान ने अपने अंश में से पञ्चतत्त्वों द्वारा मानव की देह का सृजन किया और उसे सम्पूर्ण योग्यताएं एक सीमित मात्रा मे देकर इस धरा पर उतारा है। भगवान शब्द ही इन पञ्च महाभूतों का द्योतक है। भ अर्थात् भूमितत्त्व, ग- गगन अर्थात् आकाशतत्त्व, व- वायुतत्त्व, अ- अग्नितत्त्व और न- नीर अर्थात् जलतत्त्व।

इस प्रकार से पूर्वोक्त वर्णन से आपने जाना कि भारतीय शास्त्रज्ञानपरम्परा अपने आप में अद्वितीय, अनेक वैज्ञानिकताओं से परिपूर्ण एवं सर्वथा लाभप्रद है। इन पञ्चमहाभूतों का वास्तुशास्त्र में उतना महत्त्व है, जितना मानव शरीर में जीवात्मा का। इस प्रकार पञ्चमहाभूतों के विधिवत उपयोग से बने आवास में पञ्चभौतिकतत्त्वों से ही निर्मित मानव की क्षमताओं को विकसित करना ही वास्तुशास्त्र का परम उद्देश्य है।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. पृथ्वी तत्त्व का कारक ग्रह ___________ है।
2. बृहस्पति _________ तत्त्व का कारक ग्रह है।
3. मेष राशि का सम्बन्ध_________तत्त्व से है।
4. मूलाधार चक्र से ____तत्त्व का सम्बन्ध है।
5. आकाश तत्त्व का वर्ण________ है।
6. जलतत्त्व की दिशा ______ है।
7. ब्रह्मस्थान का सम्बन्ध ________ तत्त्व से है।

5.5. सारांश --

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ की संरचना में पञ्च महाभूत ही मूल है । इन महाभूतों का सन्तुलन जीवमात्र को अनेक प्रकार के सुख,सुविधा तथा समृद्धि प्रदान करता है तथा इन तत्त्वों का असन्तुलन अनेक दुःखों का कारण बन जाता है ।हमारे ऋषियों ने इसी रहस्य को जानकर **"यत पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे"** सिद्धान्त का उपदेश किया तथा अन्य शास्त्रों की तरह वास्तुशास्त्र में भी इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ऐसे भवन के निर्माण की कल्पना की, जिसमें पञ्चमहाभूतों का सन्तुलन तथा समुचित उपयोग हो सके। वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों में ये सिद्धान्त निबद्ध किए गए। आपने इस इकाई में इन पञ्च तत्त्वों के महत्त्व तथा स्वरूप को समझा तथा जाना। प्रत्येक तत्त्व की प्रकृति,वर्ण,स्वरूप, गुण,चक्र,तन्मात्रा तथा दिशा का ज्ञान भी आपने प्राप्त किया। हमारे शरीर के विविधाङ्गों से तथा भवन के विविधाङ्गों से इन तत्त्वों के सम्बन्ध का अध्ययन भी आपने किया ।किस प्रकार से भवन के निर्माण में इन पञ्च तत्त्वों का समुचित उपयोग किया जाये ? यह चर्चा भी विस्तारपूर्वक इस इकाई में की गई।

5.6. पारिभाषिक शब्दावली

१) **अन्तर्दृष्टि**- ऋषियों द्वारा समाधि की अवस्था में विकसित एक शक्ति, जिसके माध्यम से वे अपने स्थान से ही सृष्टि के विविध रहस्यों को जानने में समर्थ हो सके ।

२) **महाभूत**– इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ की रचना के मूलाधार ये महाभूत है ।इनकी संख्या पाँच है । पृथ्वी,जल,तेज,वायु तथा आकाश इनके नाम है।

३) **तन्मात्रा**– पाँच महाभूतों की पाँच तन्मात्राएं है। जिनकी संज्ञा क्रमशः गन्ध,रस,रूप,स्पर्श तथा शब्द है।

5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१) असत्य

२) सत्य

३) सत्य

४) सत्य

५) असत्य

६) असत्य

७) सत्य

८) सत्य

अभ्यास – २ की उत्तरमाला

९) बुध

१०) आकाश

११) अग्नि

१२) पृथ्वी

१३) नीला

१४) ईशानकोण

१५) आकाश

5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

5.9. सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

5.10. निबन्धात्मक प्रश्न

१) पञ्च महाभूतों पर एक निबन्ध लिखें।

२) पृथ्वीतत्त्व के स्वरूप और महत्त्व का विस्तार से वर्णन करें।

३) आकाशतत्त्व के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

४) पञ्चमहाभूतों का वास्तुशास्त्र की दृष्टि से विवेचन करें।

खण्ड -2
वास्तुशास्त्र का विभिन्न स्वरूप

इकाई - 1 वास्तुशास्त्र एवं प्राकृतिक शक्तियाँ

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वास्तुशास्त्र का परिचय
1.4 वास्तुशास्त्र का स्वरूप
1.5 वास्तुशास्त्र का महत्व
अभ्यास प्रश्न
1.6 प्राकृतिक शक्तियों का परिचय एवं स्वरूप
1.6.1 गुरुत्वाकर्षण बल
अभ्यास प्रश्न
1.6.2 चुम्बकीय शक्ति
1.6.3 सौर उफर्जा
अभ्यास प्रश्न
1.7 प्राकृतिक शक्तियों का वास्तुशास्त्र के साथ सम्बन्ध
1.7.1 गुरुत्वाकर्षण बल
1.7.2 चुम्बकीय शक्ति
1.7.3 सौर उफर्जा
अभ्यास प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 परिभाषिक शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं समस्त ज्ञान राशि का स्रोत वैदिक वाङ्मय हैं। वास्तुशास्त्र का महत्व न केवल पौराणिक काल से अपितु वैदिक काल में भी दृष्टिगोचर होता है। वैदिक काल में यज्ञवास्तु के निर्माण के सिद्धान्तों के साथ ही गृहवास्तु ही आवास का महत्व प्रतिपादित होता रहा है जिसका उन्नत रूप अन्य ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है। आवास प्राणी मात्र के लिये आवश्यक है. चाहे वह बुद्धियुक्त मनुष्य हो अथवा मनुष्येतर प्राणी। कोई भी प्राणी चाहे वह स्वयं का आवास बनाने में सक्षम हो अथवा अक्षम, वह आवास की खोज में रहता है। जैसे साँप स्वयं का बिल नहीं बना पाता तथापि उसे भी आवास हेतु बिल की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य बुद्धिशाली है, अतः उसने आवास हेतु गृहादि की परिकल्पना की। भारत में आवासादि निर्माण के सन्दर्भ में अनेक नियमों व सिद्धान्तों का प्रणयन हमारे ऋषि–मुनियों व आचार्यों ने किया। जिनका अध्ययन वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

हमारे ऋषि–मुनियों व आचार्यों ने पंचतत्वों एवं प्राकृतिक शक्तियों के सामंजस्य से गृहादिनिर्माण की विधियों को कहा है। पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पंचतत्त्वों से निर्मित मानवशरीर एवं उसके पर्यावरण का परस्पर सम्बन्ध तो स्पष्ट है ही, साथ ही अनेकों प्राकृतिक शक्तियों का यथा– गुरुत्वाकर्षण, चुम्बकीय प्रभाव, सूर्य रश्मियां इत्यादि का भी मानव शरीर एवं उसके निर्मित भवन पर प्रभाव पड़ता है। अतः इन प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान एवं उसके उपयोग की विधि को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई में हम वास्तुशास्त्र एवं प्राकृतिक शक्तियों के विषय में भली प्रकार से समझ सकेंगें।

1.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आप –

1. वास्तुशास्त्र का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. वास्तुशास्त्र के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
3. वास्तुशास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करने में सक्षम होंगे।
4. प्राकृतिक शक्तियों के स्वरूप को समझाने मे समर्थ होंगे।
5. वास्तुशास्त्रा एवं प्राकृतिकशक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को भली प्रकार से जानेंगें।

1.3 वास्तुशास्त्र का परिचय

'वस्' वासे धतु का प्रयोग निवास करने के अर्थ में हुआ है। **''वस् निवासे + वसेरगारे णिच्च''**। यहाँ 'वस्' धतु का प्रयोग रहने के अर्थ में हुआ जिसका अभिप्राय है 'वसन्ति प्राणिनो यत्र'।[1] इस प्रकार वास्तु शब्द का मूल रूप से अभिप्राय है कि जिसमें प्राणी

1. शब्दकल्पद्रुम

निवास करते हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार जिस भूमि पर भवन आदि निर्माण किया जाये अथवा जो भूमि गृहादि निर्माण के योग्य है वह वास्तु कहलाती है– 'गृहकरणयोग्यभूमिः।'[2]

वास्तु शब्द के पर्याय के रूप में ऋग्वेद में 30 से अधिक शब्दों का प्रयोग मिलता है।[3] वास्तु के सन्दर्भ में 'वेश्मभू, पोतः, वाटी' इन शब्दों का प्रयोग आचार्यों ने किया है। इसी प्रकार शब्दरत्नावली में वास्तु शब्द के लिये 'वाटिका' एवं 'गृहपोतकः' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कथासरित्सागर में भी वास्तव्य शब्द का प्रयोग रहने वाला अर्थ में प्राप्त होता है[4]

'इहैवास्मि महाराज वास्तव्यो नगरे द्विजः'।

अत एव वास्तुशास्त्र का अभिप्राय भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों एवं सिद्धान्तों के प्रतिपादक शास्त्र से है। वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक भवनों आदि के लिए भूखण्ड चयन एवं निर्माण आदि के सिद्धान्तों, उपायों एवं साधनों की व्याख्या करना है। इन सिद्धान्तों एवं नियमों के पीछे पंचतत्त्वों एवं प्राकृतिक शक्तियों का अद्भुत सामंजस्य छिपा है।

1.4 वास्तुशास्त्र का स्वरूप

वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझने के लिए वास्तुपुरुष के उद्भव की कथा जानना चाहिए। वास्तुपुरुष की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रसंग प्रचलित हैं। बृहत्संहिता के वास्तुविद्या अध्याय में वराहमिहिर जी ने वर्णन किया है कि –

किमपि किल भूतमभवद्रुन्धनं रोदसी शरीरेण।
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधेमुखं न्यस्तम्।।
यत्रा च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव।
तदमरमयं विधता वास्तुनरं कल्पयामास।।[5]

अर्थात् प्राचीन काल में अपने शरीर से पृथ्वी और आकाश को ढकने वाला कोई अपरिचित व्यक्ति उत्पन्न हुआ। उसको सहसा देवताओं ने पकड़ कर नीचे मुख कर पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। उस समय जो देवता जिस अंग को पकड़े हो उन्होंने उस अंग में अपना स्थान बना लिया, उस देवमय अपरिचित व्यक्ति को देखकर ब्रह्मा जी ने वास्तुपुरुष नाम से कल्पित किया। इसी प्रकार बृहद्वास्तुमाला में भी सतयुग के आरम्भ में एक महान् पुरुष का वर्णन प्राप्त होता है, जिसको ब्रह्मा जी ने वास्तुपुरुष की संज्ञा दी। इस प्रकार देवताओं की दिव्य शक्तियों को वरदान रूप में प्राप्त कर यह अद्भुत पुरुषाकार जीव कल्याणकारी देव बन कर वास्तुपुरुष के नाम से विख्यात हुआ। वास्तुपुरुष के अघौ में

---

2 शब्दकल्पद्रुम
3 ट्टग्वेद 2.3.8, 1.154.6, 8.10.5, 6.16.33, 1.121.2, 4.53.6 इत्यादयः
4 उद्धृत शब्दकल्पद्रुम
5 बृहत्संहिता वास्तुविद्या 2–3

स्थित विविध देवताओं के गुण आदि स्वरूप के अनुसार ही वास्तुपुरुष के उन अर्घों का गुण एवं स्वरूप निश्चित होता है। आवासीय भवन निर्माण के समय 81 पद वास्तु मण्डल का निर्माण कर वास्तुपुरुष के विविध अर्घों पर 45 देवताओं को स्थापित किया जाता है। इन्हीं 45 देवताओं की प्रकृति के अनुसार भवन में किए गये निर्माण का शुभ या अशुभ प्रभाव भवन में निवास करने वाले प्राणियों को अनुभव होता है। यदि देवता की प्रकृति के अनुरूप निर्माण की प्रकृति हो अथवा उस स्थान पर होने वाली क्रिया की प्रकृति हो तो उस स्थान का शुभ पफल अनुभव होता है, परन्तु देवता की प्रकृति के विपरीत प्रकृति की क्रिया अथवा निर्माण हो तो अशुभ फल दृष्टिगोचर होता है। अतः वास्तुपुरुष के अर्घों में स्थित इन 45 देवताओं की प्रकृति, गुण, स्वरूप आदि के सम्यक् ज्ञान द्वारा ही वास्तुशास्त्र के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होता है।

वास्तुमण्डल में 45 देवताओं में सूर्य एवं उससे सम्बन्धित मित्र, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, सावित्रा, अदिति आदि देवताओं का स्थान सम्भवतः सौरशक्ति के वास्तु पर प्रभाव को द्योतित करता है। सूर्य के कारण ही पृथिवी पर जीवन सम्भव है। पृथिवी को गुरुत्वाकर्षण एवं चुम्बकीय शक्ति प्राप्त होने में उसका सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करने का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अतः सूर्य को विश्व की आत्मा कहा गया है– **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** इसी प्रकार पृथ्वीधर संज्ञक देवता पृथिवी के आकर्षण के वास्तु पर प्रभाव को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राकृतिक शक्तियों के वास्तु पर नियन्त्राण एवं प्रभाव को वास्तुशास्त्र वास्तुमण्डलविन्यास में भी स्वीकार करता है। वस्तुतः हमारे ऋषि–मुनियों व आचार्यों ने पृथिवी के ऊपर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार की अनेक ऊर्जा शक्तियों के संचरण को अनुभव कर उसे एकात्मरूप में वास्तुपुरुष के रूप में देखा। उस वास्तुपुरुष में स्थित ऊर्जा शक्ति को पृथक्–पृथक् रूप में 45 देवशक्तियों के रूप में देखने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों ने वास्तुमण्डल के बाहर भी आठ दिशाओं में स्कन्द, अर्यमा, जृम्भक, पिलिपिच्छ, चरकी, विदारी, पूतना एवं पापराक्षसी को भी माना है। इस कारण जहाँ एक ओर सकारात्मक ऊर्जा शक्तियां हैं वहीं नकारात्मक ऊर्जा शक्तियां भी हैं। अतः उन शक्तियों की पहचान कर ऋषि–मुनियों व आचार्यों ने उनकी प्रकृति के अनुसार कक्षादि विन्यास का निर्देश दिया है।

1.5 वास्तुशास्त्र का महत्व

प्रत्येक मनुष्य के लिए आवास आवश्यक है। आवास प्राणी मात्र के लिए सुरक्षा एवं सुविध का प्रदाता होता है। जहाँ प्राणी मात्र निवास करके अपनी आवश्यकताओं का उपभोग करते हुए सुविध एवं सुरक्षा का अनुभव करता है, वही रहने योग्य आवास होता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य अपनी सुविध एवं सुरक्षा को लेकर सचेत रहा है। जिसके कारण अनेक प्रकार के दुर्ग, महल, नगर, मन्दिर, वापी, कूप, तड़ाग, उद्यानों आदि का निर्माण होता रहा है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य एक ही स्थान पर सभी प्रकार की सुविधाओं का उपयोग करते हुए सुरक्षा का भी अनुभव करता है। वास्तु को आवश्यकताओं के अनुरूप मुख्यतः आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक, इन तीन भागों में विभाजित किया गया है।

वैदिक काल से ही वास्तुशास्त्र का विकास निरन्तर होता रहा है। वास्तुशास्त्र का महत्व जन–जीवन में इसकी उपयोगिता के कारण है। इस शास्त्र की मुख्य बात यह है, कि यह पंचमहाभूतों से बने इस शरीर एवं पंचमहाभूतों से बनी इस प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने के सिद्धान्तों का वर्णन करता है। दर्शन, कला एवं विज्ञान आदि से सम्बन्धित सभी शास्त्र पंचमहाभूतों से निर्मित प्रकृति एवं मानव के मध्य स्थापित सम्बन्धों का, इनके बीच बन रहे संतुलन एवं असंतुलन के फल का पूर्ण समर्थन करते हैं, परन्तु इस संतुलन का निर्माण किस प्रकार किया जाए? इस विषय पर वास्तुशास्त्र विशेष रूप से चिन्तन करता है। अतः वास्तुशास्त्र ही धर्म, वर्ण, जाति, क्षेत्र आदि के पक्षपात से मुक्त होकर पंचमहाभूतों, प्राकृतिक शक्तियों एवं भवन के मध्य इस प्रकार सामंजस्य स्थापित करता है, कि उस भवन में निवास करने वाले सभी प्राणी अपने आधिभौतिक, आधिदैविक, और आध्यात्मिक विकास को, सुविधा एवं सुरक्षा के साथ प्राप्त कर सकें। इसलिए वास्तुशास्त्र का महत्व बढ़ जाता है। अथर्ववेद के उपवेद के रूप में स्थापत्यवेद ही वास्तुशास्त्र है। जिस कारण वैदिक चिन्तन इष्ट प्राप्ति एवं अनिष्ट परिहार का अलौकिक उपाय बताना भी वास्तुशास्त्र की अवधरणा में सम्मिलित है। अतः वास्तुशास्त्र के नियम व सिद्धान्त मानव के लिए अभीष्ट गृहनिर्माण की परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं। साथ ही वास्तुशान्ति प्रभृति उपायों का कथन अनिष्ट परिहार के लिए मनुष्य को अभिप्रेरित करता है।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. गृहादि निर्माण के योग्य भूमि क्या कहलाती है?

प्रश्न 2. शब्दरत्नावली में वास्तु शब्द के लिये कौन से शब्द प्रयुक्त हुए हैं?

प्रश्न 3. इक्यासी पदवास्तुमण्डल में कितने देवताओं को स्थापित किया जाता है?

प्रश्न 4. विश्व की आत्मा किसे कहा गया है?

प्रश्न 5. वास्तुमण्डल के बाहर भी आठ दिशाओं में किन किन देवादि को स्थित माना गया है?

प्रश्न 6. वास्तु को मुख्यतः कितने भागों विभाजित किया गया है?

1.6 प्राकृतिक शक्तियों का परिचय एवं स्वरूप

प्रकृति ही सृष्टि का आधर है। सृष्टि की उत्पत्ति, उसका विकास एवं प्रलय से उसका विनाश ये सारी प्रक्रियाएँ प्रकृति द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। प्रकृति ही इस जगत का कारण है। प्रकृति ही इस जगत की प्रारम्भिक इकाई है जिससे अन्य भिन्न–भिन्न व्यवस्थाएं निकलती हैं।

यह प्रकृति अनन्त शक्तियों का भण्डार है जो इस सृष्टि को नियन्त्रित करने में सहायक होती हैं। इन अनन्त शक्तियों में से वास्तुशास्त्र मुख्यतः सौर उर्जा, गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं चुम्बकीयशक्ति के उपयोग करने की विधि का वर्णन करता है। इन तीनों शक्तियों का केन्द्र सूर्य और पृथ्वी हैं। प्रकृति की अन्य शक्तियाँ भी वास्तुशास्त्र के अनुसार अप्रासंगिक नहीं है किन्तु वास्तुशास्त्र का क्षेत्र केवल भवन और उसमें रहने वाले प्राणियों

तक ही सीमित है। अतः यह गृह निर्माण के लिए भूखण्ड और उसके आसपास के वातावरण में विद्यमान इन तीन प्रमुख शक्तियों के प्रभाव का विचार करता है।

1.6.1 गुरुत्वाकर्षण बल –

इस ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपनी ओर आकर्षित करता है। दो पिण्डों के बीच यह आकर्षण उनके द्रव्यमान के कारण कम या अधिक होता है। इसी आकर्षण बल को ही गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं। इस बल का केन्द्र पिण्ड के मध्य होता है। पृथिवी में भी गुरुत्वाकर्षण बल विद्यमान है। जिसका केन्द्र पृथिवी के नाभि में स्थित है। इसी गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथिवी के ऊपर स्थित सभी वस्तुएं टिकी हुई हैं। जब किसी वस्तु के अन्दर गुरुत्वाकर्षण बल से अध्कि विपरीत बल उत्पन्न होता है तो वह वस्तु पृथिवी से ऊपर उठती है। जैसे जब हम कूदते हैं, तो हमें अपने शरीर में गुरुत्वाकर्षण बल से अधिक विपरीत बल उत्पन्न करना पडता है तो हम पृथिवी की सतह से ऊपर उठते हैं परन्तु जैसे ही हमारा लगाया हुआ बल पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण बल से कम होता है, हम पुनः पृथिवी पर आ जाते हैं। इसी नियम के आधर पर जहाज आसमान में उड़ते दिखाई देते हैं। यही नियम कृत्रिम उपग्रह युक्त रॉकेट प्रक्षेपण आदि में भी प्रयुक्त होता है। पृथिवी से बाहर रॉकेट प्रक्षेपण करते समय रॉकेट में इतनी ऊर्जा उत्पन्न की जाती है कि उसका पृथिवी के गुरुत्व बल से विपरीत बल पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण बल से इतना अधिक हो जाता है कि वह पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण बल की सीमा से बाहर चला जाता है। जब कभी कोई उल्का अथवा कृत्रिम उपग्रह आदि के अंश पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण बल की सीमा के अन्दर आते हैं तथा उनका पृथिवी के गुरुत्वबल के विपरीत बल, गुरुत्वाकर्षण बल से कम हो जाय अथवा पृथिवी की दिशा की ओर ही उनका बल हो तो वह पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण बल से खिंच कर पृथिवी पर गिर पड़ते हैं। यदि पृथिवी के अन्दर पर्याप्त गुरुत्वाकर्षण बल न हो तो कई वस्तुएं आसमान में ही घूमती रह जायेंगी। चन्द्र में गुरुत्वाकर्षण बल पृथिवी की अपेक्षा कम है, जिस कारण वहाँ मनुष्य चलने के बजाय उड़ता हुआ सा अनुभव करता है। इसी प्रकार बृहस्पति में पृथिवी की अपेक्षा गुरुत्वाकर्षण बल अधिक है, अतः पृथिवी पर स्थित जिस वस्तु का वजन 1 किलोग्राम है उसका वजन बृहस्पति में 2.34 किलो होगा।

यह गुरुत्वाकर्षण बल कई प्रक्रियाओं को पूर्ण करने में सहायक होता है। चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा, पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा, पृथ्वी पर गिरने वाली वस्तुओं की गति को संचालित करना आदि कार्यों का संचालन पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा होता है।

यहाँ स्मरणीय तथ्य है कि सभी वस्तुओं पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव एक जैसा पड़ता है परन्तु पृथिवी के वातावरण के कारण हमें प्रत्येक वस्तु पर लगने वाला बल पृथक् पृथक् अनुभव होता है। जैसे किसी ऊँचे स्थान से यदि रुई का टुकड़ा और भारी पत्थर एक साथ पफेंका जाय तो पत्थर पहले जमीन पर गिरेगा तथा रुई का टुकड़ा बाद में। इसी के आधार पर प्रत्येक वस्तु पर लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल भिन्न भिन्न होता है।

'सिद्धान्तशिरोमणि' मे भास्कराचार्य ने गुरुत्वाकर्षण बल को केवल पृथिवी के सन्दर्भ

में ही प्रयोग किया है। अतः वे लिखते हैं –

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्तया।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।[6]

तात्पर्य है कि पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति है, जिस कारण आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथिवी की ओर आकर्षित हो कर उस पर गिरते हुए दिखाई देते हैं।

गुरुत्व का सामान्य अर्थ वजन या भार है। इसका अर्थ है कि जिस वस्तु में जितना अधिक भार होगा उसका गुरुत्वाकर्षण बल उतना ही अध्कि होगा। अर्थात जो वस्तु जितनी ठोस और घनत्व वाली होगी उसके प्रति पृथ्वी का उतना ही अध्कि गुरुत्वाकर्षण होगा।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 7. वास्तुशास्त्र मुख्यतः किन प्राकृतिक शक्तियों के उपयोग करने की विधि का वर्णन करता है?

प्रश्न 8. भास्कराचार्य ने किस ग्रन्थ में गुरुत्वाकर्षण बल का वर्णन किया है?

प्रश्न 9. किस बल के कारण पृथिवी के ऊपर स्थित सभी वस्तुएं टिकी हुई हैं?

प्रश्न 10. पृथिवी पर स्थित जिस वस्तु का वजन 1 किलोग्राम है उसका वजन बृहस्पति में कितना होगा?

प्रश्न 11. जब किसी वस्तु के अन्दर गुरुत्वाकर्षण बल से अधिक विपरीत बल उत्पन्न होता है तो उस वस्तु पर क्या प्रभाव होगा?

प्रश्न 12. सभी वस्तुओं पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव एक जैसा पड़ता है या अलग अलग पडेगा?

1.6.2 चुम्बकीय शक्ति –

चुम्बकीय शक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित सब वस्तुएँ – ग्रह, नक्षत्र, तारे इत्यादि इसी शक्ति से आपस में जुड़े हुए हैं। चुम्बकीय शक्ति प्रकृति की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह सृष्टि में होने वाली क्रियाओं को संचालित करती है।

पृथिवी के चुम्बकीय क्षेत्रा को भू चुम्बकीय क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता है। यह वह चुम्बकीय क्षेत्र है, जो पृथिवी के आन्तरिक भाग में से अन्तरिक्ष में फैलता है, जहाँ से सूर्य की ओर से आ रही सौर वायु और आवेशित कणों से पृथिवी को बचाता है। इन कणों की गति पृथिवी के चुम्बकीय क्षेत्र से प्रभावित होती है। और यह स्वयं भी पृथिवी के चुम्बकीय क्षेत्र व्यवस्था में परिवर्तन ला सकते हैं।

पृथिवी में चुम्बकीय क्षेत्र होने का मुख्य कारण यह है कि पृथिवी के बाहरी कोर में पिघले हुए लोहे और निकल के मिश्रण की संवहन धराओं की गति के कारण विद्युत धारायें उत्पन्न होती है, और पृथिवी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण उन विद्युत धाराओं में से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है। यह प्रक्रिया प्रायः उसी प्रकार काम करती है जैसे साइकिल पर डायनेमो लाइट। जब साइकिल को चलाया जाता है तब डायनेमो में उपस्थित चुम्बक घूमने लगते हैं। जिस कारण विद्युत प्रवाह उत्पन्न होता है। जिससे बल्ब जलाया

6. सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय भुवनकोश 06

जाता है। अगर बल्ब की जगह विद्युत प्रवाह को एक ही जगह पर घुमाया जाय तो वह एक विद्युत चुम्बक बन जायेगा। ठीक उसी प्रकार पृथिवी का चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है।

पृथिवी के चुम्बकीय क्षेत्र में होने वाले बड़े विक्षोभों को चुम्बकीय तूफान कहते हैं। चुम्बकीय तूफानों की तीव्रता ध्रुवीय प्रकाश के क्षेत्रों में सर्वाधिक होती है। पृथिवी एक बड़ी चुम्बक या एक एक बड़ी परिनालिका की भांति कार्य करती है। इस विशाल चुम्बकत्व का स्रोत पिघली हुई आवेशित द्रव धातु है जो पृथिवी के कोर के अन्दर धाराप्रवाह को उत्पन्न करती है। इस कोर की त्रिज्या लगभग 3500 किलोमीटर है।
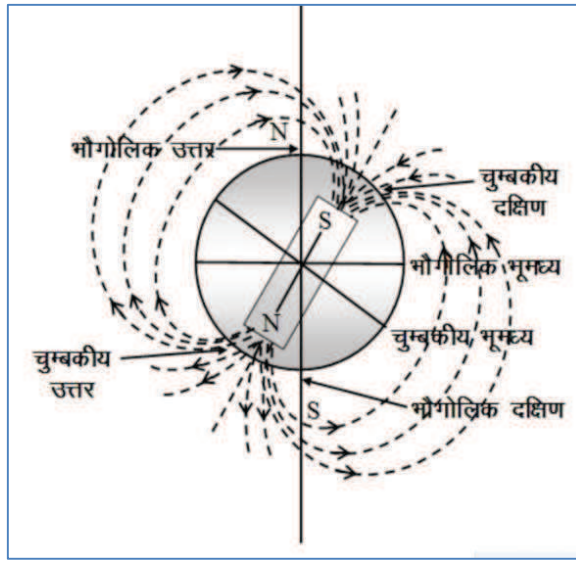
ब्रह्माण्ड के अन्य पिण्डों की तरह पृथ्वी भी एक बहुत बड़ा चुम्बकीय पिण्ड है। पृथ्वी में यह चुम्बकीय शक्ति करोड़ों वर्षों से निरन्तर अपनी कक्षा तथा अपने अक्ष पर भ्रमण करने से आई है। पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के दो ध्रुव हैं उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव एवं दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव। भू–चुम्बकीय तरंगों का प्रवाह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर रहता है। पृथिवी में स्थित चुम्बकीय क्षेत्र के दोनों चुम्बकीय ध्रुवों की स्थिति इस प्रकार से हैं –

1. दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव – यह उत्तरी भौगोलिक ध्रुव के समीप ही है।
2. उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव – यह दक्षिणी भौगोलिक ध्रुव के निकट है।

किसी भी चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं – उत्तर ध्रुव तथा दक्षिण ध्रुव। जब दो चुम्बकों के समान ध्रुवों को सामने लाया जाता है तो वे एक दूसरे से दूर जाते हैं और जब दोनों अलग ध्रुवों को पास में लाया जाय तो वे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। अर्थात् चुम्बक के सजातीय ध्रुवों के बीच विकर्षण और विजातीय ध्रुवों के मध्य आकर्षण होता है। इसी कारण किसी भी कम्पास की नोक सदैव उत्तर की ओर रहती है।

पृथ्वी के ही समान मानव शरीर में भी दो ध्रुव हैं सिर उत्तरी ध्रुवद्ध तथा पैर दक्षिणी ध्रुव। इसी कारण उत्तर की ओर सिरहाना करके सोने को शास्त्र सम्मत नहीं माना जाता क्योंकि इससे पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का दक्षिणी ध्रुव तथा मानव शरीर का उत्तरी ध्रुव एक ही ओर होते हैं जिससे परस्पर आकर्षण होता है। जिस कारण मनुष्य के रक्तकणिकाओं में स्थित लौहतत्व आकर्षित होकर सिर की ओर एकत्रित होने लगता है, जिससे उत्तर की ओर सोने पर अनिद्रा, शिरोवेदना आदि रोग सम्भावित होते हैं। इसलिए आधुनिक वैज्ञानिक भी उत्तर की ओर सिरहाना कर सोने का निषेध करते हैं।

पृथिवी की चुम्बकीय शक्ति प्रकृति प्रदत्त एक महान् शक्ति है जिसके द्वारा सौरवायु, सोलर विंडद्ध, कॉस्मिक किरण जैसी अनेक सम्भावित रेडिएशन से पृथिवी पर स्थित प्राणियों का बहुत सीमा तक बचाव होता है। इस प्रकार यह एक प्रकार का हमारा रक्षाकवच है। जीववैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथिवी के चुम्बकीय शक्ति के कारण ही पक्षियों को प्रवास में मार्गदर्शन भी मिलता है। चुम्बकीय बल के प्रति जीव जन्तु भी संवेदनशील होते हैं। जीववैज्ञानिकों ने अपने शोध से यह निष्कर्ष निकाला है कि कीचड़ में पाये जाने वाले अधिकांश जीवाणुओं मैग्नेटो टेक्टिक के अग्रिम भागों में पाये जाने वाले ठोस क्रिस्टलों के वजन के कारण इन जीवाणुओं का अगला सिरा नीचे की ओर उन्मुख हो जाता है। ये ठोस क्रिस्टल चुम्बकीय गुणों से युक्त होते हैं। जिस कारण इन मैग्नेटो टेक्टिक जीवाणुओं का संचलन आसान रहता है। इसी प्रकार जीववैज्ञानिकों ने कई अन्य जीव–जन्तुओं का पता लगाया है जिनमें पृथिवी के चुम्बकीय बल के प्रति अधिक संवेदनशीलता होती है। जिनमें कुछ प्रवासी पक्षी और कबूतर प्रमुख हैं। इन प्रवासी पक्षियों एवं कबूतरों की विशेषता होती है कि वे अपने निवास स्थल से सैकड़ों मील दूर जाने पर भी वापिस अपने घर पहुँच जाते हैं। वैज्ञानिकों की संकल्पना के अनुसार इन पक्षियों में चुम्बकीय बल की मात्राा को आंकने की क्षमता होती है। क्योंकि यह चुम्बकीय बल अक्षांश के साथ घटता बढ़ता है, इसलिए इस क्षमता के आधर पर इन पक्षियों को अक्षांश के आधर पर स्थानविशेष का अनुमान हो जाता है। वैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया है कि पृथिवी के चुम्बकीय बल में छोटे मोटे बदलाव से भी कबूतरों की अपने घर पहुँचने की क्षमता प्रभावित हो जाती है। माना जाता है कि शार्क एवं अधिकांश रे मछलियाँ अपनी विद्युतीय संवेदनशीलता का उपयोग चुम्बकीय बल की दिशा का पता लगाने में करती है। इन जीवों के संवेदनशीलता का आधर यद्यपि ज्ञात नही है परन्तु इन जीवों में तन्त्रिाका तन्त्रा से जुडे हुए मैग्नेटाइट पत्थर के बारीक टुकडे पाये गये हैं। इसी प्रकार मधुमक्खी, मछली आदि में भी पृथिवी के चुम्बकीय बल के प्रति अधिक संवेदनशीलता पायी जाती है। कई वैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि पृथिवी के चुम्बकीय बल में होते आये बदलावों की जैव विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। पृथिवी पर जीवन के प्रारम्भिक दिनों में चुम्बकीय बल ने कॉस्मिक किरणों व सोलर विंड के कणों को पृथिवी के बाहर ही रोककर पनपते जीवन को नष्ट होने से बचाए रखा। पृथिवी पर कई बार चुम्बकीय बल के क्षेत्रा में न्यूनता भी आयी है, जिस कारण पृथ्वी में आने वाले आवेशित कणों की मात्राा में वृद्धि हुई होगी।

जिसके परिणाम स्वरूप जीवों में गुणसूत्राों की व्यवस्था में गड़बड़ी से जीव–जन्तुओं की प्रजातियों में कई परिवर्तन आये हैं। इस प्रकार चुम्बकीय बल का प्रभाव पृथिवी एवं उसमें रहने वाले जीवजन्तुओं पर अवश्य पड़ता है। अतः मनुष्य एवं उसके वातावरण को प्रभावित करने में पृथिवी की चुम्बकीय शक्ति की भी अवश्य महत्वपूर्ण भूमिका है। जिसका समायोजन का विचार वास्तुशास्त्र अवश्य करता है

1.6.3 सौर उर्जा –

पृथ्वी पर उर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य ही है। ऋग्वेद में सूर्य को सम्पूर्ण संसार की आत्मा कहा गया है– **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।**[7]यही जीवन प्रदाता है। सूर्य के विना पृथिवी में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यह सूर्य स्वयं जल कर हमें जीवन शक्ति प्रदान करता है। सूर्य से आने वाली ताप की मात्राा कुछ भी परिवर्तित हो जाय तो पृथिवी में जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। ताप की वृद्धि होने पर हम जल जायेंगे और ताप की न्यूनता होने पर ठण्ड से मर जायेंगे। इसलिए सूर्य को संसार की आत्मा कहते है। सूर्य को सर्वप्रथम अर्थात् आदि में उत्पन्न होने के कारण आदित्य भी कहा गया है।

सूर्य के ताप से उष्मा उत्पन्न होती है। इस हेतु सूर्य अपने अन्दर स्थित हाइड्रोजन को जलाता है। इसीलिए कौषीतकी ब्राह्मण में कहा गया है – **असौ वै सूर्यो यो असौ तपति।**[8] इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है – **यश्चासौ तपते सूर्यः।**[9] सूर्य के तपने से उष्मा निकलती है – **सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्तते।**[10] भूमि पर स्थित प्राणियों के जीवन पर सूर्य के ताप का क्या प्रभाव होता है? इस विषय पर पुराणों का कथन है कि –

उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत्।
यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन् अम्भो गभस्तिभिः।
पार्थिवाग्निविमिश्रो{सौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः।।
उदिते हि पुनः सूर्ये ह्यौष्ण्यमाग्नेयमाविशेत्।
संयुक्तो वहि्नना सूर्यस्तपते तु ततो दिवा।।[11]

अर्थात् पार्थिव अग्नि के परमाणु आपः के साथ सूर्य रश्मियों द्वारा सूर्यमण्डल की शुचि अग्नि के साथ मिश्रित होते हैं। वही पार्थिव अग्नि की उष्णता सूर्य रश्मियों में ताप उत्पन्न करती है। वहि्न से संयुक्त सूर्य दिव में तपता है। वैदिककालीन सृष्टि सम्बन्धित विचारों में आपः एक महत्वपूर्ण परमाणु इकाई है। पं. भगवत् दत्त के मत में हाइड्रोजन आपः का ही रूपान्तर है। अतः वैदिक विज्ञान की अवधरणा के अनुसार यह निश्चित है कि सूर्य में आपः प्रधान है।[12] जिसे आजकल हाइड्रोजन कहा जा सकता है। सूर्य में यही हाइड्रोजन उसके ताप का कारण है। सूर्य की उफर्जा का कारण सूर्य के केन्द्र में होने

7 ट्टग्वेद 1/115/1
8 कौषीतकी ब्राह्मण 5/8 उद्धृत ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार पृ. 50
9 ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वार्ध 25/11 उद्धृत ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार पृ. 50
10 उद्धृत ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार पृ. 50
11 ब्रह्माण्ड पुराण एवं विष्णु पुराण उद्धृत ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार पृ. 50
12 ब्रह्माण्ड और सौरपरिवार पृ. 51

वाली नाभिकीय अभिक्रिया है जिसमें परमाणुओं में होने वाले पारस्परिक घर्षण से ताप और तेज की उत्पत्ति होती है। इसलिए सौर उर्जा को नाभिकीय बल भी कहा गया है।

सूर्य का व्यास लगभग 865680 मील है। इसकी पृष्ठीय परिधि से इसकी ज्वालाएं 200–300 मील प्रति सैकेण्ड की गति से लगातार उफपर की ओर लपकती हैं। सूर्य से प्रति सैकेण्ड 3.6×10^{26} वाट शक्ति विश्व को देता है, जिसका मात्र दो सौ करोड़वां भाग पृथिवी लेती है। इससे सौर उर्जा की शक्ति का पता चलता है।[13]

सूर्य से निकलने वाले विकिरणों से पृथ्वी पर उफर्जा, उष्मा तथा प्रकाश का संचार होता है। सूर्य से निकलने वाली विकिरणों को मुख्यतया तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

1. पराबैंगनी किरणें – पराबैंगनी किरणें शीतल और विषाणुओं को नष्ट करने वाली होती है। ये किरणें बैंगनी, नीला और आसमानी रंगों के मिश्रण से बनती है।

2. वर्णक्रम प्रकाश – वर्णक्रम प्रकाश में इन्द्रधनुष के सात रंग होते हैं– बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल रंग होते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में सूर्य की सप्तरश्मियों का वर्णन मिलता है। आज के वैज्ञानिकों के मतानुसार भी सूर्य की किरणों में मुख्यतः सात रंग हैं। प्रिज्म की सहायता से इन सात रंगों को देखा जा सकता है। इन्द्रध्नुष में भी इन्हीं सात रंगों को देखा जा सकता है। सूर्य के सात रंग की किरणों का अलग–अलग प्रभाव होता है।

3. रक्ताभ किरणें – रक्ताभ किरणें उष्ण होती हैं। इनमें भी रोगों को दूर करने की क्षमता होती है। ये लाल नारंगी और पीले रंग के मिश्रण से बनती हैं।

सूर्य के सात रंग की किरणों का अलग–अलग प्रभाव होता है। वस्तुतः नीले और बैंगनी रंग शीतल होते हैं। प्रातः कालीन सूर्य की किरणों में पराबैंगनी किरणों की अध्किता होती हैं तथा रक्ताभ किरणें कम होती हैं। इस कारण उदय होते हुए सूर्य की किरणें शीतलता प्रदान करने के साथ–साथ आरोग्यता का वरदान भी देती है। प्रातः कालीन सूर्य की पराबैंगनी किरणें रात्रि के प्रदूषण और विषाणुओं को नष्ट कर भूमण्डल के वातावरण को शुद्ध एवं स्वच्छ बना देती है। इस समय सूर्य की किरणों से शरीर को पोषक विटामिन डी इत्यादि तत्त्व भी प्राप्त होते हैं।[14] ट्टग्वेद के अनुसार उदित होता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को दूर करता है –

'उद्यन्नद्य मित्रामह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।।[15]

यह न केवल हृदय रोग अपितु पीलिया, रक्त की कमी आदि अनेक रोगों को दूर करता है। मत्स्य पुराण के अनुसार यदि निरोगी रहना चाहते हो तो सूर्य की उपासना करें–

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' ।[16]

---

13 भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 27
14 भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 25–26
15 ट्टग्वेद 1/50/11
16 मत्स्यपुराण 68/41

प्रातः काल की सूर्य रश्मियां सहनीय होती हैं। तत्पश्चात् जैसे जैसे दिन बढ़ता है, धूप में रक्ताभ ;इन्प्रफारेडद्ध किरणों की मात्राा बढ़ती जाती है, जिससे धूप में गर्मी और तेजी से बढ़ती जाती है। दिन के तीसरे प्रहर में सूर्य की धूप में स्थित रक्ताभ किरणों से असहनीय गर्मी होने लगती हैं। इसलिए उनसे बचाव करना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः जैसे–जैसे हम बैंगनी से लाल रंग की किरणों की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे शीतलता कम होती है और उष्णता बढ़ती जाती है। इस क्रम में पराबैंगनी किरणें सबसे शीतल और रक्ताभ किरणें सबसे ज्यादा उष्ण होती हैं।[17]

सूर्य ही हमारे जीवन को गतिशीलता प्रदान करता है और हमारी नित्य क्रियाओं को व्यवस्थित एवं संचालित करता है। पृथिवी और उस पर जीवन की उत्पत्ति का मूलकारण सूर्य ही हैं। यह न केवल पृथिवी को अपनी कक्षा में घूमाता है, अपितु यह हमारे जीवन की गतिविधियों का भी सूत्रधार है। हमारी दिनचर्या का प्रारम्भ सूर्योदय से और उपसंहार सूर्यास्त के साथ होता है।[18] इसलिए आचार्य कल्याण वर्मा ने कहा है–

यस्योदये जगदिदं प्रतिबोधमेति मध्यस्थिते प्रसरति प्रकृतिक्रियासु।
अस्तंगते स्वपिति चोच्छ्वसितैकमात्रां भावत्राये स जयति प्रकटप्रभावः।।[19]

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 13. पृथिवी में चुम्बकीय क्षेत्र होने का मुख्य कारण क्या है?
प्रश्न 14. चुम्बकीय शक्ति के द्वारा पृथिवी का बचाव किनसे होता है?
प्रश्न 15. पराबैंगनी किरणों में क्या गुण होता है?
प्रश्न 16. इन्द्रधनुष के सात रंग कौन कौन से होते हैं?
प्रश्न 17. ऋग्वेद के अनुसार उदित होता हुआ सूर्य किन रोगों को दूर करता है?
प्रश्न 18. मत्स्य पुराण के अनुसार यदि निरोगी रहना चाहते हो तो किस देव की उपासना करनी चाहिए?

1.7 प्राकृतिक शक्तियों का वास्तुशास्त्र के साथ सम्बन्ध

हमारे ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों ने प्रकृति एवं सृष्टि के रहस्यों का साक्षात्कार कर के हमारे जीवन में प्रकृति की शक्तियों का उपयोग करने हेतु वास्तुशास्त्र के रूप में अनेक नियमों एवं सिद्धन्तों का प्रतिपादन किया है। आज हम वैज्ञानिक कसौटी पर इन नियमों एवं सिद्धान्तों के पीछे छिपे हुए रहस्यों को पूर्ण रूप से नहीं खोज पाये हैं। इसका कारण वैज्ञानिक तथ्यों का केवल भौतिक स्तर पर ही कार्य करना भी है। जबकि हमारे ऋषियों एवं मनीषी आचार्यों ने अन्तश्चक्षुओं के द्वारा इन्हें अनुभूत किया है। अतः विज्ञान अपनी प्रारम्भिक दशा में होने के कारण इन नियमों व सिद्धान्तों का पूरा पूरा विवेचन नही कर पाता। धीरे धीरे वैज्ञानिक अनुसन्धानों में जैसे जैसे परिपक्वता आयेगी, हमें

17 भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 26
18 भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ.26
19 सारावली 1/1

वास्तुशास्त्रीय नियमों की अच्छी एवं तर्कसंगत वैज्ञानिक व्याख्या मिल जायेगी।[20] प्रस्तुत पाठ्यांश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राकृतिक शक्तियों का वास्तुशास्त्र के साथ सम्बन्ध को बताने का एक छोटा सा प्रयास प्रस्तुत है।

1.7.1 गुरुत्वाकर्षण बल –

वास्तुशास्त्र की दृष्टि से पृथ्वी की यह गुरुत्वाकर्षण शक्ति इस पर बनने वाले भवनों को स्थिरता एवं स्थायित्व प्रदान करती है। गृह–निर्माण में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के घनत्व तथा वजन पर घर की स्थिरता और स्थायित्व निर्भर है। भवनों को स्थायित्व के अनुसार मुख्यरूप से चार भागों में वर्गीकृत किया गया है।

1. झोपड़ी या पर्णकुटी आदि घासफूस व लकड़ी के बने मकान,
2. मिट्टट्ठी से बने कच्चे घर,
3. ईंट चूने से बने पक्के घर,
4. पत्थर से बने पक्के घर

इन चारों प्रकार के मकानों में क्रमशः अधिक स्थायित्व का कारण इनमें उपयोग होने वाली सामग्री के घनत्व व भार में भी वृद्धि होती है। जैसे – बांस, बल्ली, फूस की अपेक्षा लकड़ी में, उससे अध्कि मिट्टट्ठी और खपरैल में, उससे अध्कि ईंट चूना एवं सीमेंट में वजन तथा घनत्व अधिक होता है। इसके महत्व के विषय में बृहद्वास्तुमाला मे कहा भी गया है –

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे।।[21]

वास्तुशास्त्र में गुरुत्वाकर्षण शक्ति का उपयोग केवल गृह–निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामग्री मात्रा में नहीं अपितु गृह–निर्माण के लिए उपयोग में लाए जाने वाले भूखण्ड की मिट्टट्ठी के घनत्व की जाँच में भी किया जाता है। क्योंकि यदि भवन निर्माण के लिए खोदते समय भूमि में दीमक, अजगर, भूसा, ह्यस्त्री, राख, अण्डे, कौड़ी, रूई, जली हुई लकड़ी, खप्पर अथवा लोहा मिले तो वहाँ आवास नहीं बनाना चाहिए। [22] भूखण्ड की मिट्टी में इन चीजों के मिलने से उस स्थान की मिट्टी ठोस न होकर पोली होती है। जिस पर गुरुत्वाकर्षण का अधिक प्रभाव से भवन धँस सकता है। जहाँ भूमि की मिट्टी ठोस होती है वहाँ गुरुत्व शक्ति के प्रभाववश भवन को स्थिरता प्राप्त होती है। इसलिए वास्तुशास्त्र के सभी आचार्यों ने खात की विध्ि के माध्यम से भूखण्ड की और भवन निर्माण सामग्री के माध्यम से भवन के स्थायित्व का विचार किया है। इसे निश्चित रूप से भूमि की गुरुत्वशक्ति का समुचित उपयोग करने का शास्त्रीय प्रयास कहा जा सकता है।[23]अतः यह स्पष्ट है कि वस्तु के घनत्व का सम्बन्ध सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण से होता है, इसी उद्देश्य से

[20] भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 27
[21] बृहद्वास्तुमाला मिश्रप्रकरण 5
[22] बृहद्वास्तुमाला मिश्रप्रकरण 114–115
[23] भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 22

वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत प्रकृति की अनन्त शक्तियों में से एक गुरुत्वाकर्षण को विशेष महत्व दिया गया है।

1.7.2 चुम्बकीय शक्ति – पृथिवी के चुम्बकीय शक्ति का अपने जीवन में प्रयोग कैसे किया जाय? इस बात से भारतीय समाज प्राचीन काल से ही सुपरिचित था। हमारे देश में उत्तर की ओर सिरहाना रखकर सोने की प्रथा नहीं है। कारण यह है कि यदि कोई व्यक्ति उत्तर की ओर सिर करके सोता है, तो उसके शरीर के चुम्बकीय शक्ति की दिशा और पृथिवी के चुम्बकीय शक्ति की दिशा परस्पर विपरीत हो जाती है। जिससे चुम्बकीय आकर्षण सिर की ओर होने से रक्तसंचार में बाध, अनिद्रा, सरदर्द, तनाव, दुःस्वप्न एवं वायु जन्य रोग सम्भावित होते हैं। अतः बृहत्संहिता के वास्तुविद्या अध्याय में भी वर्णन प्राप्त होता है कि उत्तर दिशा की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिए –

नोत्तरापर शिरः न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन्।[24]

इन चुम्बकीय तरंगों के प्रवाह को ध्यान में रखते हुए वास्तु शास्त्र ने गृह–निर्माण के अनेक विधानों का वर्णन किया है। क्योंकि इन तरंगों का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इन तरंगों का मार्ग बाधित न हो इसके लिए घर के मध्य में स्तम्भ आदि न हों, उत्तर दिशा की ओर खिड़कियाँ दरवाजे अध्कि हों, पेड़–पौध्े या अन्य भवन के उत्तर की ओर न हों, उत्तर की ओर जमीन का ढलान हो, उत्तर की ओर भवन की उंचाई कम हो इन सभी नियमों का उल्लेख है। घर का समस्त भारी सामान दक्षिण दिशा में रखने का विधान है। इन सबसे भवन वासियों का बौद्धिक विकास होता है तथा उनका तन–मन संतुलित एवं स्फूर्त रहता है। अतः चुम्बकीय शक्ति के द्वारा वास्तुशास्त्र में मानव जीवन को उन्नत एवं सुखी बनाने का विधान दिया है।

1.7.3 सौर उर्जा – सूर्य की उर्जा, जिसमें प्रकाश एवं उष्मा अन्तर्निहित रहती है, हमारे तन, मन एवं जीवन को न केवल शक्ति एवं स्फूर्ति ही प्रदान करती है अपितु यह हमारे दैनिक व्यवहार को भी संचालित एवं नियन्त्रित करती है। इसलिए सूर्य की किरणों के महत्व को समझते हुए वास्तुशास्त्र में इनके शुभ प्रभाव का अधिकतम उपयोग करने के लिए भवन निर्माण के अनेक नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। यदि प्रातःकाल सूर्य की किरणें हमारे घर और आंगन में प्रसारित होती हैं तो पराबैगनी सूर्य रश्मियों के प्रभाववश भवन में रहने वाले निवासियों को अत्यधिक लाभ प्राप्त होगा। प्रातःकालिक सूर्यरश्मियां भवन में स्थित विषाणुओं को नष्ट करती हैं जिससे आरोग्यता का निवास रहता है।। अतः उदयकालिक सूर्य की किरणों से गृह के निवासियों को अध्कितम लाभ हो इसके लिए पूर्व दिशा में खुला स्थान छोड़ना, खिड़की दरवाजे झरोखे बनाना, पूर्वी भाग में बड़े वृक्ष न लगाना, पूर्वोत्तर दिशा में ढलान बनाना इत्यादि अनेक नियमों का उल्लेख वास्तुशास्त्र में प्राप्त होता है। [25]

---

[24] बृहत्संहिता वास्तुविद्या.122

[25] भारतीय वास्तुशास्त्रा पृ. 27

इसी क्रम में अपराह्ण एवं सायंकालीन सूर्य की रक्ताभ किरणों की तीव्र उष्णता से बचने के लिए घर के पश्चिम भाग में वृक्षारोपण का विधन है। साथ ही दक्षिण भाग को प्रायः बन्द ही रखा जाता है। अतः वास्तुशास्त्र प्राकृतिक शक्तियों का अधिकतम उपयोग गृह के निवासियों के सर्वविध कल्याण के लिए करता है।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 19. वास्तुशास्त्र में भवनों को स्थायित्व के अनुसार मुख्यरूप से किन चार भागों में वर्गीकृत किया गया है?

प्रश्न 20. भवन निर्माण के लिए खोदते समय भूमि में कौन कौन सी वस्तुएं मिलने पर वहाँ आवास नहीं बनाना चाहिए?

प्रश्न 21. वस्तु के घनत्व का सम्बन्ध सर्वप्रथम किससे होता है ?

प्रश्न 22. किस दिशा की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिए?

प्रश्न 23. घर के मध्य में क्या नहीं होना चाहिए?

प्रश्न 24. उदयकालिक सूर्य की किरणों से गृह के निवासियों को अधिकतम लाभ हो इसके लिए क्या क्या करना चाहिए?

1.8 सारांश

वास्तुशास्त्रा का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आवासीय, व्यावसायिक एवं धार्मिक भवनों आदि के लिए भूखण्ड चयन एवं निर्माण आदि के सिद्धान्तों, उपायों एवं साधनों की व्याख्या करना है। इन सिद्धान्तों एवं नियमों के पीछे पंचतत्त्वों एवं प्राकृतिक शक्तियों का अद्भुत सामंजस्य छिपा है। प्रकृति की अनन्त शक्तियों में से वास्तुशास्त्र मुख्यतः सौर उर्जा, गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं चुम्बकीयशक्ति के उपयोग करने की विध्ि का वर्णन करता है। इन तीनों शक्तियों का केन्द्र सूर्य और पृथ्वी हैं। पृथिवी में स्थित गुरुत्वाकर्षण बल का केन्द्र पृथिवी के नाभि में स्थित है। इसी गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथिवी के ऊपर स्थित सभी वस्तुएं टिकी हुई हैं। वास्तुशास्त्र में गुरुत्वाकर्षण शक्ति का उपयोग केवल गृह–निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामग्री के साथ साथ गृह–निर्माण के लिए उपयोग में लाए जाने वाले भूखण्ड की मिट्टी के घनत्व की जाँच में भी किया जाता है। इसी प्रकार पृथिवी की चुम्बकीय शक्ति प्रकृति प्रदत्त एक महान् शक्ति है जिसके द्वारा सौरवायु ;सोलर विंडद्ध, कॉस्मिक किरण जैसी अनेक सम्भावित रेडिएशन से पृथिवी पर स्थित प्राणियों का बहुत सीमा तक बचाव होता है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में चुम्बकीय शक्ति को ध्यान में रखकर ही यह नियम बना है कि उत्तर दिशा की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिए। प्रकृति की तीसरी महत्वपूर्ण शक्ति सूर्य की उफर्जा है, जिसमें प्रकाश एवं उफष्मा अन्तर्निहित रहते हैं। इससे हमारे तन, मन एवं जीवन को न केवल शक्ति एवं स्पफूर्ति ही प्रदान करती है अपितु यह हमारे दैनिक व्यवहार को भी संचालित एवं नियन्त्रित करती है। प्रातःकालिक सूर्यरश्मियां भवन में स्थित विषाणुओं को नष्ट करती हैं जिससे आरोग्यता का निवास रहता है।। अतः उदयकालिक सूर्य की किरणों से गृह के निवासियों को अधिकतम लाभ हो इसके लिए पूर्व दिशा में खुला स्थान छोड़ना, खिड़की दरवाजे झरोखे बनाना, पूर्वी

भाग में बड़े वृक्ष न लगाना, पूर्वोत्तर दिशा में ढलान बनाना इत्यादि अनेक नियमों का उल्लेख वास्तुशास्त्रा में प्राप्त होता है।

1.9 परिभाषिक शब्दावली

शब्द	–	अर्थ
उन्नत रूप	–	उठा हुआ अथवा विकसित स्वरूप
मनुष्येतर	–	मनुष्य से अलग या दूसरा
अभिप्राय	–	कथन या अर्थ, कहने का तात्पर्य
पर्याय	–	दूसरा नाम
उद्भव	–	उत्पत्ति, पैदा होना
रोदसी	–	पृथिवी एवं द्यावा का संयुक्त नाम
तदमरगणेन	–	उसे देवतागण के द्वारा
सहसा	–	अचानक
विनिगृह्याधेमुखं	–	पकड़ कर औंध्े मुख ;नीचे की ओर मुख करकेद्ध
न्यस्तम्	–	रख दिया, स्थापित किया
स्वेद बिन्दु	–	पसीने की बूंद
अधोमुख	–	नीचे की ओर मुख करके
सम्यक् ज्ञान	–	अच्छी प्रकार से ज्ञान होना, अच्छी तरह से जानना
द्योतित	–	प्रकाशित करना, बताना
परिभ्रमण	–	चारों ओर घूमना, चक्कर लगाना
वास्तुमण्डलविन्यास करना	–	वास्तुक्षेत्रा को 64, 81 आदि पदों में विभाजित कर स्थापित
संचरण	–	चलना
प्रदाता	–	देने वाला
आवैदिक काल से	–	वैदिक काल से लेकर
पंचमहाभूत	–	पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तत्त्व
अलौकिक	–	जो इस लोक का न हो, पारलौकिक
प्रलय	–	मूल तत्त्व में मिलने की प्रक्रिया, विनाश
जगत	–	विश्व, संसार
अनन्त	–	जिसका अन्त न हो, अन्तहीन
अप्रासघिंक	–	प्रसंग से बाहर, अनावश्यक
पिण्ड	–	कोई भी भौतिक संरचना
द्रव्यमान	–	किसी भी पदार्थ का वह मूल गुण, जो उस पदार्थ के त्वरण का विरोध करता है। इससे किसी वस्तु का भार और गुरुत्वाकर्षण के प्रति उसके आकर्षण या शक्ति का पता चलता है। अंग्रेजी में इसे डें कहते हैं।

विपरीत	–	विरोध, उल्टा
कृत्रिम उपग्रह	–	मनुष्य द्वारा निर्मित उपग्रह, जो अन्तरिक्ष में पृथिवी के
चारों ओर		घूमता है। ैजमससपजम
पृथक् पृथक्	–	अलग–अलग
संवहन	–	अच्छे प्रकार से वहन या ढ़ोना
अक्ष	–	ध्ुरी
विक्षोभ	–	उद्वेलन, उथल–पुथल
विजातीय	–	अलग जाति के, विभिन्न गुण धर्मिता
रक्तकणिका	–	खून में स्थित छोटे छोटे कण
उफष्मा	–	उफर्जा का एक रूप जो ताप के कारण होता है।
वह्नि	–	अग्नि
उपसंहार	–	समाप्ति
खात	–	गर्त, गड्ढा
रश्मि	–	किरण
पूर्वोत्तर दिशा	–	ईशान कोण, पूर्व एवं उत्तर दिशा के मध्य की कोणदिशा
रक्ताभ	–	लाल आभा

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. वास्तु।

उत्तर 2. वाटिका एवं गृहपोतक।

उत्तर 3. पैंतालीस।

उत्तर 4. सूर्य को।

उत्तर 5. स्कन्द, अर्यमा, जृम्भक, पिलिपिच्छ, चरकी, विदारी, पूतना एवं पापराक्षसी को।

उत्तर 6. आवासीय, व्यावसायिक एवं धर्मिक वास्तु।

उत्तर 7. वास्तुशास्त्रा मुख्यतः सौर उफर्जा, गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं चुम्बकीयशक्ति के उपयोग करने की विध्ि का वर्णन करता है।

उत्तर 8. भास्कराचार्य ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' में गुरुत्वाकर्षण बल का वर्णन किया है।

उत्तर 9. गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथिवी के ऊपर स्थित सभी वस्तुएं टिकी हुई हैं।

उत्तर 10. पृथिवी पर स्थित जिस वस्तु का वजन 1 किलोग्राम है उसका वजन बृहस्पति में 2.34 किलो होगा।

उत्तर 11. जब किसी वस्तु के अन्दर गुरुत्वाकर्षण बल से अध्कि विपरीत बल उत्पन्न होता है तो वह वस्तु पृथिवी से ऊपर उठती है।

उत्तर 12. सभी वस्तुओं पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव एक जैसा पड़ता है परन्तु पृथिवी के वातावरण के हमें प्रत्येक वस्तु पर लगने वाला बल पृथक् पृथक् अनुभव होता है।

उत्तर 13. पृथिवी में चुम्बकीय क्षेत्र होने का मुख्य कारण यह है कि पृथिवी के बाहरी कोर में पिघले हुए लोहे और निकल के मिश्रण की संवहन धराओं की गति के कारण विद्युत धारायें उत्पन्न होती है, और पृथिवी के अपने धुरी पर घूमने के कारण उन विद्युतधाराओं में से चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है।

उत्तर 14. पृथिवी की चुम्बकीय शक्ति के द्वारा सौरवायु ;सोलर विंडद्ध, कॉस्मिक किरण जैसी अनेक सम्भावित रेडिएशन से पृथिवी पर स्थित प्राणियों का बहुत सीमा तक बचाव होता है।

उत्तर 15. पराबैंगनी किरणें शीतल और विषाणुओं को नष्ट करने वाली होती है।

उत्तर 16. इन्द्रधनुष के सात रंग होते हैं– बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल रंग होते हैं।

उत्तर 17. ऋग्वेद के अनुसार उदित होता हुआ सूर्य हृदय के सभी रोगों को दूर करता है।

उत्तर 18. मत्स्य पुराण के अनुसार यदि निरोगी रहना चाहते हो तो सूर्य की उपासना करें।

उत्तर 19. भवनों को स्थायित्व के अनुसार मुख्यरूप से चार भागों में वर्गीकृत किया गया है।

1. झोपड़ी या पर्णकुटी आदि घासपफूस व लकड़ी के बने मकान,
2. मिट्टी से बने कच्चे घर,
3. ईंट चूने से बने पक्के घर,
4. पत्थर से बने पक्के घर

उत्तर 20. भवन निर्माण के लिए खोदते समय भूमि में दीमक, अजगर, भूसा, ह्यस्त्री, राख, अण्डे, कौड़ी, रूई, जली हुई लकड़ी, खप्पर अथवा लोहा मिले तो वहाँ आवास नहीं बनाना चाहिए।

उत्तर 21. वस्तु के घनत्व का सम्बन्ध सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण से होता है।

उत्तर 22. उत्तर दिशा की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिए।

उत्तर 23. घर के मध्य में स्तम्भ आदि नहीं होना चाहिए।

उत्तर 24. पूर्व दिशा में खुला स्थान छोड़ना, खिड़की दरवाजे झरोखे बनाना, पूर्वी भाग में बड़े वृक्ष न लगाना, पूर्वोत्तर दिशा में ढलान बनाना चाहिए।

1.11 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

1 **भारतीय वास्तुशास्त्र** – प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, श्रीलाल बहादुर शास्त्राी राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली 2004

2 **बृहद्वास्तुमाला**– डॉ. अशोक थपलियाल, प्रकाशक– अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019

3 **वास्तुसार** – प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक – ईस्टर्न बुक लिंकर्स 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली, 2016

4 **वास्तुप्रबोध्निी** – डॉ. अशोक थपलियाल, प्रकाशक– अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011

5 **बृहत्संहिता ;1–2 भागद्ध** – आचार्य वराहमिहिर, सम्पादक– पं.अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2010

6 **ब्रह्माण्ड और सौर परिवार**– डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक – परिव्रफमा प्रकाशन, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2004

7 **मत्स्यपुराण** – गीताप्रेस गोरखपुर, चतुर्दश संस्करण संवत् 2076

8 **सारावली** – कल्याणवर्मा, व्याख्याकार – डॉ. मुरलीध्र चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, संस्करण 1993

9 **ऋग्वेद**–सम्पादक–डॉ. गंगासहाय शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, संस्करण 2016

10 **शब्दकल्पद्रुम** – राजा राधकान्त देव, नागप्रकाशन, दिल्ली – 7, संस्करण 1987

11 **सिद्धान्तशिरोमणि** – आचार्य भास्कर, सम्पादक– बापूदेव शास्त्री, प्रकाशक– चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, विद्याविलास प्रेस, गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक, बनारस, 1929

12 **विकीपीडिया**

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: वास्तु की परिभाषा देते हुए वास्तु का स्वरूप बताईये।

प्रश्न 2: वास्तुशास्त्र के महत्व को बताते हुए प्राकृतिक शक्तियों से उसके सामंजस्य पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न 3: प्राकृतिक शक्तियों का परिचय दीजिए।

प्रश्न 4: पृथिवी की गुरुत्वाकर्षण बल पर सुविस्तृत प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5: चुम्बकीय शक्ति क्या है? सुविस्तृत व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 6: सौर उर्जा के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 7: प्राकृतिक शक्तियों का वास्तुशास्त्र में उपयोग के विषय में सुविस्तृत निबन्ध लिखिए।

प्रश्न 8: गुरुत्वाकर्षण शक्ति का सामंजस्य वास्तुशास्त्र में किस प्रकार किया जाता है? विस्तृत विवेचना कीजिए।

प्रश्न 9: पृथिवी के चुम्बकीय शक्ति का वास्तुशास्त्र में उपयोग के विषय में प्रकाश डालिए।

प्रश्न 10: सौर उर्जा क्या है? वास्तुशास्त्र में सौर उफर्जा का उपयोग किस प्रकार सम्भव है? विस्तारपूर्वक लिखिए।

इकाई – 2 दिक् साधन एवं स्वरूप

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 दिग् परिचय

2.4 दिग् साधन विधि

2.4.1 दिक् साधन की प्राच्य विधियाँ

2.4.2 शङ्कु द्वारा दिक्साधन

2.3.2.1 भास्कराचार्य के अनुसार दिक्साधन

2.3.2.2 सूर्यसिद्धान्त के अनुसार दिक्साधन

2.3.2.3 गणेशदैवज्ञ के मतानुसार दिक्साधन

2.3.2.3 विषुव दिन में दिक्साधन

2.3.2.5 दिनमान से दिक्साधन विधि

2.3.2.6 ध्रुव तारे से दिक् साधन

2.3.2.7 नक्षत्रानुसार दिग्ज्ञान

2.3.2.8 आचार्य मय के अनुसार दिक् साधन विशेष

2.5 दिक्साधन की आधुनिक विधि

2.5.1 प्राच्य एवं आधुनिक विधि में अन्तर

2.5.2 चुम्बकीय दिक्सूचक यन्त्र का आधार

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

दिग्- देश एवं काल भारतीय ज्योतिषशास्त्र के आधारभूत अङ्ग हैं। किसी भी स्थान में काल अथवा दिग् का होना स्वभाविक है। इसी प्रकार किसी भी देश में अथवा किसी भी दिशा में काल भी समाहित है। कहने का तात्पर्य यह है कि दिग् देश एवं काल का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में गणना का मुख्य आधार यही तीन बिन्दु हैं। किसी भी स्थान के स्पष्टीकरण के लिए दिशा का ज्ञान अनिवार्य है। दिशा ज्ञान से पूर्व स्थान अर्थात् देश का ज्ञान परमावश्यक है। बिना देश के दिग् ज्ञान सम्भव नहीं है। दिशा का ज्ञान किसी भी देश को आधार मानकर ही किया जाता है। सामान्यतः व्यवहार योग्य जो हो उसे दिशा कहते हैं- **प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्।।**

भारतीय ज्योतिष अथवा भारतीय जनमानस के इतिहास को देखें तो मानव सभ्यता के विकास के साथ ही यह विषय जनमानस के नित्य प्रयोग विषय बनते गए। प्रारम्भ में हमारे पूर्वजों ने निवास के साथ वहाँ रहते हुए आकाशीय पिण्डों को दृष्टिगोचर किया। उन्होंने पाया कि एक समय आता है कि सूर्य एक छोर से उठता हुआ दूसरे छोर में डूब जाता है। सूर्य के डूबने से ही आकाश में असंख्य तारों का दर्शन, समय अन्तराल में चन्द्रमा का घटना तथा बढ़ना इत्यादि का अनुभव कर उन्होंने अध्ययन प्रारम्भ किया। सूर्य के उदय का एक ही स्थान से होना तथा दूसरे स्थान में छिपना उनके लिए एक गणनात्मक बिन्दु हो गया। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि दिग्ज्ञान के लिए उन्होंने अध्ययन का एक मील का पत्थर निश्चित किया तथा वहीं से अन्य विषयों तथा ज्योतिषीय रहस्यों को उजागर किया। इसी तरह पूर्व, पश्चिम,उत्तर व दक्षिण दिशाओं का व्यवहार किया गया।

इस स्थूल अध्ययन के पश्चात् उन्होंने ग्रहों एवं नक्षत्रों का अध्ययन भी किया। जिसमें सूर्यादि ग्रहों का अपने परिक्रमा पथ पर चलना तथा सूर्य की उत्तर एवं दक्षिण क्रान्ति का उन्हें बोध हुआ। इसी के साथ पूर्वादि दिशाओं का ठीक-ठीक व्यवहार कैसे हो उसके लिए दिक्साधन की कई विधियाँ प्रचलन में आई। विषुवदिन में, रात्रि में, दिन में, सूर्य क्रान्ति से, ध्रुव तारा से, शङ्कु से

दिक्साधन करने विधियाँ उनके कुछ उदाहरण हैं। जिन्हें हम इस पाठ में विस्तार से पढेंगे।

2.2 उद्देश्य

1. प्रस्तुत पाठ में आप दिग् परिचय को जानने में सक्षम होंगे।
2. दिशाओं का व्यवहार व उनके प्रत्यक्षता को सिद्ध कर सकेंगे।
3. दिन में दिशाओं का साधन करने में समर्थ होंगे।
4. रात्रि में दिशाओं का साधन कर सकेंगे।
5. विषुवदिन में दिग्साधन विधि को जानकर प्रायोगिक अध्ययन में समर्थ होंगे।

2.3 दिग् परिचय

सामान्य व्यवहार में जब हम देखते हैं तो हमें चार दिशाओं पूर्व,पश्चिम,उत्तर एवं दक्षिण दिशाओं का ज्ञान होता है। सामान्यतः जहाँ से सूर्योदय हो उसे पूर्व एवं जहाँ अस्त होता है उसे पश्चिम दिशा कहा जाता है। पूर्व की ओर मुख करके खड़ा होने पर दाईं तरफ दक्षिण एवं बाईं तरफ उत्तर दिशा होती है। इन्हीं दिशाओं के साथ चार विदिशाओं का ज्ञान भी होता है। प्रत्येक दो दिशाओं के मध्य में एक विदिशा होती है, जिसे कोण भी कहा जाता है। जैसे पूर्व एवं दक्षिण के मध्य आग्नेय कोण, दक्षिण पश्चिम के मध्य नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम उत्तर दिशा के मध्य वायव्य कोण तथा उत्तर पूर्व के मध्य ईशान कोण होता है। इस प्रकार कुल आठ दिशाओं का ग्रहण किया जाता है।
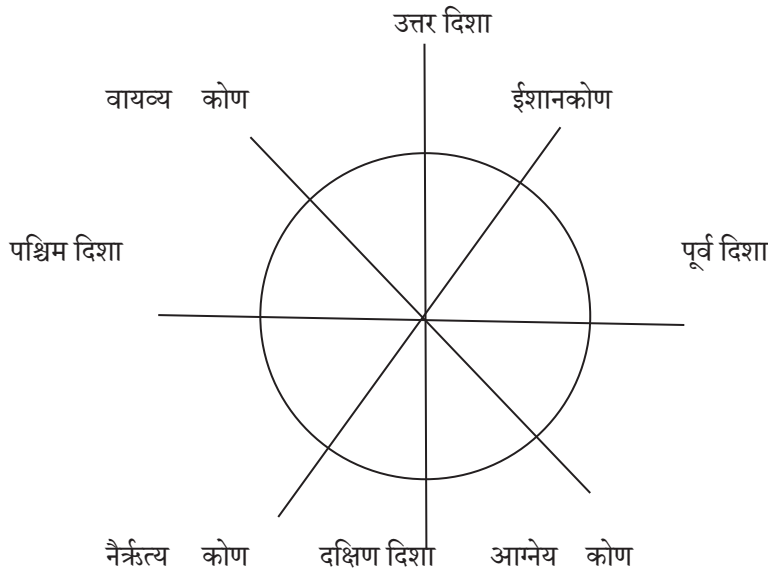
2.3.1 दिग् प्रयोजन

प्रसादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिङ्मूढ़े कुलनाशः स्यात्तस्मात् संसाधयेद्दिशः।।[26]

किसी भी निर्माण हेतु भवन, गृह, प्रासाद, द्वार,बरामदा, यज्ञमण्डपादि में दिक्साधन आवश्यक है। दिङ्मूढ़ अर्थात् दिशा भ्रम होने पर कुलनाश होता है, ऐसा आचार्यों का वचन है।

दिशा निर्धारण वास्तु विज्ञान के विभिन्न विषयों में अपेक्षित है। दिशा के आधार पर ही समस्त निर्माण कार्यों को करने का आदेश शास्त्र का है। अतः दिशा का निर्धारण देश अर्थात् स्थान को केन्द्र मानकर ही किया जाता है। किसी भी स्थान में दिशा निर्धारण करना उसके परिचय अर्थात् स्थिति से ही सम्भव है। उदाहरण के लिए भारत देश के किसी भी स्थान में दिशा साधन हेतु उस स्थान के अक्षांश एवं रेखांश को ध्यान में रखा जाता है। किसी भी देश में उसकी स्थिति अलग होने पर दिशा भी बदल जाती है। ध्रुव के ऊपर यदि दिशा निर्धारण करने का प्रयास करें तो वहाँ दिशाओं की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाएगा। इसलिए दिशा निर्धारण हेतु स्थान की सापेक्षता अनिवार्य हो जाती है।

गृह निर्माण में विशेष रूप से दिशा साधन हेतु निर्देश प्राप्त होता है। गृहनिर्माण योग्य भूमि को जानकर सर्वप्रथम खरपतवार, काँटे इत्यादि को जलाकर. ऊबड़-खाबड़ भाग को खोदकर, जिससे पानी भूमि पर एकत्रित न हो इस प्रकार ठीक तरह से ढालू बनाकर, भूमि का शोधन कर दर्पण के समान समतल बनाकर उसके बाद ही ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन करवाकर कूर्म, शेषनाग एवं भूमि का पुष्पादि से पूजन कर शुभ वार एवं तिथि में मण्डप, गृहादि निर्माण के लिए पूर्वादि दिशाओं का साधन करना चाहिए। जैसा कि कहा गया है-

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्री दहनखननसम्प्लावनैः संविशोध्य
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः।
पुण्याहं कूर्मशेषो क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे तिथ्यां च कुर्यात् सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम्।।[27]

---

26 बृहद्वास्तुमाला दिक्साधनाध्याय श्लोक 01

27 बृहद्वास्तुमाला दिक्साधनाध्याय श्लोक 03

2.4 दिग् साधन विधि

सर्वप्रथम मन में प्रश्न उठता है कि दिक्साधन की आवश्यकता क्या है? क्या हम जिन दिशाओं का व्यवहार करते हैं वे वास्तविक दिशाएँ हैं या नहीं? इन सभी प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए यह जानना अति आवश्यक हो जाता है कि दिशाओं का साधन क्यों अपेक्षित है? दिशा की अवधारणा देश के अनुसार बदलती रहती है। किसी भी स्थान का भौगोलिक चिन्तर करने के लिए दिशाओं का ज्ञान एवं तत्पश्चात् उसका व्यवहार सामने आता है। अक्षांश की हम बात करें तो प्रत्येक अक्षांश एक दिशा को द्योतित करता है व उसका व्यवहार भी। पृथ्वी पर स्थित सभी स्थानों में दिशाएँ हैं। अतः किस दिशा का क्षेत्र किस अक्षांश तुल्य है यह गणितागत विषय है। इन्हीं अक्षांशों के साथ ही देशान्तर अथवा रेखान्तर की कल्पना ज्योतिष शास्त्र में की जाती है। किस देश की स्थिति किस दिशा में है इन्हीं के आधार पर स्पष्ट होता है। अतः इन्हीं दिशाओं के साधन हेतु प्राच्य एवं आधुनिक विधियों का प्रयोग हम करते हैं।

2.4.1 दिक् साधन की प्राच्य विधियाँ

दिक्साधन हेतु शङ्कु का विशेष महत्त्व है। ज्योतिष ग्रन्थों के अतिरिक्त वास्तु ग्रन्थों में भी दिक्साधन हेतु शङ्कु द्वारा दिग्ज्ञान की विधियों का प्रतिपादन किया गया है। इसे वास्तु एवं शिल्प शास्त्र के ग्रन्थों में पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। शंकु की स्थापना प्रक्रिया प्रायः प्रत्येक निवेश में अपनाई जाती है परन्तु भवन निवेश एवं पुर निवेश में विशेष विचारणीय है। अतः वास्तु का एक प्रयोजन दिक् (दिशा) निर्धारण भी है।

शंकु काष्ठ द्वारा निर्मित एक विशेष प्रकार की यष्टिका (दण्डिका) होती है। जिसकी लम्बाई 12, 18 अथवा 24 अङ्गुल और इसके आधार की चौड़ाई 4, 5 अथवा 6 अङ्गुल हो सकती है। इस प्रकार का यह काष्ठ यष्टि सूच्याकार होती है। निर्धारित भू-भाग के केन्द्र बिन्दु पर ही शंकु की स्थापना का विधान किया गया है। शंकु स्थापना से पूर्व निर्धारित भू-भाग को मण्डलों में विभक्त किया जाता है। शंकु जिस मण्डल में स्थित रहता है उसे केन्द्रीय मण्डल कहते हैं। शंकु की छाया के द्वारा ही दिशा का निर्धारण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. दिशाओं की संख्या कितनी होती है?

2. पूर्व एवं दक्षिण के मध्य कौन सी कोणदिशा होती है?

3. दिक्साधन हेतु कितने अङ्गुल प्रमाण के शङ्कु का निर्देश प्राप्त होता है?
4. निर्धारित भूभाग के कौन से स्थान पर शङ्कु स्थापन किया जाता है?
5. शङ्कु के आधार की चौड़ाई का प्रमाण कितना है?

2.4.2 शङ्कु द्वारा दिक्साधन

शंकु स्थापन का महत्त्व दिशा के सही निर्धारण के लिए है। दिशा ज्ञान के बिना वास्तुपदों में क्रियमाण निर्माण कार्यों की क्रियान्विति सम्भव नहीं है। यही कारण है कि वास्तुशास्त्र में दिक् ज्ञान भवन अथवा पुर निवेश के लिए एक अनिवार्य परम्परा रही है। शंकु स्थापन द्वारा दिग्ज्ञान का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। दिशाओं में पूर्व सूर्योदय की दिशा होने के कारण पोषक मानी गई है। अतः भवन, प्रकोष्ठ आदि का विन्यास इस प्रकार किया जाए कि सूर्य रश्मियां अवरुद्ध न हों। तभी दिग्ज्ञान की व्यवहारिक उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। सामान्यतया क्षितिज पर जहाँ सूर्योदय दिखाई देता है, उसे पूर्व तथा जहाँ अस्त होता दिखाई देता है उसे पश्चिम दिशा कहते हैं। किन्तु वास्तविक पूर्व एवं पश्चिम बिन्दु को ज्ञात करने के लिए अनेक विधियों का प्रतिपादन आचार्यों द्वारा किया गया है। जिनमें से कुछ प्रमुख विधियाँ इस प्रकार से हैं।

2.4.2.1भास्कराचार्य के अनुसार दिक्साधन

आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि, जो कि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध का अप्रतिम ग्रन्थ है, उसमें शङ्कु के द्वारा दिशा साधन करने का निर्देश दिया गया है-

वृत्तेम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमा-
द्भागं यत्रविशत्यपैति च यतस्तत्रापरेन्द्रयौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्रीस्फुटाचालिता।।[28]

अर्थात् जल के समान बराबर की गई भूमि में (अर्थात् जल के समान भूमि को समतल करके) उसके केन्द्र में द्वादशाङ्गुल शङ्कु रखकर उसके केन्द्र से एक वृत्त बना लें। पूर्वाह्न काल में वृत्त के जिस बिन्दु में छाया प्रवेश करे और अपराह्न काल में जिस बिन्दु से छाया निकले उसको क्रम से पूर्व एवं पश्चिम जानना चाहिए। उस समय की क्रान्तियों का अन्तर करके छायाकर्ण से गुणाकर लम्बज्या का

[28] सिद्धान्तशिरोमणि त्रिप्रश्नाधिकार श्लो08.

भाग देने से जो अङ्गुलादि मान मिले, उससे अयन की दिशा में चालित करने से पूर्व दिशा स्पष्ट होती है। इसी प्रकार पूर्वापर रेखा निश्चित करके मत्स्य रेखा द्वारा उत्तर एवं दक्षिण दिशा का निर्धारण करना चाहिए।
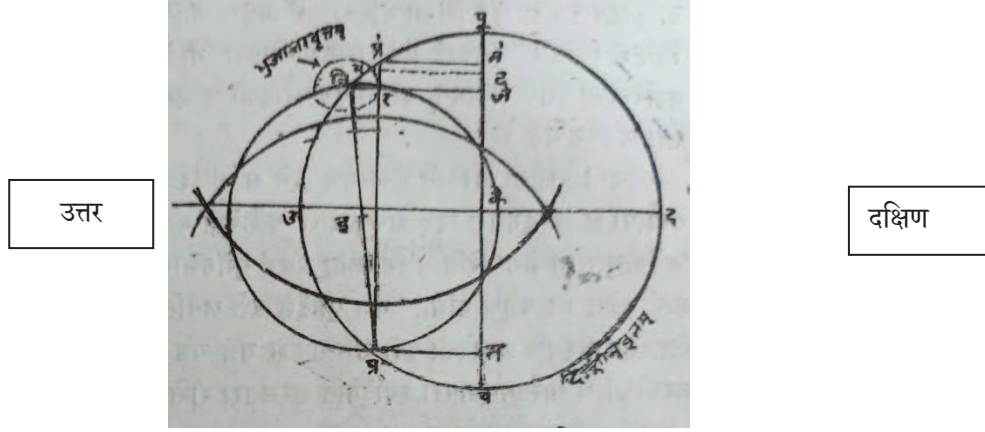
2.4.2.2 सूर्यसिद्धान्त के अनुसार दिक्साधन

ज्योतिष के ग्रन्थों में प्रायः शङ्कु के माध्यम से ही दिक्साधन के मत प्राप्त होते हैं। आचार्य भास्कर ने क्रान्ति के संस्कार कर दिक्साधन का मत प्रस्तुत किया है। वहीं सूर्यसिद्धान्तकार ने भी शङ्कु के माध्यम से छाया के प्रवेश तथा निर्गम स्थान से दिक्साधन का मत कहा है। मत्स्याकार रेखा से विदिशाओं का प्रमाण भी प्राप्त होता है।

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्र शंक्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत्।।
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कु कल्पना द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः।।
तत्र बिन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा।।
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि।।[29]

---

[29] सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार श्लोक 04-01

जल के द्वारा अच्छी तरह शोधित कर चारों ओर जल के समान समतल भूमि पर, पाषाण पृष्ठ मे अथवा वज्रलेप से समतल किये हुए दिग्ज्ञान हेतु उपयुक्त भूतल पर मध्याह्नकालिक छाया से अधिक अंगुल के शंकु (अथवा 12 अंगुल का शंकु) के मान से एक वृत्त का निर्माण करना चाहिए। उस वृत्त के केन्द्र में कल्पित अंगुल के मान के बराबर या 12 अंगुल का शंकु स्थापित करें। उस वृत्त मध्य स्थित शंकु का छाया का अग्र पूर्व में कहे गये वृत्त की परिधि में पूर्वार्ध एवं अपरार्ध में जहाँ दो बिन्दुओं का स्पर्श करता है, उन दोनों बिन्दुओं को पूर्व व पश्चिम बिन्दु मानकर चिह्नित करें। उन दोनों बिन्दुओं के मध्य में एक मत्स्य (पूर्व बिन्दु से पश्चिम बिन्दु तक त्रिज्या मानकर दोनों बिन्दुओं से क्रम से वृत्तार्ध के बराबर चाप खींचने से दोनों वृत्तार्धों से मत्स्य अर्थात् मछली जैसी आकृति बनती है। उस मत्स्य के मुख व पूँछ को मिलाने से मत्स्य रेखा बनती है।) के द्वारा याम्योत्तर रेखा का निर्माण करें। वह याम्योत्तर रेखा अभीष्ट वृत्त में जहाँ दो स्थान पर स्पर्श करती है, वहाँ क्रमशः उत्तर व दक्षिण दिशा जानना चाहिए। पुनः उत्तर व दक्षिण दिग्बिन्दु से मत्स्यरेखा बनाकर वृत्त में पूर्व व पश्चिम दिशा का ज्ञान करना चाहिए। इन चारों दिशाओं के मध्य में भी मत्स्य रेखा से पूर्व व उत्तर के मध्य ईशान कोण या विदिशा, पूर्व व दक्षिण के मध्य आग्नेय कोण या विदिश, पश्चिम व दक्षिण के मध्य नैर्ऋत्य कोण या विदिशा तथा पश्चिम व उत्तर के मध्य वायव्य कोण या विदिशा जानना चाहिए।
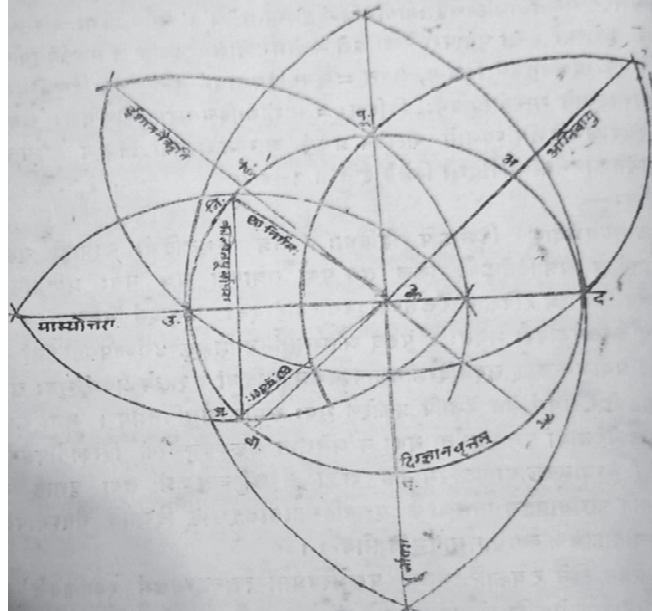
2.4.2.3 गणेशदैवज्ञ के मतानुसार दिक्साधन

वृत्ते समभूगते तु केन्द्रस्थित शङ्कोः क्रमशो विशत्यपैति।

छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्धतिमेरुदक् च याम्या।।[30]

भूमि को समतल कर अभीष्ट त्रिज्या का वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में स्थित बारह अङ्गुल शङ्कु की छाया का अग्रभाग पूर्वाह्न में वृत्त परिधि में जहाँ प्रवेश करते समय स्पर्श करता है वह बिन्दु पश्चिम दिशा एवं छायाग्र अपराह्न में जहाँ जाते समय स्पर्श करता है वह बिन्दु पूर्वदिशा होती है। इन बिन्दुओं से मत्स्योत्पादन विधि से याम्योत्तर दिशा सिद्ध होती है।

2.4.2.4 विषुव दिन एवं अन्य दिन में दिक्साधन

विषुवदिन अर्थात् सायन मेष या सायन तुला में सूर्य जब प्रवेश करे। आधुनिक गणना के अनुसार प्रायः 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को विषुव दिन होता है। इस दिन सूर्य विषुवत् रेखा के ठीक मध्य से होकर परिक्रमा करता है। साथ ही दिन रात्रि का मान बराबर होता है। प्रातः काल में द्वादश अङ्गुल स्थापित कर एक वृत्त खींच कर उसके मध्य में शङ्कु स्थापित किया जाता है। पूर्वाह्न में द्वादशाङ्गुल शङ्कु का छाया जिस बिन्दु में प्रवेश करती है वह पश्चिम बिन्दु तथा अपराह्न काल में छाया जिस बिन्दु से बाहर निकलती है वह पूर्व बिन्दु होता है। इन दोनों बिन्दुओं से मत्स्य रेखा करने पर जहाँ दोनों रेखाएँ आपस में कटती हैं वे दोनों बिन्दु याम्योत्तर अर्थात् दक्षिण एवं उत्तर बिन्दु होते हैं। इन बिन्दुओं को आपस में मिलाने पर पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर दक्षिण दिशाएँ स्पष्ट होती हैं। यह प्रक्रिया अन्य दिनों में भी सूक्ष्म दिग्ज्ञान के लिए प्रायः ठीक है।

किसी भी दिन मध्याह्न में सबसे छोटी छाया की दिशा उत्तर होती है। उससे विपरीत दिशा दक्षिण होती है। उत्तर बिन्दु से सूर्योदय की दिशा की ओर 90 अंश की दूरी पर सूक्ष्म पूर्व दिशा तथा सूर्यास्त की दिशा की ओर 90 अंश की दूरी पर सूक्ष्म पश्चिम दिशा जाननी चाहिए।

2.4.2.5 दिनमान से दिक्साधन विधि

दिनमानदले सप्ताङ्गुलछायाग्रतो हि यत्।

शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा।।[31]

मध्याह्न काल में सात अङ्गुल शङ्कु के छायाग्र से शङ्कु केन्द्र तक सूत्र ले जाने पर वह सूत्र

---

[30] बृहद्वास्तुमाला दिक्साधनाध्याय श्लोक 06

[31] बृहद्वास्तुमाला दिक्साधनाध्याय श्लोक 07

याम्योत्तर रेखा होगा। इसके द्वारा उत्तर दिशा का ज्ञान होगा।

अभ्यास प्रश्न

6. भास्कराचार्य के सिद्धान्त ग्रन्थ का नाम लिखिए।
7. पूर्वाह्न काल में छायाग्र किस दिशा में प्रवेश करती है?
8. क्षितिज के किस भाग में सूर्योदय होता है?
9. विषुवदिन कब होता है?
10. दिनमान विधि से दिक्साधन करने पर आचार्य के मत में कितने अङ्गुल का शङ्कु प्रमाण उपयुक्त है?

रात्रि में दिक्साधन विधि -

भारतीय गणितज्ञों अथवा खगोलविदों ने मानव सुविधा हेतु उनकी समस्याओं को बहुत करीब से समझा। इन्हीं समस्याओं के हल हेतु उन्होंने नैकानेक विधियों का प्रतिपादन किया। जिसमें दिक्साधन विधि का रात्रि में प्रयोग किया जा सके उसके लिए भी ध्रुव अथवा नक्षत्रों के आधार पर प्रतिपादन किया। जिनमें से कुछ निम्न हैं-

ध्रुव तारे से दिक् साधन

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽबलम्बे नते,
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्यादिशा।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छाया द्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे।।

रात्रि में दिक्साधन
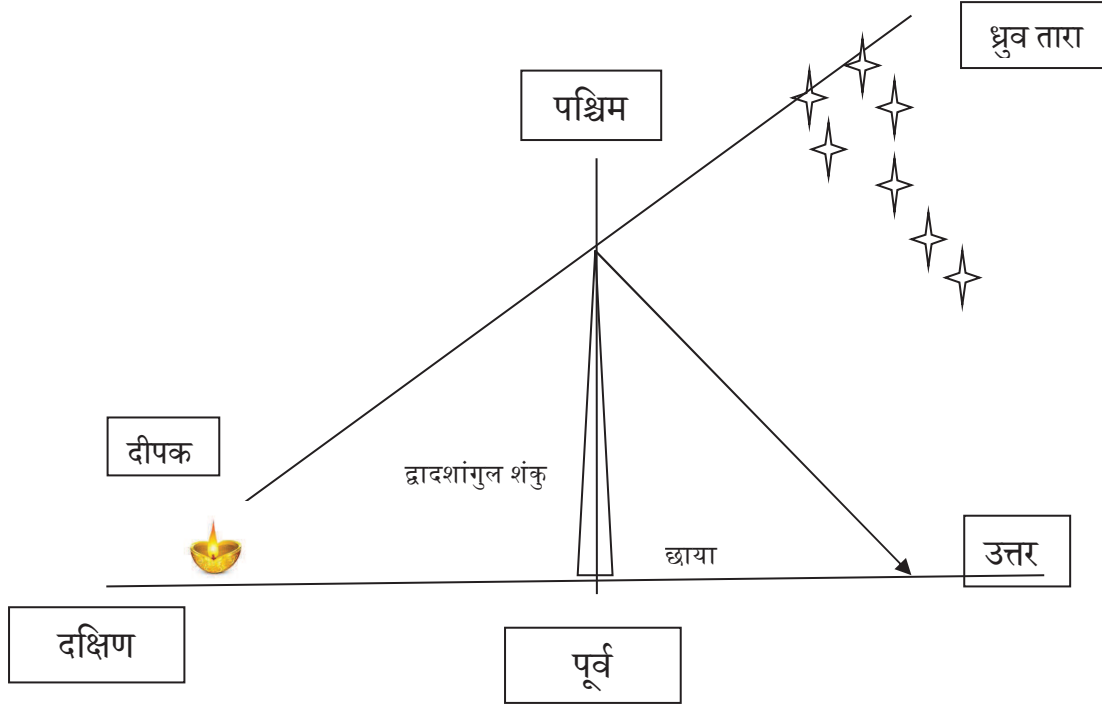
सप्तर्षि तारों में जो पहले को दो तारे हैं उनको मार्कटिका कहते हैं। वे और ध्रुव जब एक सूत्र में हो जायें अर्थात् एक शंकु स्थापन करने से शंकु की सीध में तीनों तारे हो जायें तो शंकु से दक्षिण भाग में एक दीपक रखें। दीपक की शिखा, शंकु का अग्र भाग और ध्रुव ये तीनों जब एक सीध में दिखायी पड़ें तो शंकु से दीपक को दक्षिण समझें। अथवा दिन में 32 अङ्गुल के वृत्त के मध्यम में 12 अङ्गुल शंकु रखना जहाँ उसकी छाया वृत्त में प्रवेश करे वहाँ पश्चिम, जहाँ छाया निर्गत हो वह पूर्व दिशा होगी। अतः पूर्व एवं पश्चिम दिशा से मत्स्य रेखा बनाने से उत्तर एवं दक्षिण दिशा होगी।

2.4.2.6 नक्षत्रानुसार दिग्ज्ञान

कृत्तिकोदयतः प्राची प्राची स्याच्छ्रवणोदये।
चित्रास्वात्यन्तरे प्राची दिने प्राची रवेः स्थिता।।
विषुवेऽर्के उदये प्राची रात्रौ नक्षत्रतः भवेत्।
यदि वा श्रवणे पुष्ये चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।।
स तत्प्राचीदिशारूपं दण्डमात्रोदिते रवौ।।[32]

---

[32] विश्वकर्मप्रकाश 56-54 ,7

रात्रि में कृत्तिका नक्षत्र जिस दिशा में उदित होता है, उस दिशा में पूर्वदिशा होती है। इसी प्रकार श्रवण नक्षत्र भी ठीक पूर्व दिशा में उदित होता है। चित्रा व स्वाती के उदय दिशा के मध्य में भी पूर्व दिशा होती है। विषुवद्दिन में सूर्य उदय की दिशा भी पूर्व दिशा होती है। विषुवद्दिन को दिन में सूर्य के उदय से तथा रात्रि को नक्षत्रोदय से पूर्व दिशा को जानना चाहिए। यदि श्रवण, पुष्य अथवा चित्रा व स्वाती के मध्य में पूर्वदिशा का अनुमान होता है तो सूर्य के उदय के दण्ड मात्र (1 घड़ी) समय तक शुद्ध पूर्वदिशा का ज्ञान कर लेना चाहिए।

इस सन्दर्भ में विशेष है -

चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणाद्दक्षिणापथवासिनाम्।
प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम्।।

दक्षिणापथ अर्थात् नर्मदा के दक्षिणी स्थानों में चित्रा व स्वाती के अन्तर (मध्य) से पूर्वदिशा का ज्ञान कर लेना चाहिए। उत्तरापथ अर्थात् नर्मदा नदी से उत्तरी स्थानों में कृत्तिका से पूर्वदिशा जाननी चाहिए।

कृत्तिका श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदिते पुरे।।

कृत्तिका, पुष्य, श्रवण और चित्रा व स्वाती का अन्तर यही प्राची दिशा का रूप है (अर्थात् कृत्तिका वेध की तरह पुष्य और श्रवण को भी वेध करके प्राची (पूर्व) दिशा का ज्ञान करना चाहिए।) युग मात्र (2 घडी) नक्षत्र के ऊपर चढ़ जाने तक यह वेध करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

11. मार्कटिका तारा किसे कहते हैं?
12. सौम्यदिशा किसका पर्याय है?
13. दक्षिणापथ में स्थित क्षेत्रों में किन नक्षत्रों के आधार पर पूर्वापर दिशा का ज्ञान किया जाता है?
14. एक दण्ड का प्रमाण क्या होता है?
15. सप्तर्षि तारों की संख्या कितनी है?

2.4.2.7 आचार्य मय के अनुसार दिक् साधन विशेष

दिक्साधन की प्रतिपादित पूर्व विधियों के समान आचार्य मय द्वारा प्रतिपादित मयमत नामक ग्रन्थ में भी शङ्कु आधार पर दिक्साधन करने का प्रमाणमिलता है। आचार्य का मत है कि उपयोग लाए जाने

वाला शङ्कु कठोर काष्ठ[33] से बना होना चाहिए। शङ्कु का अग्र भाग चित्रवृत्तक (दोषहीन गोलाई) होना चाहिए।

2.5 दिक्साधन विधि

जितने प्रमाण का शङ्कु हो उसका दोगुना माप लेकर शङ्कु को केन्द्र बनाकर वृत्त खींचनी चाहिए। दिन के पूर्वाह्ण एवं अपराह्ण में उस मण्डलाकृति पर शङ्कु की छाया पड़ती है। छाया जिन दो बिन्दुओं पर पड़ती है, उन दोनों बिन्दुओं को सूत्र से मिलाना चाहिए। इससे पूर्व एवं पश्चिम दिशा का ज्ञान होता है। पूर्वोक्त बिन्दुओं को केन्द्र बनाकर मछली की आकृति बनानी चाहिए।[34]

दक्षिणोत्तरगं सूत्रमेव सूत्रद्वयं न्यसेत्।
उदगाद्यपरान्तानि पर्यनितानि विनिक्षिपेत्।।[35]

दो सूत्रों को बिन्दुओं के केन्द्र में इस प्रकार रखना चाहिए कि वे दक्षिण से उत्तर तक जाए। इसी प्रकार दूसरे सूत्र को उत्तर से दक्षिण तक ले जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि एक बिन्दु को केन्द्र मानकर चाप की आकृति उत्तर से दक्षिण तक बनानी चाहिए। पुनः दूसरे बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरी चापाकृति बनानी चाहिए। मण्डल के दो छोरों पर ये चापाकृतियाँ एक दूसरे को काटती हैं। इस प्रकार मत्स्य की आकृति बनती है।
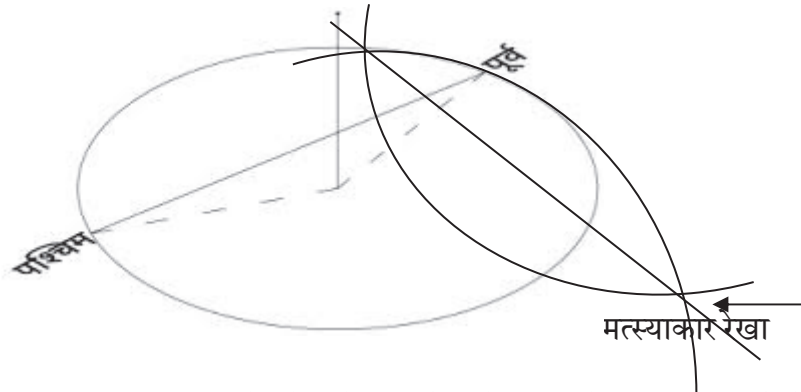
सूर्य स्थिति वशात् शङ्कु की छाया भी परिवर्तित होती है। जिससे प्रत्येक माह में दिक्साधन करने से प्रत्येक माह की गणना में अन्तर भी स्वभाविक है। इसी तरह जब छाया के द्वारा दिक्साधन किया

---

[33] अन्यैः सारद्रुमैः प्रोक्तं तस्याग्रं चित्रवृत्तकम्।। मयमतम् दिक्परिच्छेद श्लोक 07

[34] मयमतम् दिक्परिच्छेद अध्याय श्लोक 09

[35] वही10 श्लोक .

जाता है तो उसकी अपच्छाया या अशुद्ध छाया से उसमें होने वाले अन्तर का संस्कार से भी दिक्साधन दोषमुक्त हो जाता है। यह अपच्छाया विभिन्न मासों में निम्नप्रकार से है-

मेषे च मिथुने सिंहे तुलायां द्वयङ्गुलं नयेत्।
कुलीरे वृश्चिके मत्स्ये शोधयेच्चतुरङ्गुलम्।।
धनुः कुम्भे षडङ्गुल्यं मकरेष्टाङ्गुलं तथा।
छायाया दक्षिणे वामे नीत्वा सूत्रं प्रचारयेत्।।[36]

सूर्य की छाया बारह महीनों में एक समान नहीं होती। अतः सूर्य के नक्षत्रों के सङ्क्रमण के अनुसार शुद्ध रूप से पूर्व एवं पश्चिम का निर्धारण किस प्रकार किया जाए एवं अपच्छाया से कैसे बचा जाए इसके लिए आचार्य का मत है कि मेष, सिंह, मिथुन एवं तुला राशि में सूर्य रहने पर जहाँ शङ्कु की छाया पड़े उससे दो अङ्गुल पीछे हटकर पूर्व एवं पश्चिम का निर्धारण करना चाहिए। जिस समय सूर्य कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि पर हो उस समय चार अङ्गुल हट कर दिशा निर्धारण करना चाहिए। धनु एवं कुम्भ राशि पर सूर्य रहने पर छः अङ्गुल एवं मकर पर आठ अङ्गुल हटकर शङ्कु की छाया के दाहिने एवं बांयें सूत्र का प्रयोग करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

16. मत्स्याकार रेखा से क्या अभिप्राय है?
17. एक वर्ष में सूर्य का कितनी राशियों में सङ्क्रमण होता है?
18. अपच्छाया का अन्य नाम क्या है?
19. मेष राशि में सूर्य के रहने पर कितने अङ्गुल पीछे दिशा का निर्धारण किया जाता है?
20. चित्रवृत्तक से क्या अभिप्राय है?

2.5.1 दिक्साधन की आधुनिक विधि

दिशा साधन की प्राचीन विधियों के साथ ही कुछ आधुनिक विधियाँ भी प्रयोग में हैं। आधुनिक काल यन्त्र प्रधान अर्थात् उपकरण प्रधान काल है। हर कार्य को करने के लिए यन्त्रों का प्रयोग स्वभाविक सी बात है। दिक् साधन अथवा दिशा के ज्ञान हेतु आधुनिक काल में दिक् सूचक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। जिसमें पृथ्वी के उत्तर ध्रुव के निकट में स्थित चुम्बकीय ध्रुव की अहम

[36] मयमतम्13-12 दिक्परिच्छेद अध्याय श्लोक ,

भूमिका है। चुम्बकीय ध्रुव ऊर्जा से भरपूर क्षेत्र है। जिसका प्रभाव अनेक मानवीय गतिविधियों तथा मानव शरीर पर पड़ता है। उत्तर दिशा से दक्षिण की ओर सतत चलने वाली चुम्बकीय तरंगें मानव शरीर को प्रभावित करती हैं। इसी के आधार पर दिक् सूचक यन्त्र का अविष्कार किया गया। जिसमें लगी लोहे की सुई चुम्बकीय प्रभाव से उत्तर दिशा को द्योतित करती है। इसी दिशा के आधार पर अन्य दिशाओं का बोध भी किया जाता है। उत्तर दिशा को 0 डिग्री से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम में 360 डिग्री के भीतर समस्त दिशाओं की स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

दिक् सूचक यन्त्र
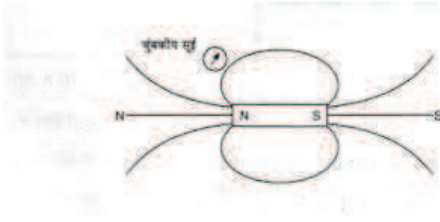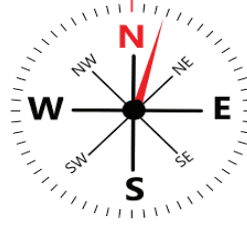
2.5.2 प्राच्य एवं आधुनिक विधि में अन्तर

दिक्साधन हेतु प्रयोग में लाई जाने विधियों में शुद्धता एवं सटीकता होना परमावश्यक है। ज्योतिष शास्त्र व वास्तुशास्त्र में दिक्साधन को एक विशिष्ट विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। जिसके आधार पर अनेक कार्य व गणनाएँ सम्पादित की जाती हैं। सामान्य व्यवहार में दिशाओं का स्थूल रूप ग्रहण किया जाता है। जिनमें कुछ अंशात्मक अन्तर दोषकारक नहीं होता। किन्तु गणना के क्षेत्र में अंशात्मक अन्तर होने पर निष्कर्ष बदल जाते हैं, जो कि ज्योतिष अथवा वास्तु विज्ञान की गणनाओं में अन्तर उत्पन्न कर सकता है।

प्राच्य एवं अर्वाचीन विधियाँ दोनों अलग हैं। प्राच्य विधियों में सूर्य की गति, ध्रुव तारे की स्थिति, नक्षत्रों की स्थिति आदि के आधार पर दिक्साधन के प्रयोगों को किया जाता है। आधुनिक दिक्सूचक यन्त्र एक चुम्बकीय प्रभाव के कारण कार्य करता है। कई बार एक ही स्थान में एक साथ रखे दो दिक्सूचक यन्त्र समान निष्कर्ष देने में सफल नहीं हो पाते। जबकि प्राच्य विधि से प्रत्यक्षता सिद्ध होती है। दिक्सूचक यन्त्र में उत्पन्न होने वाले दोष कुछ वैज्ञानिक कारणों से विचारणीय हैं। जिसमें चुम्बकीय क्षेत्र की अहम भूमिका है। जिसके आधार पर कुछ बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं-

प्राच्य विधि में शङ्कु छाया के आधार पर खगोल पर वास्तविक उत्तर दिशा बिन्दु आधुनिक

दिक्सूचक यन्त्र की तुलना में अन्तरित हो सकता है। चुम्बकीय दिक्सूचक यन्त्र की उत्तरदिशा सूचक सुई का शून्य अंश पृथिवी के उत्तरी ध्रुव का 90 अंश अक्षांश को नहीं दर्शाता अपितु यह वास्तव में लगभग 82 अंश उत्तर अक्षांश को दिखाता है। इस प्रकार इसमें आठ अंश की अशुद्धि परिलक्षित होती है।

पृथ्वी की घूर्णनशील धुरी या एक्सिस के ऊपरी छोर पर पृथ्वी का वास्तविक उत्तरी सिरा या ध्रुव है जो भूमध्य रेखा से 90 अंश का कोण बनाता है। इस सिरे का नाम शिशुमार की पूँछ जिसका वैज्ञानिक नाम माईनर पोलरिस है।
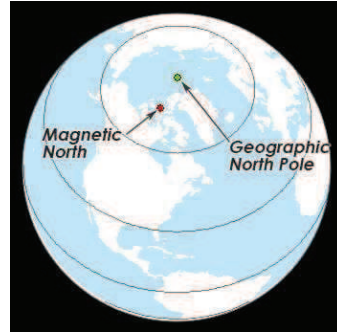
2.5.3 चुम्बकीय दिक्सूचक यन्त्र का आधार

पृथ्वी की सतह से लगभग 1800 मील गहरे केन्द्र में लोहा इत्यादि धातुओं का अविरल रूप प्राप्त होता है। जो कि पृथिवी के घूर्णन से एक प्रकार का चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है। इसी अविरल पदार्थ को एक लोहे की छड़ के रूप में मान लिया जाए तो छड़ के दक्षिणी ध्रुव को खगोलीय उत्तरी ध्रुव के स्थान पर स्थूल रूप से माना जा सकता है। वास्तव में यह ध्रुव क्षेत्र परिवर्तनशील रहता है। इसका स्थान कई वर्षो बाद बदलता हुआ नजर आता है। कनाडा सरकार के उत्तरी आर्कटिक सर्वेक्षण के अनुसार यह चुम्बकीय ध्रुव 81 अंश तीन कला उत्तर और 110.08 अंश पश्चिम में स्थित था। वर्तमान में यह 40 से 50 कि.मी. प्रतिवर्ष गतिशील है। साथ ही इसमें घनघोर अंधकार युक्त क्षेत्र (ब्लैक आऊट क्षेत्र) है। इस कारण दिक्सूचक यन्त्र से गलती होना स्वभाविक है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि दिक्साधन हेतु प्राच्य विधियों का प्रयोग ही वास्तुशास्त्रीय निर्माणादि के लिए उपयुक्त है जिसमें शङ्कु छाया के आधार पर दिशाओं का ग्रहण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

21. आधुनिक काल में दिशा बोधन हेतु किस यन्त्र का प्रयोग किया जाता है?
22. पृथ्वी को दो समान भागों में बाँटने वाली रेखा का नाम लिखिए।
23. दिक्सूचक यन्त्र का मुख्य आधार क्या है?
24. आधुनिक ध्रुव तारे का वैज्ञानिक नाम क्या है?
25. भूमध्य रेखा से उत्तरी ध्रुव तक कितने डिग्री का कोण बनता है?

2.6 सारांश

मानव व्यवहार हेतु दिशाओं का ज्ञान अपेक्षित है। दिशाओं के साधन में व उनके स्वरूप को समझने के लिए दिशाओं का सटीक ज्ञान मुख्यतः सूर्य पर आधारित रहा है। ज्योतिषशास्त्र में अनेक विधियों का प्रतिपादन शास्त्रों में किया गया है। शङ्कु छाया के आधार पर दिशाओं का साधन पूर्णतया वैज्ञानिक है। भारतीय गणना में अनेक प्रकार से दिशा ज्ञान की विधियों का प्रतिपादन किया गया है। जिनमें सुविधानुसार परीक्षण कर दिशाबोध किया जा सकता है। आधुनिक मत में मात्र दिक्सूचक यन्त्र के आधार पर दिशाओं ज्ञान किया जाता है। जो कि पूर्णतया सटीक प्रतीत नहीं होता। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि दिशा ज्ञान हेतु प्रामाणिक एवं प्राच्य विधियों का प्रयोग तर्कसंगत है।

2.7 शब्दावली

दिग् - दिशा
प्राची - पूर्व
शङ्कु - द्वादशाङ्गुल धातु अथवा लकड़ी से बनी आकृति
विषुवदिन - जिस दिन सूर्य भूमध्य रेखा से होकर गुजरता है
विदिशा - दो मुख्य दिशाओं के मध्य स्थित कोण
ऊर्ध्व - ऊपर
प्राच्य - पुरातन
काष्ठ - लकड़ी
पूर्वाह्ण - दिन का पूर्वभाग
अपराह्ण - दिन का उत्तरार्ध भाग
शिला - पत्थर
याम्योत्तर - दक्षिण उत्तर

छायाग्र	-	छाया का अग्र भाग
दीपाग्र	-	दीपक की लौ का अग्रभाग
दिक्सूचक यन्त्र	-	दिशा बोधक यन्त्र

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दिशाओं की कुल संख्या दस है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊर्ध्व, अधः।
2. पूर्व एवं दक्षिण के मध्य आग्नेय दिशा होती है।
3. शङ्कु की ऊँचाई का प्रमाण बारह से चौबीस अङ्गुल का प्राप्त होता है।
4. वृत्त के केन्द्र भाग में शङ्कु स्थापित किया जाता है।
5. शङ्कु के आधार की चौड़ाई चार से छः अङ्गुल प्रमाण होती है।
6. आचार्य भास्कर के सिद्धान्त ग्रन्थ का नाम सिद्धान्तशिरोमणि है।
7. पूर्वाह्णकाल में छाया पश्चिम बिन्दु में प्रवेश करती है।
8. क्षितिज के पूर्व भाग में सूर्योदय होता है।
9. विषुवदिन 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को होता है।
10. सात अङ्गुल प्रमाण का शङ्कु मध्याह्न में स्थापित किया जाता है।
11. सप्तर्षि के पहले दो तारों को मार्कटिका कहते हैं।
12. सौम्यदिशा से अभिप्राय उत्तर दिशा से है।
13. दक्षिणापथ स्थित क्षेत्रों में चित्रा तथा स्वाती नक्षत्रों के अन्तर के आधार पर पूर्व दिशा का निर्धारण किया जाता है।
14. एक दण्ड का प्रमाण 1 घडी अर्थात् 24 मिनट होता है।
15. सप्तर्षि तारों की कुल संख्या सात होती है।
16. मछली जैसी आकृति के चापों के मुख व पुच्छ को जोडने से बनने वाली रेखा।
17. एक वर्ष में सूर्य बारह राशियों में सङ्क्रमण करता है।
18. अपच्छाया का अन्य नाम अशुद्ध छाया है।
19. मेष राशि में सूर्य के रहने पर दो अङ्गुल पीछे दिशा का निर्धारण किया जाता है।
20. चित्रवृत्तक से अभिप्राय शङ्कु की दोषहीन गोलाई से है।

21. आधुनिक काल में दिशा बोधन हेतु चुम्बकीय दिक्सूचक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।
22. पृथ्वी को दो समान भागों में बाँटने वाली रेखा का नाम भूमध्य रेखा (विषुवत्) है।
23. दिक्सूचक यन्त्र का मुख्य आधार उत्तर दिशा में स्थित चुम्बकीय क्षेत्र का ध्रुव है।
24. ध्रुव तारे का वैज्ञानिक नाम माइनर पोलरिस है।
25. भूमध्य रेखा से ध्रुव के मध्य 90 डिग्री का कोण बनता है।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दिक्साधन का प्रयोजन लिखिए।
2. सूर्यसिद्धान्तोक्त दिक्साधन का वर्णन कीजिए।
3. दिक्साधन हेतु किन्हीं तीन प्राच्य विधियों का प्रतिपादन कीजिए।
4. दिक्सूचक यन्त्र की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालिए।
5. मयमत के अनुसार दिक्साधन विधि वर्णित कीजिए।
6. नक्षत्रों के द्वारा दिक्साधन बताईये।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **सिद्धान्तशिरोमणि,** आचार्य भास्कर, सम्पादक- बापूदेवशास्त्री, प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, विद्याविलास प्रेस, गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक, बनारस 1929
2. **सूर्यसिद्धान्त-** सम्पादक- कपिलेश्वर शास्त्री, प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, विद्याविलास प्रेस, गोपालमन्दिर के उत्तर फाटक, बनारस 1947
3. **वास्तुसार,** प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक - ईस्टर्न बुक लिंकर्स़ 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली, 2016
4. **बृहद्वास्तुमाला,** डॉ.अशोक थपलियाल, प्रकाशक -अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2019
5. **मयमतम्,** सम्पादक- डॉ. शैलजा पाण्डेय, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013
6. **विश्वकर्मप्रकाश,** सम्पादक-, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013

इकाई - 3 देश एवं काल विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 देश विवेचन

3.3.1 भूमि और देश का सम्बन्ध

3.3.1.1 काकिणी विचार

3.3.1.2 नराकृतिचक्र विचार

3.3.1.3 शिवाबलि विचार

3.3.1.4 राशि के अनुसार ग्रामवास विचार

अभ्यास प्रश्न

3.3.2 देश का निर्धारण

3.3.2.1 अक्षांश

3.3.2.2 देशान्तर

अभ्यास प्रश्न

3.4 काल विवेचन

3.4.1 चान्द्रमान

3.4.2 नाक्षत्रमान

3.4.3 सावनमान

3.4.4 सौरमान

अभ्यास प्रश्न

3.4.5 पैत्र्यमान

3.4.6 गौरवमान

3.4.7 दिव्यमान

3.4.8 प्राजापत्यमान

3.4.9 ब्राह्ममान

3.5 काल एवं मुहूर्त

3.6 देश एवं काल का सम्बन्ध

3.1 प्रस्तावना

भारतीय ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र की समृद्ध परम्परा में दिग्, देश और काल का विस्तृत चिन्तन किया जाता है। वस्तुतः दिग्, देश एवं काल इन तीनों के समग्र चिन्तन द्वारा ही वास्तु की निर्माणप्रक्रिया का शुभारम्भ होता है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में दिशा के निर्धारण हेतु दिक्साधन किया जाता है तत्पश्चात् दिशा के आधार पर वास्तु के शुभाशुभत्व का विचार किया जाता है। इसी प्रकार वास्तुशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों में देश एवं काल भी महत्वपूर्ण है। देश और काल की शुद्धि के अभाव में वास्तु का विधान करना शास्त्रसम्मत नहीं माना जाता। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इन दो विषयों का विस्तार से वर्णन मिलता है। देश का अर्थ स्थान विशेष से है, वह स्थान विशेष जिसमें वास्तुनिर्माण किया गया हो, अथवा किया जाना हो। काल का सम्बन्ध समय से है। एक ओर जहां देश का निर्धारण अक्षांश एवं देशान्तर के आधार पर किया जाता है, वहीं काल का निर्धारण देश पर आधारित होता। यही काल मूर्त एवं अमूर्त दो अवस्थाओं में माना गया है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में काल की सत्ता भी महत्वपूर्ण है। काल को शुभ एवं अशुभ कोटियों में रखकर उसमें से शुभ काल में ही वास्तुनिर्माण तथा उससे सम्बन्धित कार्य किए जाते है। जनसामान्य काल को समय के नाम से जानता है, अतः वास्तुनिर्माण हेतु समय के विधान को ही कालविधान कहते हैं। देश और काल ये दोनों विषय एक दूसरे के पूरक हैं, जिसका अध्ययन हम इस अध्याय में करेंगे। प्रस्तुत इकाई में हम देश एवं काल के विषय में विस्तारपूर्वक पढेंगे।

3.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

1. देश के निर्धारण के विषय में विस्तार से जान सकेंगे।
2. ग्रामवास को समझ सकेंगे।
3. काल के विविध मानों से परिचित हो सकेंगे।
4. देश और काल के आपसी सम्बन्धों का वैज्ञानिक पक्ष ज्ञात होगा।
5. अक्षांश एवं देशान्तर को समझकर स्थान का निर्धारण समझेंगे।
6. वास्तुशास्त्र में मुहूर्तों की आवश्यकता को समझ पायेंगे।
7. स्थान और काल के आधार पर वास्तुशास्त्रीय पक्षों का भी अध्ययन करेंगे।

3.3 देश विवेचन

देश का अर्थ होता है स्थान। स्थान को यदि व्यापक अर्थों में देखा जाए तो पर्यावरण का विवेचन भी इसके अन्तर्गत हो जाएगा। वैज्ञानिक रूप से स्थान का निर्धारण अक्षांश एवं देशान्तर के आधार पर होता है। अतः वास्तुशास्त्र भूमि विषयक शास्त्र होने के कारण देश अथवा स्थान की विस्तृत विवेचना करता है। वास्तुनिर्माण हेतु मूलभूत आवश्यकता भूमि की होती है। भूमि के ऊपर ही किसी भी प्रकार का वास्तु निर्माण हो सकता है। वास्तुनिर्माण से पूर्व भूमि को शुद्ध किया जाता है तथा उपयुक्त भूमि पर ही निर्माण कार्य किया जाता है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में भूमिशोधन एवं भूमिचयन की अनेकों विधियां हमें प्राप्त होती हैं। भूखण्ड चयन के सिद्धान्तों के विस्तृत अध्ययन में भूखण्ड के आसपास के वातावरण भी महत्वपूर्ण व आवश्यक होता है। भूखण्ड के वातावरण का अध्ययन देश अध्ययन के अन्तर्गत आता है। उदाहण स्वरूप भूमि का गुण, भूमि का प्रकार, भूमि के आस-पास की अन्य भूमियां, पेड़-पौधे, नदी, पत्थर, चट्टान आदि सभी को मिलाकर उसके आधार पर भूमि का अध्ययन किया जाता है। इन्हीं समग्र विचारों को स्थान विचार या देश विचार कहा जाता है। देश का प्रभाव भूखण्ड पर पड़ता है, इसलिए वास्तुशास्त्र में देश का विशेष महत्व है। कौन सा स्थान उत्तम है और कौन सा अधम? इस प्रश्न का उत्तर हमें वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में निहित स्थान विचार विषयक ज्ञान परम्परा से प्राप्त होता है। इसके लिए ग्रन्थों में स्थान की शुद्धता, स्थान का पर्यावरण एवं स्थान का गुण आदि विषयों का वर्णन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में हमें प्राप्त होता है।

3.3.1 भूमि और देश का सम्बन्ध

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि एक नियत भूखण्ड विशेष को कहा जाता है। उस भूखण्ड के शुभाशुभ ज्ञान के पश्चात् ही वहां वास्तुनिर्माण किया जाता है। वह भूमि जिस वातावरण में अथवा जिस भी भौगोलिक स्थिति में होती है, उस वातावरण एवं स्थिति का नाम ही स्थान है। अतः हम कह सकते हैं कि भूमि का वातावरण और उसकी स्थिति ही स्थान होता है। उदाहरण स्वरूप यदि हम किसी भूखण्ड की चर्चा करते हैं तो हम कहते हैं कि यह भूखणण्ड किस स्थान पर स्थित है? तो इसका उत्तर हम मात्र दो प्रकार से दे सकते हैं, एक है उसके अक्षांश एवं देशान्तर की स्थिति और दूसरा है उस भूखण्ड के आस-पास के अन्य पदार्थों की स्थिति। स्थान अथवा देश एक ऐसी सत्ता है जिसे हम सामान्य परिभाषा में नहीं बांध सकते। व्यापक अवयवों में देश का अर्थ भी व्यापक हो जाता है। यदि हम हरिद्वार की बात करें तो हरिद्वार एक व्यापक स्थान है। उस हरिद्वार के अन्दर किसी नियत स्थान की बात करें तो कनखल एक स्थान है। उस कनखल में कोई भूखण्ड है तो हम कहते हैं कि यह भूखण्ड कनखल स्थान पर स्थित है। वास्तुशास्त्र में भूखण्ड का शुभाशुभ निर्णय स्थान के

आधार पर किया जाता है। स्थान अथवा देश विशेष में स्थित पञ्चमहाभूतों का सामञ्जस्य, दिशाओं और प्राकृतिक शक्तियों के समन्वय आदि के आधार पर स्थान का शुभाशुभत्व देखा जाता है। स्थान के शुभाशुभत्व का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से भूमि पर भी पड़ता है। अतः वास्तुशास्त्र में देश को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वृहद्वास्तुमाला में वर्णन मिलता है, यदि स्थान की सुन्दरता मनभावन हो और प्रथमदृष्ट्या ही स्वामी को भाती हो तो वहां वास्तुनिर्माण कर लेना चाहिए। जैसे –

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।।

- (वृहद्वास्तुमाला 1.93)

अर्थात् जिस भूमि पर मन एवं नेत्र प्रफुल्लित एवं सन्तुष्ट हो जाए, उस भूमि पर गृहनिर्माणादि कार्य करना चाहिए, ऐसा गर्गादि मुनियों का मत है। वास्तुशास्त्र में स्थान के शुभाशुभत्व के सम्बन्ध में काकिणीविचार, ग्रामवासनराकृतिचक्र, शिवाबलि, राशिभेद से ग्रामवास, दिशाभेद से ग्रामवास आदि अनेक विधियां कही गई हैं। उनमे सर्वाधिक प्रचारित प्रसारित काकिणी विचार है। आइये काकिणी विचार को समझते हैं।

3.3.1.1 काकिणी विचार

काकिणी विचार स्थान और स्वामी के आपसी शुभाशुभत्व हेतु किया जाता है। इसके लिए अष्टवर्गबोधकचक्र की आवश्यकता होती है। वर्ग का सम्बन्ध नाम के प्रथमाक्षर से है। नाम के पहले अक्षर के आधार पर वर्ग बनाए गए हैं। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में आठ वर्गों का वर्णन मिलता है। इन आठ वर्गों में प्रत्येक के स्वामी तथा दिशाएं भिन्न हैं। वृहद्वास्तुमाला में इसका विस्तृतवर्णन प्राप्त होता है –

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुड़ो विडालः।
सिंहस्तथैव शुनकोरग-मूषकैणः।।
मेषः क्रमेण गदिताः खलु पूर्वतोऽपि।
यः पञ्चमः स रिपुरेव बुधैर्विवर्ज्यः।।

- (वृहद्वास्तुमाला 1.17)

अष्टवर्गबोधकचक्र								
वर्गसंख्या	1	2	3	4	5	6	7	8
वर्ग	अ	क	च	ट	त	प	य	श
दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	दक्षिण	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)
वर्गस्वामी	गरुड	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	मेष
वर्गाक्षर	अ,इ,उ,ऋ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः	क,ख,ग,घ,ङ	च,छ,ज,झ,ञ,	ट,ठ,ड,ढ,ण	त,थ,द,ध,न	प,फ,ब,भ,म	य,र,ल,व	श,ष,स,ह

उपर्युक्त अष्टवर्गबोधकचक्र में से अपने से पंचम वर्ग शत्रुवर्ग है। अतः अपने वर्ग से पाँचवें वर्ग की दिशा में निवास नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार उपर्युक्त अष्टवर्गबोधकचक्र में से अपने और स्थान के नाम का प्रथमाक्षर वर्ग में से चुनकर वर्ग का चयन करके उस वर्ग की संख्या के आधार पर निम्न प्रकार से काकिणी का विधान किया जाता है -

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।

अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत्।।

(वृहद्वास्तुमाला 1.18)

अर्थात् अपने वर्गसंख्या को दोगुना करके उसमें दूसरे की वर्गसंख्या को जोड़कर पुनः योगफल में आठ से भाग देकर जो संख्या शेष बच जाय वह काकिणी होती है। इसी प्रकार निवासेच्छुक मनुष्य एवं उस स्थान ग्राम/नगर आदि के नाम की पृथक्-पृथक् काकिणी का विधान करके दोनों में से जिसकी संख्या अधिक हो वह दूसरे का ऋणी होता है। ग्राम/नगर की काकिणी से कम अथवा समतुल्य होने पर उस स्थान पर निवास शुभ कहा गया है।

उदाहरण –

माना किसी व्यक्ति का नाम परमानन्द है और उसे हरिद्वार स्थान के साथ काकिणी मिलान करना है –

- व्यक्ति का नामाक्षर - (प) इस प्रकार वर्गांक - 6
- स्थान का नामाक्षर - (ह) इस प्रकार वर्गांक – 8

पहले व्यक्ति की काकिणी विचार करते हैं –

- सर्वप्रथम व्यक्ति वर्गाक्षर को दुगुना किया - 6×2 = 12
- पुनः उसमें स्थान का वर्गाक्षर जोड़ दिया – 12+8 = 20
- पुनः 8 से विभाजित किया - 20/8 = 4 (शेष)

इसी प्रकार स्थान की काकिणी –

- सर्वप्रथम स्थान के वर्गांक को दुगुना किया - 8×2=16
- पुनः व्यक्ति के वर्गांक का जोड़ – 16+6 = 22
- पुनः 8 से विभाजित करने पर – 22/8 = 6 (शेष)

(शेष अंक काकिणी कहलाएगा। अतः इस प्रकार व्यक्ति (परमानन्द) की काकिणी 4 और स्थान (हरिद्वार) की काकिणी 6 प्राप्त हुई)

निष्कर्ष – परमानन्द नामक व्यक्ति की काकिणी हरिद्वार से कम है। अतः हरिद्वार परमानन्द के लिए ऋणी है। इस प्रकार हरिद्वार में काकिणी विचार करने पर परमानन्द के लिए हरिद्वार में निवास करना शुभ है।

3.3.1.2 नराकृतिचक्र विचार

ग्राम में वास शुभ रहेगा या नहीं, इसका विचार काकिणी से तो होता ही है, साथ ही अन्य प्रकार से भी किया जाता है। जिसमें नराकृतिचक्र विचार भी महत्वपूर्ण है। मनुष्याकृति बनाकर

ग्रामनक्षत्र से निवासकर्ता के जन्मनक्षत्र तक गिनकर निम्नतालिका के अनुसार शुभाशुभ जानना चाहिए-

स्थान	मस्तक	मुख	पेट	पाँव	पीठ	नाभि	गुप्तस्थान	दाँया हाथ	बाँया हाथ
नक्षत्र संख्या	1-5	6-8	9-13	14-19	20	21-24	25	26	27
फल	लाभ	धननाश	धन धान्य	स्त्री हानि	पैर में कष्ट	सम्पत्ति	भय पीडा	क्रन्दन (अशुभ)	भेद (अशुभ)

3.3.1.3 शिवाबलि विचार - आधी रात के समय ग्राम के निर्जन प्रदेश में मांस इत्यादि से युक्त भात जमीन में रखें। फिर वहाँ से हटकर गीदडों की आवाज आवाज होने वाली दिशा पर ध्यान दें। तब निम्न तालिका के अनुसार ग्राम में निवास के शुभाशुभ फल को जानें-

ध्वनि दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	दक्षिण	नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)	सभी दिशा	निःशब्द
फल	उच्चाटन, कलह	भय	कल्याण	निषिद्ध	आनन्द	स्वल्प भय	शुभ	मरण	निषिद्ध	शुभ

3.3.1.4 राशि के अनुसार ग्रामवास - अपनी नामराशि से 2,5,9,10 एवं 11 वीं यदि ग्राम की नाम राशि हो तो ग्राम में निवास शुभ होता है। 1,3,4, एवं 7वीं राशि मध्यम तथा 6,8,12 वीं राशि अशुभ होती है।

राशि के अनुसार जातकों को निम्न चक्रानुसार ग्राम के कथित दिशाओं में निवास नहीं करना चाहिए-

निषिद्ध ग्राम दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	दक्षिण	नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)	ग्राम-मध्य
राशि	वृश्चिक	मीन	कन्या	कर्क	धनु	तुला	मेष	कुम्भ	वृष, मिथुन, सिंह, मकर

अभ्यास प्रश्न

1. देश शब्द का अर्थ बताइये।
2. गृहादिनिर्माण हेतु भूमिशोधन का निर्देश कौन सा शास्त्र करता है?
3. ग्रामवास का विचार किस चक्र से किया जाता है?
4. राशि अनुसार ग्राममध्य में किन्हें निवास नहीं करना चाहिए?
5. काकिणी विचार का सम्बन्ध किससे है?
6. वर्गों की संख्या कितनी है?
7. नाम के वर्गांक का ज्ञान किस चक्र से होता है?
8. काकिणी विचार में ऋणी कौन होता है?
9. काकिणी के समतुल्य होने का क्या फल है?

3.3.2 देश का निर्धारण

जैसे कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि देश एवं स्थान दोनों समानार्थक शब्द हैं। देश/स्थान के निर्धारण हेतु अक्षांश एवं देशान्तर का साधन किया जाता है। अक्षांश एवं देशान्तर को समझने के लिए हमें पृथिवी के गोलत्व को समझना होगा। हमारी पृथिवी गोल है। इस भूगोल को दो प्रकार से आधे आधे भागों में बाँटा जा सकता है। पहले प्रकार में भूगोल को पृथिवी के दोनों पृष्ठीय ध्रुवों अर्थात् उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों से 90 अंश की दूरी पर स्थित भूमध्यवृत्त से दो भागों में विभक्त किया जाता है। इन दोनों भागों का नाम क्रमशः उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्ध कहा गया है। इन दोनों गोलार्धों को विभाजिक करने वाली रेखा को भूमध्य रेखा को विषुवद् रेखा और निरक्षवृत्त (शून्य

अक्षांशरेखा) भी कहा जाता है। इस रेखा से उत्तरी ध्रुव तक का 90 अंश का क्षेत्र उत्तरी गोलार्ध तथा दक्षिणी ध्रुव तक के 90 अंश क्षेत्र को दक्षिणी गोलार्थ कहा जाता है। अपना स्थान विषुवद्वृत्त से उत्तर या दक्षिण कितने अंश दूरी पर है, इसका ज्ञान अक्षांश द्वारा किया जाता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों का अक्षांश क्रमशः 90 अंश उत्तर तथा 90 अंश दक्षिण होता है।

द्वितीय प्रकार में उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव का स्पर्श करते हुए अनेक तुल्य वृत्तों की भी कल्पना की गई है। इनमें से एक वृत्त को मानक भूमध्यदेशान्तर मानकर उससे पूर्व या पश्चिम कितने अंशादि पर अपना देश है, इसका ज्ञान किया जाता है। किसी स्थान की स्थिति को बताने के लिए उस स्थान के अक्षांश तथा देशान्तर की स्थिति को बताया जाता है। किसी स्थान का अक्षांश, धरातल पर उस स्थान की 'उत्तर-दक्षिण स्थिति' को बताता है। जबकि देशान्तर उस स्थान की 'पूर्व-पश्चिम स्थिति' को बताता है। आइये विस्तार से अक्षांश एवं देशान्तर को समझते हैं।

3.3.2.1 अक्षांश

विषुवद् वृत्त के सभी बिन्दुओं का अक्षांश शून्य होता है। अर्थात् भूमध्य रेखा शून्य अंश अक्षांश से होकर जाने वाली रेखा है। विषुवत वृत्त की उत्तरी एवं दक्षिणी दिशा में 1 अंश के अन्तराल से खींचे जाने पर क्रमशः 90 अक्षांश वृत्त होते हैं। अतः स्पष्ट है कि किसी भी स्थान का अक्षांश 90 अंश से अधिक नहीं हो सकता। ये अक्षांश रेखाएँ काल्पनिक रेखाएँ है, इनकी संख्या अनन्त है, परन्तु एक अंश के अंतराल पर कल्पित किये जाने पर पृथिवी के अक्षांश रेखाओं (भूमध्य रेखा को मिलाकर) की कुल संख्या = 90 + 90 + 1 = 181 होगी। यदि दोनों ध्रुवों को रेखा न माना जाय और इन्हें बिन्दु माना जाए तो इन रेखाओं की संख्या 179 होगी। ये रेखाएं पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर कल्पित की गई हैं। सभी अक्षांश रेखाऐं एक दूसरे के समानान्तर प्रति एक अंश पर पूर्ण वृत के रूप में होती हैं। इन सभी अक्षांश रेखाओं का मूल एवं मध्य केन्द्र भूमध्य रेखा या विषुवद् वृत्त है। भूमध्य रेखा के दोनों ओर अक्षांशीय वृत्त क्रमशः छोटे होते जाते हैं तथा उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव बिन्दु मात्र होते हैं। अक्षांश रेखाओं का अधिकतम मान 90° उत्तर अथवा 90° दक्षिण तक होता है।

अक्षांश (समानान्तर)
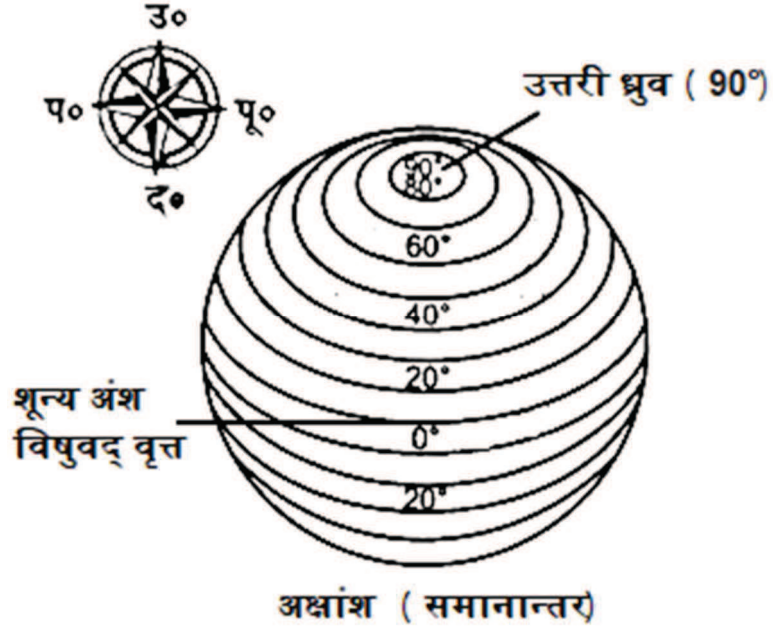
3.3.2.2 देशान्तर

पृथिवी पर उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक खींची गयी रेखाओं को देशान्तर रेखा कहते हैं। प्रत्येक देशान्तर रेखा एक ध्रुव से शुरू होती है और दूसरे ध्रुव तक जाकर मिल जाती है। प्राचीन काल में भारतीय ज्योतिर्विद लंका, उज्जैन, कुरुक्षेत्र आदि से दोनों धुवों की ओर जाने वाली देशान्तर रेखा को मानक भूमध्य रेखा मानते थे। वर्तमान में जो देशान्तर रेखा लंदन के ग्रीनविच से होकर गुजरती है, उसे शून्य अंश देशान्तर कहते हैं। शून्य अंश देशान्तर (ग्रीनविच रेखा) के पूर्व में स्थित देशान्तर रेखा को पूर्वी देशान्तर रेखा तथा शून्य अंश देशान्तर (ग्रीनविच रेखा) के पश्चिम में स्थित देशान्तर रेखा को पश्चिमी देशान्तर रेखा कहा जाता है। ग्रीनविच स्थित याम्योत्तर रेखा को प्रधान याम्योत्तर रेखा भी कहा जाता है। इस प्रकार पृथ्वी पर दो तुल्य अक्षांशों की कोणीय दूरी को देशांतर कहा जाता है। ये रेखाएं समानान्तर नहीं होती, परन्तु समान होती हैं। ये उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पर एक बिन्दु पर मिल जाती हैं। ध्रुवों से विषुवत रेखा की ओर बढ़ने पर देशान्तरों के बीच की दूरी बढ़ती जाती है। विषुवत रेखा पर इसके बीच की दूरी अधिकतम होती है। ग्रीनविच वेधशाला से गुजरने वाली रेखा को 0° देशांतर माना जाता है। इसकी बाईं ओर की रेखाएं पश्चिमी देशांतर और दाहिनी ओर की रेखाएं पूर्वी देशांतर कहलाती हैं।

देशान्तर (याम्योत्तर)
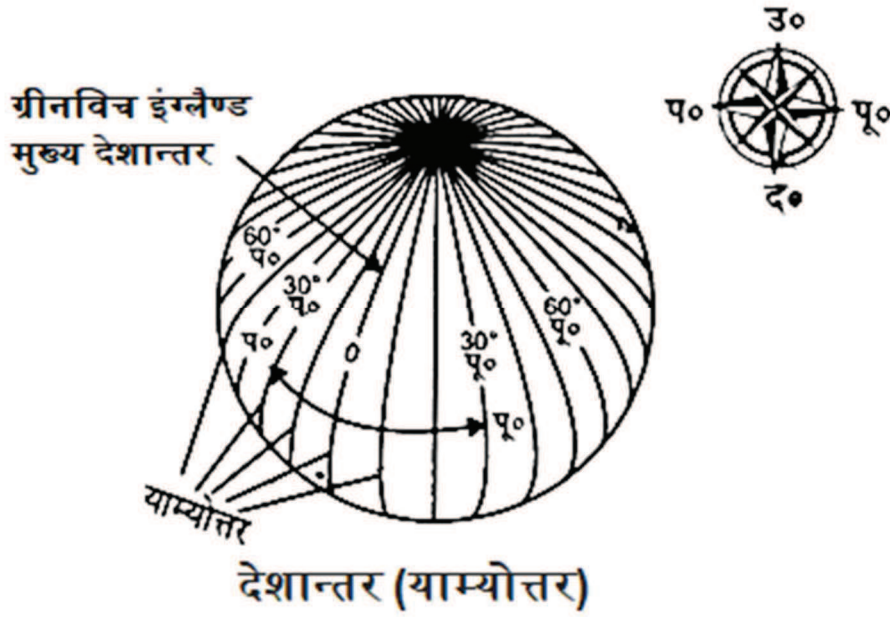
अभ्यास प्रश्न

10. विषुवद् वृत्त के सभी बिन्दुओं का अक्षांश क्या होता है?
11. उत्तरी गोलार्ध किसे कहते हैं?
12. दक्षिणी गोलार्ध किसे कहते हैं?
13. निरक्ष भूमध्य रेखा के अन्य नाम बताइये।
14. देशान्तर रेखा क्या हैं?
15. शून्य अंश देशान्तर रेखा कहां स्थित है?

3.4 काल विवेचन

काल को हम समय के नाम से भी जानते हैं। "कलयति गणयति इति कालः"। इस प्रकार जो निरन्तर प्रवाहमान रहे वही काल है। इस काल की गणना ज्योतिष शास्त्र द्वारा की जाती है। काल के मुख्य रूप से दो भेद माने गए हैं मूर्त एवं अमूर्त। मूर्त काल को स्थूल तथा अमूर्त को सूक्ष्म काल भी कहा जाता है। भारतीय कालगणना में काल की नौ प्रकार से गणना की जाती है। यह निम्न प्रकार से है –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यञ्च गौरवम्।
सौरञ्च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव।।

चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रर्क्षसावनैः।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 1)

इन सभी नवविध कालमानों के प्रमाण पृथक-पृथक् होते हैं। ये सभी 30 दिन = 1 मास, 12 मास = 1 वर्ष, अपने-अपने प्रमाण से होते हैं। इन नवविधकाल मानों में केवल नक्षत्रमान ही स्थिर होता है अन्य सभी मान चल हैं। इन नवविध कालमानों का विस्तार से वर्णन आगे किया जा रहा है।

3.4.1 चान्द्रमान

चन्द्रमा के आधार पर की गई कालगणना चान्द्रमान कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त में चान्द्रमान की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है –

अर्कात् विनिस्मृतं प्राची यद्यत्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 12)

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा के संयोग से इस काल की गणना प्रारम्भ की जाती है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच 12 अंश का अन्तर होने पर एक तिथि पूर्ण होती है। इसी प्रकार तीस तिथियों का एक चान्द्रमास बनता है। अतः दो अमावस्याओं के बीच का समय एक चान्द्रमास कहलाता है। चन्द्रमा की कलाओं के आधार पर एक चान्द्रमास को दो पक्षों में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार से शुक्लपक्ष में पंद्रह तथा कृष्णपक्ष में पंद्रह तिथियां होती है। शुक्लपक्ष की पंद्रहवी तिथि को पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष की पंद्रहवीं तिथि अमावस्या होती है। इसी प्रकार 12 चान्द्र मासों का एक चान्द्रवर्ष होता है। यह चान्द्रवर्ष लगभग 354 सावनदिन का होता है। चान्द्रमान का प्रयोग मासज्ञान, तिथिज्ञान, करणज्ञान, विवाह, मुण्डन, व्रत, उपवास, यात्रा विषयक विचार, जातकर्म सदृश अन्य सभी कार्यों में किया जाता है।

3.4.2 नाक्षत्रमान

नक्षत्र से सम्बन्धित होने के कारण इस कालमान को नाक्षत्रमान कहते हैं। भचक्र अर्थात् नक्षत्रमण्डल के दैनिक भ्रमणकाल को एक नाक्षत्रदिन कहा जाता है। जैसै –

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 15)

इस प्रकार तीस नाक्षत्रदिनों का एक नाक्षत्र मास तथा 12 नाक्षत्रमासों का एक नाक्षत्रवर्ष होता है। जिस पूर्णिमा को जो चन्द्र जिस नक्षत्र के साथ उदित होता है प्रायः उसी नक्षत्र के नाम से

उस मास का नाम होता है। जैसे पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र में चन्द्र के रहने से चैत्रमास। नाक्षत्रमान से घटिकादि मान लिये जाते हैं।

3.4.3 सावन मान

सावन मान सूर्योदय पर आधारित होता है। दो सूर्योदयों के बीच का कालमान सावनदिन कहलाता है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस मान की परिभाषा निम्न है –

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्तितम्।
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 18)

इसी सावन दिन को भू दिन भी कहा जाता है। इस प्रकार 30 सावन दिनों का समूह एक सावन मास कहा जाता है। तथा 12 सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है। स्पष्ट सावन दिन का मान बदलता रहता है। सावन कालमान का उपयोग यज्ञादि कार्यो, सूतकों का निर्धारण, दिनेश-मासेश-वर्षेश आदि के निर्णय में किया जाता है।

3.4.4 सौरमान

सूर्य से सम्बन्धित कालगणना होने के कारण इसे सौरमान कहा जाता है। सूर्य क्रान्तिवृत्त पर पूर्वाभिमुख भ्रमण करता है। इस प्रकार सूर्य द्वारा क्रान्तिवृत्त के एक अंश के भोगकाल को एक सौरदिन तथा एक राशि के भोगकाल को एक सौरमास कहा जाता है। इसी प्रकार मेषादि द्वादश राशियों में सूर्य के संक्रमण काल को एक सौरवर्ष कहा जाता है। इस प्रकार सूर्य के मकरादि छः राशियों में रहने पर उत्तरायण तथा कर्कादि छः राशियों में सूर्य के संक्रमण काल को दक्षिणायन कहा जाता है। इसी प्रकार से सूर्य द्वारा दो राशियों के भोग काल को एक ऋतु कहा जाता है तथा एक वर्ष में छः ऋतुएं होती है। सौरमान का प्रयोग संक्रान्तिज्ञान, वर्ष, अयन, ऋतु आदि के ज्ञान हेतु किया जाता है –

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीति मुखानि च।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालता।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 3)

अभ्यास प्रश्न

16. काल की गणना कैसे की जाती है?
17. काल कितने प्रकार का होता है, नाम बताइये?

18.काल की गणना कितने प्रकार से की जाती है?

19. नवविध कालमानों में स्थिर मान कौन सा है?

20. चान्द्रमान क्या होता है?

21. सूर्य और चन्द्रमा के 12 अंश के अन्तर को क्या कहते हैं?

22. पितरों का एक अहोरात्र क्या होता है?

23. नाक्षत्र दिन किसे कहते हैं?

24. सावन दिन क्या होता है?

25. सौरदिन क्या होता है?

3.4.5 पैत्र्यमान

पैत्र्यमास का संबन्ध चान्द्रमास से है। एक चान्द्रमास में 30 तिथियां होती हैं। यही पितरों का एक अहोरात्र कहलाता है। सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर कहा गया है –

त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम्।
निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 14)

पितरों का निवास चन्द्रमा के ऊर्ध्वभाग में माना गया है। अमावस्या को पितरों के अहोरात्र का मध्याह्न होता है तथा पूर्णिमा को मध्यरात्रि होती है। कृष्णपक्ष के सप्तम्यर्ध को पितरों का सूर्योदय तथा शुक्लपक्ष के सप्तम्यर्ध को सूर्यास्त होता है।

3.4.6 गौरवमानम्

गुरु से संबन्धित मान को गौरवमान कहते हैं। गुरु द्वारा मध्यमगति से एक राशि के भोगकाल को एक गौरववर्ष कहा गया है। संवत्सर आदि का निर्णय गौरवमान के आधार पर किया जाता है। 60 संवत्सरों की गणना का मुख्य आधार गौरवमान ही है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार –

वैशाखादिषु कृष्णे च योगात् पञ्चदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा ।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 17)

जिस मास में गुरु उदय अथवा अस्त होते हैं उस मास की अमावस्या तिथि को जो भी नक्षत्र हो उसी के नाम पर गुरुवर्ष प्रारम्भ होता है।

3.4.7 दिव्यमान

देवताओं से संबन्धित मान होने के कारण इसे दिव्यमान कहा जाता है। दिव्यमान की कालगणना सौरमान के आधार पर की जाती है। हमारा एक सौरवर्ष देवताओं के एक अहोरात्र के तुल्य होता है। सायन मेषारम्भ को देवताओं का दिन प्रारम्भ होता है तथा 6 मास पर्यन्त अर्थात् सायन मेष से सायन कन्यान्त तक देवताओं का दिन होता है। यही समय असुरों की रात्रि का होता है। तत्पश्चात् सायन तुलारम्भ को देवताओं की रात्रि प्रारम्भ होती है तथा 6 मास पर्यन्त अर्थात् सायन तुला से सायन मीनान्त तक देवताओं की रात्रि होती है। यही समय असुरों का दिन होता है। सूर्यसिद्धान्त में दिव्यमान के विषय में कहा गया है –

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रे विपर्ययात्।
यत् प्रोक्तं तद् भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात्।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 20)

3.4.8 प्राजापत्य मान

प्रजापति मनुओं से सम्बन्धित होने के कारण इस कालमान को प्राजापत्यमान कहा जाता है। इस मान में दिन-रात्रि का भेद नहीं होता। एक मनु के कालमान के बराबर ही एक प्रजापति का मान होता है। एक मनु में 71 महायुग होते हैं। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है-

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्तितम्।।

(सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय 21)

अर्थात् मन्वन्तर की व्यवस्था हेतु प्राजापत्य मान से कालगणना की जाती है। मन्वन्तर को इस प्रकार समझ सकते हैं –

- 4 युग = 1 महायुग
- 1 महायुग = 43,20,000 सौर वर्ष = 12,000 दिव्य वर्ष
- 71 महायुग = 1 मन्वन्तर = 1 प्राजापत्य का मान
- एक महायुग का कालमान 43,20,000 सौर वर्ष, तथा 12,000 दिव्य वर्ष माना गया है। इस प्रकार 12,000 × 71 = 8,52,000 (दिव्यवर्ष) = एक प्राजापत्यमान। इसे यदि हम

सौर वर्ष में परिवर्तित करें तो 8,52,000 × 360 = 30,67,20,000 (सौर वर्ष) = एक प्राजापत्य का मान।

- इसी प्रकार 4,32,0000 (सौरवर्ष) × 71 = 306,720,000 (सौर वर्ष) = एक प्राजापत्य का मान।

3.4.9 ब्राह्म मान

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार एक कल्प के मान के बराबर ही एक ब्राह्मदिन का मान होता है। इसी प्रकार एक कल्प के तुल्य ब्रह्मा की एक रात्रि का मान भी होता है। दो कल्पों का कालमान ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है।

1,000 महायुग = 1 कल्प = 1 ब्राह्म दिन

2000 महायुग = 2 कल्प =1 ब्राह्म अहोरात्र

60000 महायुग = 60 कल्प = 1 ब्राह्म मास

7200000 महायुग = 720 कल्प =1 ब्राह्म वर्ष

311040000000000 सौरवर्ष = 72000 कल्प =720000000 महायुग = 100 ब्राह्मवर्ष = ब्रह्मा की पूर्ण आयु

इन नवविध कालमानों में मुख्य रूप से व्यवहार में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र तथा सावन मान इन चारों का ही प्रयोग होता है। बार्हस्पत्य की आवश्यकता साठ संवत्सरों के ज्ञान हेतु तथा शेष चार (ब्राह्म, पित्र्य, दिव्य तथा प्राजापत्य) मानों की आवश्यकता नित्य व्यवहार में नहीं होती।

3.5 काल एवं मुहूर्त

ज्योतिष को कालविधान शास्त्र कहा जाता है। काल के शुभाशुभ पक्षों का विचार करते हुए शुभाशुभ फलकथन कर इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार में सहयोग करना ही ज्योतिषशास्त्र का परम उद्देश्य है। इस हेतु किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य, यज्ञ, संस्कार आदि के सम्यक् निष्पादन के लिए सर्वप्रथम तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इन पञ्चाङ्गों की शुद्धि करते हुए लग्न की शुद्धि भी देखी जाती है। इसे ही मुहूर्त शोधन कहा जाता है। मुहूर्त शोधन में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दुर्मुहूर्त आदि का भी सूक्ष्मता पूर्वक विचार किया जाता है। वास्तुशास्त्र में भी गृहारम्भ, खात, शिलान्यास, द्वारस्थापन, गृहप्रवेश आदि कृत्यों के लिए शुभ मुहूर्त का शोधन होता है।

3.6 देश एवं काल का सम्बन्ध

प्रत्येक देश का काल भिन्न होता है। वस्तुतः भारतीय कालगणना में नौ प्रकार के कालों का वर्णन मिलता है। इन सभी का उद्देश्य भिन्न भिन्न होता है। इनमें सर्वाधिक मानक काल की गणना सूर्य के सापेक्ष की जाती है। सूर्य प्रतिदिन पूर्व में उदित होता हुआ दिखता है और पश्चिम में अस्त होता हुआ प्रतीत होता है। वस्तुतः सूर्य न कभी उदित होता है और न ही कभी अस्त, वह तो सदैव विद्यमान रहता है। परन्तु पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण एक ओर दिन और दूसरी ओर रात हो जाती है। और हमें सूर्य का उदयास्त भान होता है। प्रत्येक स्थान का अपना एक काल नियत होता है। काल का निर्धारण देश पर आधारित होता है, पृथिवी के घूमने पर काल परिवर्तित होता रहता है। प्रत्येक स्थान का अपना काल भिन्न होता है। इस प्रकार भारतीय काल गणना के व्यवहार में समय को दो भागों में विभाजित किया जाता है – स्थानिक समय (लोकल समय) तथा मानक समय (स्टैण्डर्ड समय)। स्थानिक समय स्थानविशेष का अपना समय होता है। विश्व का स्टैण्डर्ड समय शून्य अंश देशान्तर रेखा ग्रीनविच के स्थानिक समय पर आधारित कालगणना है। इसी प्रकार भारत में 82.5^0 पूर्वी देशान्तर रेखा के समय को भारत की मानक समय रेखा स्वीकार किया गया है। 82.5^0 पूर्वी देशान्तर रेखा प्रयागराज के नैनी से होकर गुजरती है। अतः प्रयागराज का स्थानिक समय पूरे भारत का मानक समय माना जाता है।

पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व की दिशा में घूमती है इसलिए सूर्योदय सबसे पहले पूर्व दिशा में होता है। उदाहरण के लिए यदि देखा जाये तो भारत में अरुणाचल प्रदेश में सूर्योदय सबसे पहले होता है, जबकि भारत में ही गुजरात राज्य में अरुणाचल प्रदेश से लगभग दो घंटे बाद सूर्योदय होता है। क्योंकि गुजरात, अरुणाचल प्रदेश से लगभग 30^0 देशान्तर पश्चिम में स्थित है। पृथ्वी अपने अक्ष पर 360^0 अंश घूमने में लगभग 24 घंटे का समय लगाती है, अतः पृथ्वी को एक अंश घूमने में 4 मिनट का समय लगता है। इस प्रकार प्रत्येक देशान्तर के मध्य 4 मिनट का अन्तर पाया जाता है। 0^0 देशान्तर रेखा से पूर्व की दिशा में समय आगे होता है, जबकि 0^0 देशान्तर रेखा के पश्चिम की दिशा में समय पीछे होता है। ऐसा पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व दिशा में अक्षभ्रमण के कारण होता है। यदि 0^0 देशान्तर रेखा पर 12 बज रहे होंगे तो 15^0 पूर्वी देशान्तर रेखा पर दोपहर का एक बज रहा होगा। इस नियम के अनुसार भारत का समय लंदन के समय से 5 घंटा 30 मिनट आगे है। एक ही देश से होकर अनेक देशान्तर रेखाएँ गुजरती हैं। उदाहरण के लिए भारत के सबसे पश्चिमी छोर पर 68.7^0 पूर्वी देशान्तर रेखा तथा इसके पूर्वी छोर पर 97.25^0 पूर्वी देशान्तर रेखा गुजरती है। यदि इन दोनों देशान्तर रेखाओं के मध्य में अन्तर देखा जाये तो कुल लगभग 30^0 देशान्तर रेखाओं

का अन्तर प्राप्त होता है। अतः दोनों देशान्तर के मध्य लगभग 2 घंटे का अन्तर पाया जाता है। इसी कारण अरुणांचल एवं गुजरात के सूर्योदय में लगभग दो घण्टे का अन्तर होता है। इस प्रकार अधिक देशान्तरीय विस्तार वाले देशों में पूर्वी छोर का समय पश्चिमी छोर के समय से अलग हो जाता है। इस समय के अन्तर को समाप्त करने के लिए हमने 82.5^0 देशान्तर रेखा को भारत का मानक समय स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार 82.5^0 पश्चिमी देशान्तर का समय ज्ञात करने हेतु ग्रीनविच समय में 82.5^0 पश्चिमी देशान्तर के समय को कम कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि ग्रीनविच पर दोपहर के 12 बज रहे होंगे तो इसमें से 5 घंटा 30 मिनट कम कर दिया जायेगा। अत: 82.5^0 पश्चिमी देशान्तर रेखा पर सुबह के 6 बजकर 30 मिनट होगा।

अभ्यास प्रश्न

26. गौरवमान का संबन्ध किससे है?
27. दिव्यमान क्या होता है?
28. प्राजापत्यमान किस हेतु किया जाता है?
29. ब्रह्मा का एक दिन कितना होता है?
30. भारतीय मानक समय हेतु देशान्तर रेखा कौन सी है और यह कहां स्थित है?

3.7 सारांश

वास्तुशास्त्र देश एवं काल के सम्बन्ध एवं उसके आधार पर वास्तुनिर्माण प्रक्रिया हेतु सदैव निर्देश करता है। वास्तुशास्त्र देश एवं काल के विधान का विस्तार अपने मानक शास्त्रों में करता है। देश के विना काल की गणना करना संभव नहीं है, और काल के विना देश का व्यवहार नहीं हो सकता। अतः सर्वप्रथम स्थान का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक स्थान का भी काल भिन्न होता है। अतः देश एवं काल दोनों ही विषय महत्वपूर्ण एवं एक दूसरे के पूरक हैं। वास्तुशास्त्र में देश के आधार पर ही काल का विधान मुहूर्तादि के ज्ञान हेतु किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में आपने देश एवं काल के आपसी सम्बन्धों पर अध्ययन किया।

3.8 शब्दावली

देश - स्थान
शास्त्रसम्मत - शास्त्र द्वारा मानित
काल - समय
कोटि - प्रकार
जनसामान्य - सामान्य जनता

शास्त्रीय	- शास्त्र से आधारति
पृथक्-पृथक्	- अलग-अलग
व्यापक	- समग्रता सम्बन्धित
भूमिशोधन	- भूमि का शुद्धीकरण
भूमिचयन	- निर्माण हेतु भूमि को चुनना
अष्टवर्गबोधकचक्र	- आठ वर्गों के ज्ञान हेतु चक्र
प्रथमाक्षर	- पहला अक्षर
निवासेच्छुक	- निवास की इच्छा वाला
तुल्य	- बराबर
वर्गांक	- वर्गों का अंक
गोलार्ध	- गोल का आधा भाग
क्रमशः	- लगातार
भूमध्य	- पृथ्वी का मध्य भाग
याम्योत्तर	- दक्षिण से उत्तर की ओर
प्रवाहमान	- निरन्तर प्रवाहित होने वाला
नवविध	- नौ प्रकार के
कालमान	- समय की गणना
पूर्वाभिमुख	- पूर्व दिशा की ओर
अहोरात्र	- दिन और रात
विद्यमान	- स्थित

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देश शब्द का अर्थ स्थान है।
2. भूमिशोधन का निर्देश वास्तुशास्त्र करता है।
3. नराकृतिचक्र
4. वृष, मिथुन, सिंह, मकर
5. काकिणी विचार का संबन्ध गृहस्वामी के लिए स्थान के शुभाशुभत्व के लिए है।
6. वर्गों की संख्या आठ है।
7. नाम के वर्गांक का ज्ञान अष्टवर्गबोधकचक्र द्वारा होता है।

8. काकिणी विचार में जिसकी काकिणी अधिक होती है वह ऋणी होता है।
9. काकिणी के समतुल्य होने पर निवास शुभ होता है।
10. विषुवद् वृत्त के सभी बिन्दुओं का अक्षांश शून्य होता है।
11. विषुवद् रेखा से उत्तरी ध्रुव तक का क्षेत्र उत्तरी गोलार्ध कहलाता है।
12. विषुवद् रेखा से दक्षिणी ध्रुव तक का क्षेत्र दक्षिणी गोलार्ध कहलाता है।
13. निरक्ष भूमध्य रेखा का अन्य नाम शून्य अक्षांश रेखा तथा विषुवद् रेखा है।
14. उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक खींची गई रेखाओं को देशान्तर रेखा कहते हैं।
15. शून्य अंश देशान्तर रेखा लंदन के ग्रीनविच वेधशाला से होकर गुजरती है।
16. काल की गणना ज्योतिष शास्त्र द्वारा की जाती है।
17. काल दो प्रकार का होता है। मूर्त एवं अमूर्त।
18. काल की गणना नौ प्रकार से की जाती है।
19. नवविध काल मानों में स्थिर मान नाक्षत्रमान है।
20. चन्द्रमा की गति के आधार पर की गई कालगणना चान्द्रमान कहलाती है।
21. सूर्य और चन्द्रमा के 12 अंश के अन्तर को तिथि कहते है।
22. एक चान्द्रमास पितरों का एक अहोरात्र होता है।
23. नक्षत्रचक्र के दैनिक भ्रमणकाल को एक नाक्षत्रदिन कहते हैं।
24. दो सूर्योदयों के अन्तर को सावन दिन कहते हैं।
25. सूर्य का एक अंश का भोगकाल सौरदिन कहलाता है।
26. गौरवमान का संबन्ध संवत्सर आदि के निर्णय से है।
27. देवताओं से संबन्धित मान को दिव्यमान कहते हैं।
28. प्राजापत्यमान मन्वन्तर व्यवस्था हेतु किया जाता है।
29. ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प के बराबर होता है।
30. भारतीय मानक समय हेतु 82.5^0 अंश पूर्वी देशान्तर रेखा है। यह प्रयागराज के नैनी से होकर गुजरती है।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूमि तथा देश के संबन्धों को विस्तार से बताइये।
2. काकिणी विचार पर एक प्रयोगात्मक लेख लिखें।
3. अक्षांस एवं देशान्तर को स्पष्ट करें।

4. नव विध काल मान पर निबन्ध लिखें।
5. देश एवं काल के संबन्ध को स्पष्ट करें।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बृहद्वास्तुमाला, व्याख्याकार- डॉ.अशोक थपलियाल, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2019
2. वास्तुप्रबोधिनी, डॉ.अशोक थपलियाल, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2011
3. वास्तुसार, डॉ.देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2006
4. सूर्यसिद्धान्त, व्याख्याकार- श्रीकपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सन् 1978
5. राजवल्लभवास्तुशास्त्र, व्याख्याकार- श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2005

इकाई – 4 वर्तमान में वास्तुशास्त्र का स्वरूप

पाठ संरचना

4.4.5.3 होटल अथवा रेस्टोरेन्ट की आन्तरिक व्यवस्था

4.4.5.4कारखानों की आन्तरिक व्यवस्था

4.4.6 द्वार , खिड़की एवं साज-सज्जा

4.5 दोष एवं परिहार

4.6 स्थान भेद से वास्तु स्वरूप

4.7 वास्तुशास्त्र एवं फेगशूई

अभ्यास प्रश्न

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

वास्तु शब्द सुनते ही मानव के मन मस्तिष्क में आवास अर्थात् घर का दृश्य उभरता है। वास्तु का अर्थ भी यही है , प्राणी के रहने का स्थान। वस्तुर्वसतेनिवासकर्मणः। इस संसार में प्रत्येक प्राणी के रहने का स्थान वास्तु ही कहा जाता है। इसी कल्पना को स्वरूप देने का एक जीवन्त प्रयास हमारे आचार्यों ने किया है। जिन्होंने निवास के साथ- साथ , सुख सुविधाओं का भोग करना व धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि के लिए आवास की कल्पना की।[37] ऋषि चिन्तन से यह स्पष्ट होता है कि उनका चिन्तन मानव को केवल आवास प्रदान करने तक ही सीमित नहीं था । अपितु उसके माध्यम से श्रौत एवं स्मार्त्त कर्मों को करने के लिए एक स्थान देना भी था।[38] जिसके माध्यम से समाज को संस्कृति एवं धर्म से जोडे रखना भी प्रमुख कारण था। क्योंकि संस्कृति संस्कार से प्रस्फुटित होती है एवं संस्कार के निर्माण में गृह एवं उसके आसपास का वातावरण एक अहम भूमिका निभाता है। समय चक्र के साथ साथ प्रत्येक प्राणी के जीवन चक्र में भी परिवर्तन देखने को मिलता है जो स्वभाविक भी है। जिसके कारण वास्तु का स्वरूप भी एक नई दिशा एवं दशा को प्राप्त कर रहा है।

वास्तुशास्त्र, हमारे ऋषियों, मुनियों एवं आचार्यों के चिन्तन तथा गहनान्वेषण से बने विशेष नियमों एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। जिसका परिपालन दिग्-देश एवं काल सापेक्ष किया जाना एक अच्छे एवं सुदृढ़ वास्तु के लिए अनिवार्य है। इन्हीं सिद्धान्तों में भौगोलिक परिस्थिति जिसमें भूमि चयन, गृह दिशा, सूर्य स्थिति इत्यादि कई विषयों का समायोजन कर वास्तु की परिकल्पना की जाती है। जिसका एकमात्र उद्देश्य गृहादि वास्तु में निवास करने वाले सभी प्राणियों के सुख-समृद्धि की कामना है। आज के परिप्रेक्ष्य में वास्तु का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह इन नियमों एवं सिद्धान्तों पर कितना सटीक है? इसकी कल्पना तो हम महानगरों एवं ग्रामीण परिवेश के बदलते स्वरूप को देख कर अनुमान लगा सकते हैं। पूर्णतया नियम आधारित वास्तु की कल्पना करना आज के मनुष्य के लिए कठिन भी है तथा कहीं न कहीं उन नियमों का पालन न कर पाना उसकी विवशता भी। ऐसी स्थिति में वास्तुशास्त्र अपनी मूलसंकल्पना में परिवर्तन किए बिना ही देश, काल व परिस्थिति के अनुसार अपना कार्य कर रहा है, जिससे समाज एवं समाजिक जीवन को सकारात्मक बल मिले। इन्हीं सब

[37] बृहद्वास्तुमाला अ 01 .श्लो04.

[38] बृहद्वास्तुमाला परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्त्तक्रियाशुभाः।

बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में वास्तु की संरचना एवं उसके विन्यास के विषय में आप प्रस्तुत ईकाई में अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन से आप-

1. वास्तु के अर्थ एवं परिभाषा को समझने में सक्षम होंगें।
2. वास्तु विन्यास के मुख्य चरणों को प्रयोग करने में समर्थ होंगें।
3. वर्तमान में आवास, व्यवसाय, मन्दिर , जलाशयादि विभिन्न वास्तुओं के स्वरूप को जान सकेंगे।
4. वर्तमान में होने वाले वास्तु दोषों एवं उनके निराकरण में सक्षम होंगें।
5. दिग्, देश एवं काल भेद के अनुसार वास्तु विन्यास में सक्षम हो सकेंगे।
6. वास्तु के प्रमुख सिद्धान्तों का ज्ञान कर उनके अनुपालन में समर्थ हो सकेंगे।

4.3 वास्तु परिचय

वास्तु सभ्यता का अनुमान लगाया जाए तो यह उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता। मानव सभ्यता के साथ ही वास्तु सभ्यता का विकास हुआ है। मानव सभ्यता में परिवर्तन के साथ वास्तु में भी अनेक भेद एवं नूतनता प्राप्त होती है। जिसमें मानव के गुफाओं के निवास से लेकर आज के बहुमंजिले भवनों का अन्तर स्पष्ट होता है। मानव जीवन को सुख सुविधाओं से पूर्ण करने के उद्देश्य से ही इस परिवर्तन के साथ कहीं आधुनिकता तो कहीं उसके साथ दोषों का आगमन भी स्वभाविक हो जाता है। किन्तु प्राचीन सभ्यताओं के सिद्धान्त आज भी इतने परिपुष्ट प्रतीत होते हैं जिसके आधार पर आधुनिक वास्तु का विन्यास भी एक दुरुह कार्य नहीं लगता।

4.3.1 वास्तु शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

'वास्तु' शब्द 'वस् निवासे' धातु से तुण् प्रत्यय के योग होने पर निष्पन्न होता है। वस् धातु वसने के अर्थ में प्रयोग की जाती है जिसका अर्थ निवास करने से होता है। मुनि यास्क के अनुसार वस्तुर्वसतेनिवासकर्मणः अर्थात् प्रत्येक वस्तु का निवास स्थान उसका वास्तु होता है। वस्तु अथवा प्राणी जो जहाँ रहता है उसके वास्तु की संज्ञा दी गई है अर्थात् **यो यत्र निवसति तदेव वास्तु**। गृह, देवालय, भवन, जलाशय आदि को वास्तु कहा गया है। मयमतम् के अनुसार भूमि को मुख्य वास्तु के रूप में स्वीकार किया गया है तथा वस्तु को वास्तु का पर्याय कहा गया है।

4.3.2 वास्तुपुरुष

भवन, देवालय, जलाशय आदि के विन्यास के पूर्व सर्वप्रथम वास्तु पुरुष की कल्पना की जाती है। वास्तु पुरुष वास्तु विन्यास का मुख्य आधार है जिसके बिना आवासीय भवन इत्यादि का समायोजन असम्भव है। वास्तु पुरुष देवताओं से पराभूत एक असुर है, जो ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं द्वारा भूमि में अधोमुख स्थापित किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जब हम देखते हैं तो जो देवता इसके चारों ओर इसको नियन्त्रित करते हैं, वे सकारात्मक शक्ति एवं अधोमुख असुर नकारात्मक शक्ति के रूप में प्रतीत होते हैं। इन्हीं शक्तियों का प्रयोग आज के समय में Energy के नाम से किया जाता है। इसी ऊर्जा को मुख्य आधार बनाकर ही वास्तु की संरचना की जाती है। वास्तुपुरुष की स्थिति को जानने में दिशाओं का मुख्य स्थान है। वास्तुपुरुष सशरीर कल्पित किया जाता है जिसका सिर ईशान कोण में, दाईं भुजा आग्नेय कोण में बाईं भुजा वायव्य कोण में एवं चरण नैऋत्य कोण में स्थित हैं। वास्तु पुरुष की नाभि मध्य में स्थित है जिसको ब्रह्मस्थान में समाहित है। भवन बनाने से पूर्व भूखण्ड में वास्तुपुरुष की आकृति को ध्यान में रखते हुए कक्ष इत्यादि का विन्यास किया जाता है। विन्यास करते समय वास्तुपुरुष के अङ्गों में निर्दिष्ट निर्माण ही वास्तुशास्त्र सम्मत है। निर्माण करते समय वास्तुपुरुष की स्थिति का, दिशा के आधार पर परिज्ञान कर निर्माण करना ही श्रेयस्कर होता है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.01. वास्तु शब्द किस धातु से बना है?

प्र.02. वस्तुर्वसतेनिवासकर्मणः किसका वचन है?

प्र.03. मुख्य वास्तु के रूप में किसे स्वीकार किया गया है?

प्र.04 देवताओं द्वारा किसकी आज्ञा से वास्तुपुरुष को अधोमुख भूमि में गाढ़ा गया?

प्र.05 वास्तुपुरुष की नाभि किस स्थान में समाहित है?

4.2.3 वास्तुपद मण्डल स्वरूप

वास्तुपद मण्डल से अभिप्राय भूखण्ड के वर्गीकरण से है। जिसमें वास्तुपुरुष, दिशा, ग्रह, वास्तुपद के देवता का मुख्य स्थान रहता है। वास्तुपद मण्डल की संरचना वास्तु उद्देश्य से भिन्न-भिन्न होती है। जैसे देवालय निर्माण में 64 पदवास्तु, गृह निर्माण में एकाशीति (81) पदवास्तु, देवालय निर्माण में शतपदवास्तु (100), जीर्णोद्धार में 49 पदवास्तु की संरचना की जाती है। इन मण्डलों में देवताओं की संख्या 45 है। किन्तु संरचना के भेद से पदमण्डल के पदों में न्यूनता या अधिकता होती है। सामान्य भाषा में बात करें तो भूखण्ड के माप के आधार पर उसे विभिन्न पदों के

माप में वर्गीकृत कर मण्डल की संरचना कर देवताओं की स्थिति को ज्ञात किया जाता है। फिर उन्हीं देवताओं के प्रकृति अनुरूप उसमें निर्माण कार्य किया जाता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के रहने या किसी भी प्रकार उपभोग में आने वाला आवासीय, धार्मिक, व्यवसायिक अथवा औद्योगिक भूखण्ड वास्तु कहलाता है। इसी भूखण्ड में भौतिकता के साथ आध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित निर्माण ही सुवास्तु होता है। जिसमें वास्तुपदों को प्रमुख स्थान प्राप्त है। क्योंकि वास्तु पदों में वास्तुपुरुष एवं देवताओं की स्थापन उसकी चैतन्यता को दर्शाता है। पदमण्डल में स्थित देवता स्वयं एक ऊर्जा के अधिकारी होते हैं। जिसमें नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों प्रकार की ऊर्जाओं का समावेश देखने को मिलता है। वहीं वास्तु पुरुष उस भूखण्ड में एक पुरुष के रूप में विद्यमान रहता है अर्थात् एक विशाल ऊर्जा का पुञ्ज जो निरन्तर देवताओं की शक्तियों, ग्रहों एवं दिशाओं के आधार पर नियन्त्रित किया जाता है। इन्हीं सब ऊर्जाओं का समायोजन कर उसे वास योग्य बनाने में वास्तुपदों का निर्माण किया जाता है। वास्तुपद एक से सहस्र पदवास्तु तक कल्पित किए जाते हैं। जिसमें मुख्यतः64, 81, 49 एवं 100 पदवास्तु का विन्यास किया जाता है। जिनका निर्माण विधि एवं उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं।

4.3.3.1 वास्तुपद विन्यास के विविध रूप

वास्तुविद जिस निर्धारित भू-भाग पर पुर या भवनादि का निवेश करता है। उसे आवश्यकतानुसार निश्चित संख्या में वास्तुपदों के आधार पर तत्तद् देवताओं के अधिकारिक क्षेत्र को ज्ञातकर उन स्थानों का कार्य विशेष हेतु विन्यास किया जाता है। वास्तु पदों के आधार पर यह विभाजन निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता-

1. एकाशीति पदवास्तु (81)
2. चतुःषष्टिपदवास्तु (64)
3. शतपदवास्तु (100)

4.3.3.2 एकाशीति(81) पदवास्तु

निवेश योग्य आयताकार या वर्गाकार क्षेत्र को नौ-नौ पदों में विभक्त कर सम्पूर्ण भू-भाग को 81 पदों (वर्गों) में विभाजित करना ही एकाशीति पदवास्तु कहलाता है।[39] एकाशीति(81) पदवास्तु वृत्ताकार, त्रिकोणाकार आदि भी होता है। आयताकार या वर्गाकार क्षेत्र के विभाजन में मध्य के नौ पदों में ब्रह्मा

[39] वही ,76 पृष्ठ ,उद्धृत वास्तुसार .भूमिका पृ ,xli डॉदेवीप्रसाद त्रिपाठी.

की प्रतिष्ठा की जाती है। तत्पश्चात् पूर्व दिशा के छः पदों में अर्यमा की आग्नेय के दो पदों में सवितृ तथा सावित्र नामक दो देवताओं की, दक्षिण के छः पदों में विवस्वान् की, नैऋत्य के दो में जयन्त व इन्द्र की, पश्चिम के छः पदों में मित्र की, वायव्य के दो-दो पदों में राजयक्ष्मा एवं रूद्र की, पश्चिम के छः पदों में मित्र की, उत्तर के छः पदों में शेषनाग की तथा ईशान के दो पदों में आप् एवं आपवत्स नामक देवताओं की स्थापना की जाती है। इस प्रकार वास्तु पदों में देवों की स्थापना कर के उपर्युक्त वास्तुपदों से बाहर प्रदक्षिणा क्रम में ईशान से लेकर ईशान कर 32 देवताओं (अग्नि, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, रवि, सत्य, भृश, नभ, अनिल, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शोष, पापयक्ष्मा, रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, सोम, चरक(भुजङ्ग), अदिति तथा दिति की स्थापना की जाती है। इनमें से जयन्त, भृश, वितथ, भृङ्गराज, सुग्रीव, शोष, मुख्य एवं अदिति की स्थापना दो पदों में तथा अन्यों की स्थापना एक पद में की जाती है।[40] तदुपरान्त जिस कार्य एवं स्थान को जो अधिकारी देवता है। उस स्थान पर वैसे ही भवनादि का निवेश कर कार्य सम्पन्न किया जाता है।

1.3.3.1.2 शतपदवास्तु

निवेश योग्य आयताकार या वर्गाकार भू-क्षेत्र को दश-दश भागों में विभक्त कर सम्पूर्ण भू-भाग को 100 वास्तु पदों में विभाजित करना ही शतपदवास्तु कहलाता है। इस विभाजन में मध्य के 16 पदों में ब्रह्मा तथा उनके बाहर चारों तरफ क्रमशः 08-08 पदों में अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर की पूर्वादि दिशाक्रम से उत्तर पर्यन्त स्थापना की जाती है। 08 देवताओं अग्नि, नभ, अनिल, भृग, क्षम, पापयक्ष्मा, रोग और दिति की क्रम से ईशानादि कोणों में 1½-1½ पदों में स्थापना की जाती है। इसी प्रकार 08 देवों पर्जन्य, भृश, पूषा, भृंगराज, वैवारिक, शोष, नाग एवं अदिति को प्रदक्षिणा क्रम में 02-02 पदों में स्थापित किया जाता है। शेष जयन्तादि 16 देवताओं को पूर्वादि क्रम से एक-एक पद में स्थापित करना चाहिए है।[41] तदुपरान्त ही जिस कार्यस्थान को जो अधिकारी देवता हो उसमें तत्सम्बन्धित भवनादि के निवेश का कार्य सम्पन्न किया जाता है।

1.3.3.1.3 चतुःषष्टि (64)पदवास्तु

निवेश योग्य निर्धारित आयताकार एवं वर्गाकार भू-क्षेत्र को 08-08 पदों में विभक्त कर सम्पूर्ण भू-क्षेत्र को 64 पदों (वर्गों) में विभक्त करना ही चतुःषष्टि पदवास्तु है। इसमें मध्य के 04 पदों में ब्रह्मा तथा उनके चारों दिशाओं में क्रमशः दो-दो पदों में अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर की

---

[40] उद्धृत वास्तुसार .भूमिका पृ,xli डॉत्रिपाठी देवीप्रसाद.

[41] उद्धृत वास्तुसार .भूमिका पृ,xli डॉदेवीप्रसाद त्रिपाठी.

स्थापना की जाती है। तत्पश्चात् कोणों के क्रम से आधे-आधे पदों में 08 देवताओं की स्थापना की जाती है। पर्जन्य से लेकर अदिति पर्यन्त 08 देवताओं (पर्जन्य, भृश, पूषन्, भृङ्ग, दौवारिक, शोष. नाग एवं अदिति) को क्रम से 1½-1½ पदों में स्थापित किया जाता है। बाहर की ओर प्रदक्षिणा क्रम में जयन्त से लेकर चरक तक 16 देवताओं की दो-दो पदों में तथा ईशान आदि चारों कोणों में शेष अग्नि,नभ, अनिल, भृंग, पितृ, पापयक्ष्मा, रोग एवं दिति की स्थापना 1½ पदों में की जाती है। इसके पश्चात् ही जिस कार्य स्थान का जो अधिकारी देवता है उसके स्थान पर तत्सम्बन्धित वास्तु निवेश का कार्य करना चाहिए।[42]

1.3.4 मर्म एवं अतिमर्म स्थान

जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में कालपुरुष की कल्पना कर उसमें राशियों का आधान किया जाता है उसी प्रकार वास्तुशास्त्र में वास्तु पुरुष की कल्पना की गई है। पुरुष से तात्पर्य एक मानव शरीर से है। मानव शरीर के प्रत्येक अङ्ग का दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहता है। त्वचा, मस्तिष्क, हृदय, हड्डी, नाभि जैसे प्रत्येक अङ्ग स्व-विशिष्टता रखते हुए कुछ ठोस व नाज़ुक प्रकृति के होते हैं। उसी तरह वास्तुपुरुष में भी कुछ स्थान नाज़ुक होते हैं। जो मर्म एवं अतिमर्म स्थान कहे जाते हैं। वास्तु निर्माण के समय जिनकी सुरक्षा अति चिन्तनीय होती है व सावधानी पूर्वक निर्माण निर्माण करने का निर्देश है।

वास्तु पुरुष का मुख, हृदय, नाभि, शिर और दोनों स्तन ये छः स्थान मर्म स्थान होते हैं। वास्तु में इन मर्म स्थानों पर कोई भी दीवार, स्तम्भ, बीम, द्वार, खिड़की, खूंटी, स्टोर, नागदन्त या गवाक्ष बनाने का निषेध है। साथ ही इन स्थानों को अपवित्र करने का भी पूर्णतया निषेध है। उपर्युक्त स्थानों में यदि शल्य (भूमि के अन्दर लकड़ी, कोयला, हड्डी इत्यादि) हो तो गृहस्वामी को पीड़ा होता है। इन स्थानों में उपर्युक्त दोष होने पर वास्तुपुरुष के अंग विभाग के अनुसार गृहस्वामी के भी उसी अंग में पीड़ा, चोट या रोग होना निश्चित होता है।

वास्तुमण्डल में निम्न छः रेखाएँ परस्पर जहाँ कटती हैं, वे नौ (9) स्थान महामर्म स्थान होते हैं। ये छः रेखाएँ वास्तुमण्डल में पद देवता के अनुसार निर्मित की जाती हैं-

1. रोग से वायु तक
2. पितर से अग्नि तक
3. वितथ से शोष तक
4. मुख्य से भृश तक

42 वास्तुसार: - भूमिका - प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

5. जयन्त से भृंगराज तक
6. अदिति से सुग्रीव तक

उपर्युक्त में प्रथम व द्वितीय की वंश संज्ञा तथा शेष चारों की रज्जु संज्ञा होती है। परस्पर छेदित इन 9 महामर्म स्थानों को सावधानी से प्रयास करते हुए किसी भी प्रकार से पीड़ित न करने का निर्देश है। इन स्थानों पर खम्भा, कील, पत्थर, अपवित्र स्थान (कूड़ादान,शौचालय,गटर,सैप्टिक टैंक इत्यादि) का निषेध है। इन स्थानों को सुरक्षित रखकर ही शुभ वास्तु की कल्पना की जाती है।

मर्मादि स्थानों का विचार न केवल आवासीय वास्तु अपितु देवालय वास्तु में भी विचारणीय है। आचार्य विश्वकर्मा[43] के अनुसार 64 पदवास्तु में भी मर्म एवं महामर्म स्थानों का विचार अनिवार्य रूप से करना चाहिए।

4.3.5 पदमण्डल में ग्रह एवं दिशाएँ

पदमण्डल के विन्यास का मुख्य आधार दिशाएँ एवं वास्तुपुरुष की स्थिति है। दिशाओं के आधार पर वास्तुपुरुष की स्थिति का विन्यास कर दिशाओं के आधार पर ही देवताओं का विन्यास किया जाता है। देवताओं के विन्यास से अभिप्राय दिशा विशेष में होने से एक दिशा का अधिपत्य किसी एक ग्रह को देना है। उन्हीं देवताओं की प्रकृति एवं ग्रहों के गुण धर्म के आधार पर दिशा विशेष में उनका प्रभाव देखने को मिलता है। जैसे इन्द्र- जयन्त-पर्जन्य इत्यादि पूर्व दिशा के देवता हैं तथा सूर्य पूर्व दिशा के स्वामी[44]। इन्हीं के आधार पर भूखण्ड में प्राप्त होने वाली ऊर्जा का समायोजन किया जाता है।

दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	दक्षिण	नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)
स्वामीग्रह	सूर्य	शुक्र	मंगल	राहु	शनि	चन्द्र	बुध	गुरु

[44] रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः। लघुजातकम्
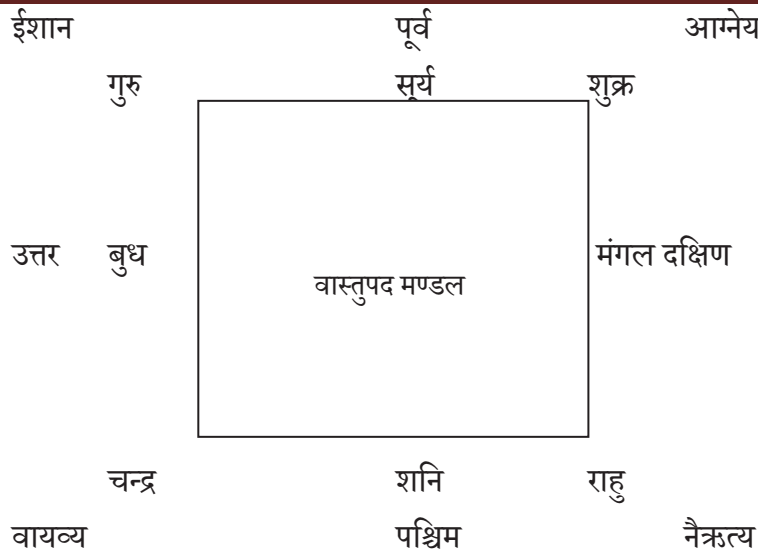
अभ्यास प्रश्न

प्र.06 वास्तुपदमण्डल में देवताओं की संख्या कितनी होती है?

प्र.07 एकाशीति पदवास्तु में ब्रह्मा के पदसंख्या कितनी होती है?

प्र.08 विभिन्न वास्तु पदों का प्रयोजन क्या है?

प्र.09 पदमण्डल में बनने वाले मर्म स्थान कितने होते हैं?

प्र.10 दिशाओं के अधिपति ग्रहों के नाम लिखिए।

4.4 वर्तमान में वास्तु स्वरूप

वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में तत्कालीन समाज के उच्च अभिजात्य वर्ग को ध्यान में रखकर वास्तुनिर्माण विधि का प्रतिपादन किया गया था। सामान्य वर्ग उन्हीं नियमों के अनुसार अपनी आर्थिक स्थिति, आवश्यकता एवं सुविधानुरूप गृहनिर्माण करवाता था। प्राचीन एवं आधुनिक काल में केवल दीर्घ समय का ही अन्तर नहीं है अपितु सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक मूल्यों में, परिस्थितियों में, पारिवारिक व्यवस्थाओं में तथा जीवन शैली में भी बहुत अन्तर स्पष्ट ही संलक्षित होता है। आज विज्ञान के नूतनान्वेषणों से मानव जीवन सुख-सुविधाओं से आकर्षित होता जा रहा है। फलतः वास्तुनिर्माण प्रक्रिया की प्राथमिकताओं एवं प्रविधियों में भी व्यापक अन्तर आ चुका है। आज भवन निर्माण की कई नूतन विधाएँ विकसित हो चुकी हैं। अतः वास्तुशास्त्र को भी आज की

आवश्यकताओं के अनुसार अपने पुराने कलेवर में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है, जो आज के समय की नितान्त आवश्यकता भी है। देश, काल व परिस्थितियों के अनुरूप कुछ लचीलापन वास्तुशास्त्र में भी परिलक्षित होता है। वस्तुतः भारतीय वास्तुशास्त्र पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं है। इसी कारण विभिन्न आचार्यों ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार नए नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा पूर्वोक्त नियमों में युक्तियुक्त परिवर्तन करते हुए अनेकों ग्रन्थों की रचनाएँ कीं। परिवर्तित परिस्थितियों के साथ सामंजस्यता ही भारतीय वास्तुशास्त्र की प्रमुख विशेषता है परन्तु अनुचित एवं अयुक्तियुक्त बदलाव भी शास्त्र की मूलसंकल्पना को ध्वस्त करता है। वस्तुतः मूलसंकल्पना ही शास्त्र की आत्मा होती है जो इसके नियमों एवं सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर होता है। देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार इनमें परिवर्तन होता रहता है परन्तु मूलसंकल्पना अपरिवर्तित रहती है। वर्तमान सन्दर्भ में वास्तुशास्त्र वास्तुनिर्माण योजना में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। आज इस क्षेत्र में नवीन अनुसन्धानों की आवश्यकता है, जिससे इस शास्त्र की आत्मा को क्षति पहुँचाए बिना इसके कलेवर में देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार युक्तियुक्त परिवर्तन होता रहे।

4.4.1 वास्तुशास्त्र के मूलभूत नियम एवं गृहनिर्माण सम्बन्धी चरण

प्रकृति+मानव+पदार्थ = निर्माण। इसी सिद्धान्त के अनुरूप वास्तु निर्माण के सिद्धान्त आचार्यों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। वास्तु निर्माण से पूर्व भूमि, स्थान, भौगोलिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थिति का ध्यान रखते हुए निर्माण करना ही वास्तु निर्माण का मुख्य नियम है। इसके साथ ही निर्माण में प्रयुक्त होने वाले काष्ठ, द्रव्य इत्यादि का वास्तु ग्रन्थों में पर्याप्त प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक काल में काष्ठ के स्थान पर लोहा, एल्यूमीनियम तथा अनेक साज सज्जा के आधुनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। जबकि प्राचीनकाल में पत्थर, ईंट, लकड़ी इत्यादि का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। शास्त्रकारों ने चार प्रकार के मुख्य गृहों का वर्णन किया है। जैसे- झोंपड़ी- लकड़ी के घर- कच्चे घर- पत्थर के घर। इस क्रम में विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का मत परिलक्षित होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो पदार्थ जितना भारी होगा वो उतनी अधिक ऊर्जा के साथ पृथ्वी की ओर आकर्षित होगा। कहने का तात्पर्य है कि जो गृह जितने भारी द्रव्य के साथ बना होगा वह उतना ही स्थिर होगा व उतनी ही अधिक आयु को प्राप्त करेगा। वास्तुशास्त्र में इसी क्रम में बने गृहों का फल भी उत्तरोत्तर अधिक कहा है-

कोटिघ्ने तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
इष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे।।[45]

वास्तुनिर्माण सम्बन्धी विभिन्न चरण हैं। जिसमें भूमि परीक्षण (Soil test), पदविन्यास (Marking), द्वारविन्यास (Main Door) एवं निर्माण कार्य (Construction) प्रमुख हैं। आधुनिक समय में निर्माण द्रव्य का अधिक प्रयोग व साज-सज्जा को ध्यान में रखते हुए अनेक ऐसे द्रव्य हैं जो दिशा अनुकूल न हों तो वास्तु को दुष्प्रभावित करते हैं। विभिन्न निर्माण कार्य चाहे वो गृह हो, देवालय, नगर, ग्राम, राजधानी, जलाशय, वाटिका हो समस्त वास्तु निर्माण के कुछ मूलभूत नियम एवं सिद्धान्त होते हैं जिनका प्रयोग करना अनिवार्य होता है।

4.4.2 वास्तु भेद

वास्तुशास्त्र के मुख्य तीन भेद प्राप्त होते हैं। 1. आवासीय वास्तु 2. धार्मिक वास्तु 3. व्यावसायिक वास्तु। तीनों भेदों का वर्णन प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। आवासीय वास्तु के मुख्य सिद्धान्तों के विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, धार्मिक वास्तु के मण्डन द्वारा रचित प्रासादमण्डनम् एवं व्यावसायिक वास्तु के सन्दर्भ में मयमयतम् के अध्यायों में राजधानी तथा नगर विन्यास के प्रकरण में दुकान, व्यापार के लिए पत्तन इत्यादि के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में भी यही भेद प्रभेदानुसार अनेक शाखाओं में विभक्त हैं। जैसे आवास के लिए घर, बंगला, हवेली, फ्लैट, कॉलोनी धार्मिक वास्तु में देवालय, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा व्यवसाय वास्तु में दुकान, शोरूम, मॉल इत्यादि भेद देखने को मिलते हैं। इन सभी निर्माणों में वास्तुशास्त्रीय निर्माण हेतु यह शास्त्र आज भी उतना ही प्रासङ्गिक है जितना प्राचीनकाल की सभ्यताओं में । सर्वविदित है कि मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा संस्कृति समुन्नत थीं। वास्तुशास्त्र के नगर निर्माण योजना के अनेकों उदाहरण इन सभ्यताओं में परिलक्षित होते हैं। आज का समाज भी इन्हीं सिद्धान्तों का परिपालन कर समृद्ध हो यही वास्तुशास्त्र का प्रयास रहा है।

[45] बृहद्वास्तुमाला अध्याय -5 श्लोक 1
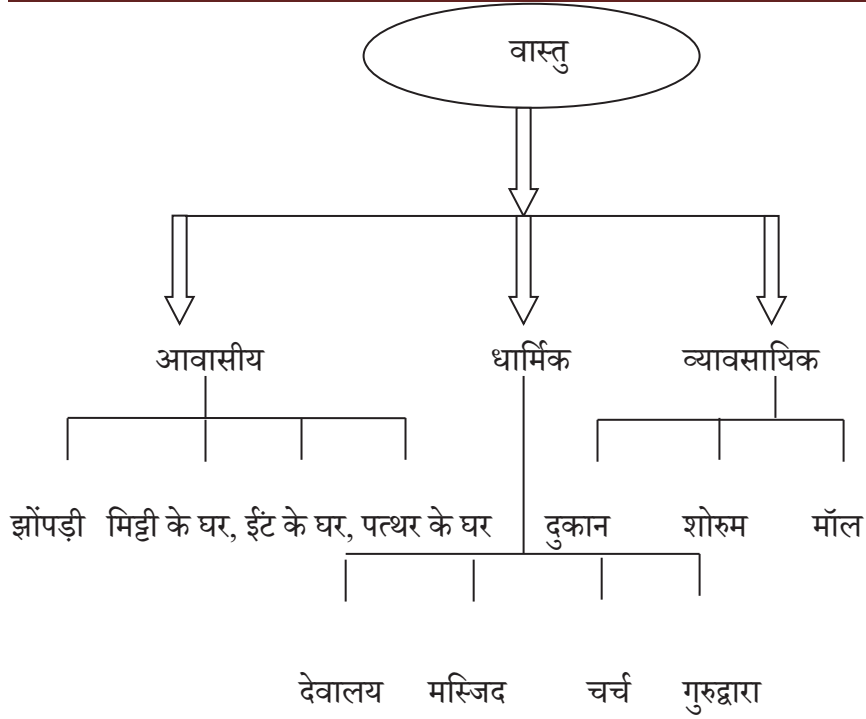
अभ्यास प्रश्न

प्र.11. वास्तुशास्त्र में आवास हेतु कौन-कौन से घरों का वर्णन मिलता है?

प्र.12. आवासीय वास्तु में प्रभेदानुसार कौन-कौन से घर वर्तमान में बनाए जाते हैं?

प्र.13. व्यावसायिक वास्तु के मुख्य तीन भेदों के नाम लिखिए।

प्र.14. वास्तुशास्त्र में आधुनिकविज्ञान का कौन सा सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है?

प्र.15. देवालयनिर्माण हेतु कितने पदवास्तु का प्रयोग किया जाता है?

4.4.3 आवासीय वास्तु का स्वरूप

वास्तुभेदों से आवासीय वास्तु के मुख्य चार भेद प्राप्त होते हैं। जिनमें झोंपड़ी, मिट्टी के कच्चे घर, ईंट के व पत्थर के घर होते हैं। आजकल प्रायः पक्के घरों का ही प्रचलन देखने को मिलता है। जिनमें बंग्ला, हवेली, फ्लैट, बहुमंजिले भवन आज के समय की भरपूर मांग है। इनके विन्यास में भी वही सिद्धान्त लागू होते हैं जो एक झोंपड़ी अथवा एक महल में। वास्तुशास्त्र का शाश्वत नियम है कि जो सिद्धान्त एक कक्ष में प्रयोग होगा वही एक भवन अथवा एक नगर में। इन्हीं

सिद्धान्तों का परिपालन कर आज के समय में वास्तु के विविध स्वरूप होते हुए भी मानव सुख-सुविधा को केन्द्र में रख कर निर्माण कार्य किया जाता है। जिसमें वास्तुशास्त्रीय नियमों का होना नितान्त आवश्यक है। आवास योजना से पूर्व वास्तु के कुछ नियमों का ज्ञान होना भी आवश्यक है जिनमें दिशा, सौर शक्ति, चुम्बकीय शक्ति, गुरुत्व शक्ति एवं पञ्चतत्त्वों का समायोजन है। इन्हीं सब विषयों को एक साथ समाहित कर भूखण्ड की आकृति के आधार पर इनका प्रयोग करना ही सुवास्तु का उदाहरण हो सकता है। जिसे आधुनिक भाषा में Vastu Management कहा जाता है।

4.4.3.1 जलनिर्धारण

गृह में जल का संग्रहण कूप, टंकी या भूमिगत जल के रूप में प्रायः देखने को मिलता है। आजकल भूमिगत जल को अधिक महत्त्व दिया जाता है। साथ ही नित्य की आश्यकता को पूरा करने के लिए पानी की टंकियों का प्रयोग घर की छतों पर देखने को मिलता है। वास्तुशास्त्र में जल संग्रहण हेतु वास्तुशास्त्र में पूर्व, उत्तर एवं ईशान दिशा मुख्य है। अन्य दिशाओं में जल विन्यास करने से विभिन्न फल देखने को मिलते हैं। जल विन्यास में कूप से तात्पर्य भूमिगत जल से अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। आजकल प्रायः फ्लैट, कॉलोनी इत्यादि में जल हेतु बोरिंग की व्यवस्था की जाती है। इसी व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इसका वास्तुशास्त्रीय निर्धारण भी आवश्यक हो जाता है। जिससे आवास में जल तत्त्व की उत्तम व्यवस्था के साथ उसका लाभ भी आवास में रहने वालों के लिए प्राप्त हो सके। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में जल निर्धारण हेतु आठ दिशाओं में से मुख्य तीन दिशाओं में ही शुभ फल प्राप्त होता है[46]-

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
फल	ऐश्वर्यवृद्धि	पुत्रनाश	स्त्रीनाश	मरण	सम्पत्	शत्रुपीड़ा	सुख	पुष्टि	धनहानि

जल विन्यास से केवल भूमिगत जल ही नहीं अपितु जल की निकासी, सैप्टिक टैंक इत्यादि हेतु भी दिशा का निर्धारण किया गया है। जिसमें पश्चिम को भी प्रशस्त कहा गया है। जल संरक्षण व नित्य प्रयोग हेतु टंकी का स्थान वायव्यपश्चिम या पश्चिम में निर्धारित किया जा सकता है।

[46] बृहद्वास्तुमाला दकार्गलाध्याय श्लोक   ,112
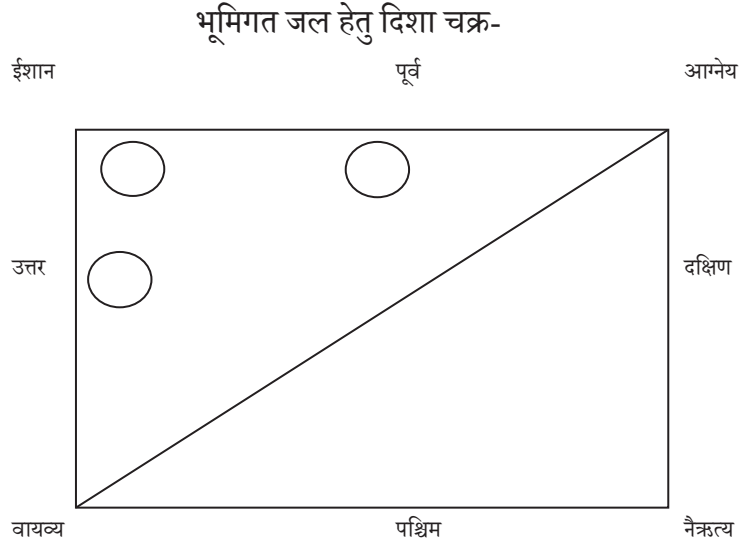
भूमिगत जल हेतु दिशा चक्र-

अतः कूप , नलकूप एवं भूमिगत जलाशय का निर्माण भूखण्ड के ईशान कोण, पूर्व, पश्चिम या उत्तर भाग में करना चाहिए। वास्तुशास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि भवन का दक्षिण-पश्चिम भाग सदैव उन्नत होना चाहिए और उत्तर-पूर्व भाग नीचा इसीलिए ईशान कोण, उत्तर एवं पूर्व में जलाशय शुभ होता है।[47]

ध्यातव्य बिन्दु[48]-

1. सैप्टिक टैंक मकान की दीवार, नींव या चार दीवारी से सटाकर नहीं बनाना चाहिए।
2. यदि मकान में बेसमेन्ट (तलघर) हो तो उससे सैप्टिक टैंक का अन्तर कम से कम तीन हाथ रखना चाहिए।
3. सैप्टिक टैंक की लम्बाई पूर्व-पश्चिम में अधिक व दक्षिण-उत्तर में कम होनी चाहिए।
4. सैप्टिक टैंक की ऊँचाई भूमि के तल तक होना चाहिए न कि प्लिन्थ लेबल तक।
5. इसकी नाली उत्तर या पश्चिम की ओर रखनी चाहिए।

4.4.3.2 आवासीय वास्तु

आवासीय वास्तु हेतु शास्त्रकारों ने सोलह मुख्य कक्षों का निर्देश किया है।[49] जिसमें पूर्व दिशा में श्रीगृह अर्थात् लक्ष्मी निधि स्थान, आग्नेय कोण में रसोई घर, दक्षिण में शयन कक्ष, नैऋत्य

---

47 भारतीयवास्तुशास्त्र पृष्ठ ,108राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली।
48 भारतीयवास्तुशास्त्र पृष्ठ ,110राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली।

में शस्त्रागार, पश्चिम में भोजन स्थान, वायव्य में धनसंचय, उत्तर में कोषस्थान, ईशान में पूजागृह, पूर्व आग्नेय के मध्य में दधिमंथन, दक्षिण-आग्नेय के मध्य घृत भण्डार, दक्षिण-नैऋत्य के मध्य शौचालय, नैऋत्य-पश्चिम के मध्य अध्ययन कक्ष, पश्चिम-वायव्य के मध्य रोदनगृह, वायव्य-उत्तर के मध्य रतिगृह, उत्तर- ईशान के मध्य औषधि कक्ष, ईशान – पूर्व के मध्य सर्ववस्तु सङ्ग्रह कक्ष निर्माण शास्त्र निर्दिष्ट है। आधुनिक युग में इन कक्षों निर्माण में स्थान का अभाव होने से शत-प्रतिशत शास्त्र निर्दिष्ट निर्माण करना एक कठिन कार्य है। फिर भी शास्त्र का अनुसरण करते हुए निर्माण कार्य को पूरा करने के लिए कुछ वैकल्पिक दिशाओं का निर्देश भी प्राप्त होता है[50]-

क्र.	कक्ष	निर्धारित दिशा	वैकल्पिक दिशा
1.	पूजाकक्ष	ईशान कोण (उत्तर-पूर्व)	ईशान-पूर्व के मध्य, पूर्व, ईशान उत्तर के मध्य, उत्तर
2.	रसोईगृह	आग्नेय (पूर्व-दक्षिण)	आग्नेय दक्षिण के मध्य, आग्नेय-पूर्व के मध्य, वायव्य उत्तर के मध्य
3.	शयन कक्ष	दक्षिण	आग्नेय-दक्षिण के मध्य,नैऋत्य-दक्षिण के मध्य, पश्चिम-नैर्ऋत्य के मध्य, वायव्य-उत्तर के मध्य
4.	भोजनकक्ष	पश्चिम	आग्नेय-दक्षिण के मध्य, पश्चिम-वायव्य के मध्य, वायव्य, उत्तर- वायव्य के मध्य
5.	भण्डारकक्ष (स्टोर)	नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	दक्षिण-आग्नेय के मध्य,वायव्य, दक्षिण-नैऋत्य के मध्य, पश्चिम
6.	स्नानगृह	पूर्व	पूर्व-आग्नेय के मध्य, ईशान-पूर्व के मध्य, पश्चिम
7.	शौचालय	नैर्ऋत्य-दक्षिण	ईशान, आग्नेय, पूर्व एवं भवन के मध्य को छोड़कर अन्य दिशाओं में
8.	अतिथिकक्ष (ड्राईंगरूम)	पूर्व के मध्य	ईशान-पूर्व के मध्य, आग्नेय-दक्षिण, पश्चिम-वायव्य के मध्य,वायव्य-उत्तर के मध्य, उत्तर, आग्नेय
9.	बरामदा	पूर्व एवं उत्तर	ईशान, उत्तर- ईशान के मध्य
10.	अध्ययन कक्ष	पश्चिम- नैर्ऋत्य के मध्य	वायव्य- उत्तर के मध्य

[49] बृहद्वास्तुमाला श्लोक 155-149

[50] वास्तुप्रबोधिनी पृष्ठ 119

आवासीय भवन में जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा आकाश तत्त्वों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जिसके लिए तत्तत् कार्य हेतु प्रयोग होने वाले उपकरणों हेतु दिशाओं का निर्धारण किया जाता है। जैसे- गृह में उत्तम वायु संचार हेतु पूर्व एवं उत्तर भाग को अधिक खुला रखना चाहिए। जिससे गृह में हवा का संचरण अबाध रूप से होता रहे। पूर्व, उत्तर एवं वायव्य में दक्षिण , नैर्ऋत्य, पश्चिम एवं आग्नेय की अपेक्षा अधिक गवाक्षों एवं खिड़कियों का प्रयोग करना चाहिए। भवन के उत्तर, पूर्व में भूमि का झुकाव शुभ होता है जबकि दक्षिण एवं पश्चिम में भूमि अपेक्षाकृत ऊँची होना शुभ है।

4.4.3.3 भूमि एवं भवन प्रकार

आवासीय वास्तु हेतु सर्वप्रथम भूमि का चयन किया जाता है, जिसमें भूमि परीक्षण (Soil test) कर ही उसे निवास योग्य है या नहीं निश्चित किया जाता है। भूमि परीक्षण की अनेक वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग आज प्रयोगशालाओं में देखने को मिलता है। वास्तुशास्त्र में भूमि परीक्षण की अनेक विधियों[51] का प्रयोग निर्दिष्ट है, जिसमें एक या एक से अधिक विधि का प्रयोग कर भूमि का परीक्षण कर निर्माण कार्य किया जाता है। शल्य, दीमक, खोखली, भुरभुरी, कांटों से युक्त, झाड़ियों वाली, कारखाने के समीप, मन्दिर के समीप, न्यायालय, अस्पताल इत्यादि के निकट की भूमि में निर्माण कार्य निषेध कहा गया है। मयमतम् के अनुसार भूमि ही मुख्य वास्तु के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि समस्त वास्तु का निर्माण भूमि के ऊपर ही सम्भव है जिससे इसे मुख्य वास्तु की संज्ञा प्राप्त है। साथ ही इसके गुण, धर्म, रस, स्वाद, रंग, आकृति के अनुसार भी परीक्षित किया जाता है।

भवनों को आकृति के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया है। मुख्यतः चार प्रकार के भवन होते हैं जिनके मुख पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तरमुखी होते हैं। इनकी आकृति के आधार पर C, E, O, I, D अथवा L प्रकार में वर्गीकृत किया गया है, जिन्हें वास्तुशास्त्र में शालाविधान[52] के नाम से उद्धृत किया जाता है।

4.4.3.4 हवेली/बैंग्लो

बड़े घर को हवेली कहते हैं। हवेली की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित है। इन हवेलियों के मध्य में आँगन और चारों तरफ भिन्न-भिन्न प्रकार के कक्षों का निर्माण होता था। इस प्रकार की

[51] बृहद्वास्तुमाला श्लो 103-99.डॉपब्लिकेशन नई दिल्ली। अशोकथपलियाल अमर ग्रन्थ.

[52] वास्तुशास्त्रसार

हवेलियाँ प्रायः भारत के सभी स्थानों में देखने को मिलती हैं। इन हवेलियों में एक मुख्य द्वार होता था तथा मध्य का भाग खाली अथवा खुला स्थान होता था। जिसे वास्तुशास्त्र में ब्रह्मस्थान कहा जाता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार ब्रह्मस्थान में निर्माण कार्य करना निषिद्ध है क्योंकि यह वास्तु के अतिमर्म स्थान में आता है। इसके चारों ओर बने कक्ष विभिन्न कार्यों के अनुसार निष्पादित होते थे जो कि पूर्व में कथित कक्ष विन्यास से स्पष्ट होता है।

बैंग्लो भी हवेली का ही एक रूप है जिसमें आँगन की कल्पना नहीं की जाती है। किन्तु दिशाओं के आधार पर ही उसमें कक्षों का विन्यास किया जाता है। साथ ही ब्रह्मस्थान को विशेष महत्त्व दिया जाता है। आज प्रायः यह परम्पराएँ लुप्त सी हो गईं हैं जिसका मुख्य कारण भूमि का अभाव है। किन्तु राजबाड़ों में आज भी ऐसे निर्माण कार्य देखने को मिलते हैं जिसमें जयपुर शहर का नाम सबसे ऊपर आता है। वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से जब हम प्राचीन गृहादि का अध्ययन करते हैं तो वास्तुशास्त्र के नियम एवं सिद्धान्त स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

4.4.3.5 फ्लैट एवं कॉलोनी

फ्लैट शब्द अंग्रेजी भाषा का है। जो स्वतन्त्र भारत के बाद ही उपयोग किया जाने लगा है। इससे पूर्व फ्लैट शब्द का प्रयोग नहीं था। क्योंकि जिस प्रकार का आकार प्रकार इन भवनों में पाया जाता है वह भूमि की कमी की ओर संकेत करता है। साथ ही तेजी से होता शहरीकरण भी इसका मुख्य कारण है। ग्रामीण परिवेश में बनने वाले भवन आज भी गृह, घर इत्यादि नाम से ही जाने जाते हैं। निवास के उद्देश्य से इन सब में वास्तुशास्त्र की अहम भूमिका रहती है। आवास चाहे ग्राम में हो या शहर में, वास्तुशास्त्र में निर्दिष्ट नियम नितान्त आवश्यक हैं।

आधुनिक युग में भवन निर्माण योग्य भूमि का तेजी से अभाव होता जा रहा है। प्रायः मनुष्य ग्राम, कस्वे एवं छोटे नगरों से महानगरों की ओर आजीविका हेतु पलायन कर रहे हैं। फलस्वरूप आवासीय समस्या के समाधान हेतु बहुमंजिले भवनों का निर्माण किया जा रहा है। देश काल परिस्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार के तलयुक्त भवनों का निर्माण हो रहा है। इन सभी भवनों में वास्तुशास्त्र के नियमों का संयोजन एक चुनौतीपूर्ण कार्य भी है। वास्तुशास्त्र के मानकग्रन्थों में भी विभिन्न तलयुक्त भवनों के निर्माण हेतु निर्देश प्राप्त होते हैं। राजभवनों में बनने वाले अनेक तल युक्त भवन इसका उदाहरण हैं। देश काल परिस्थित एवं वातावरण को ध्यान में रखते हुए इन भवनों में भी वास्तुशास्त्रोक्त नियमों का परिपालन हो, इस हेतु कुछ नियम ध्यातव्य हैं-

1. फ्लैट्स या कॉलोनी निर्माण हेतु भूमि का चयन करते समय भवननिर्माण के चारों तरफ खुली एवं विस्तृत भूमि होना आवश्यक है। जिसमें दक्षिण-पश्चिम की अपेक्षा पूर्व-उत्तर अधिक खुला हो।
2. भवन निर्माण हेतु भूखण्ड का आकार वर्गाकार या आयताकार होना उत्तम है। सिंहमुखी, चक्राकार, दण्डाकार भूखण्ड वास्तु निर्माण हेतु सर्वथा वर्जित है।
3. भूमि के अन्दर हड्डी, भूसा, कोयला, राख, दीमक, होना अशुभ है। भूमि परीक्षण के समय यह ध्यातव्य होना चाहिए कि निर्माण कार्य हेतु प्रयोग में लाए जाने वाली भूमि दोषरहित हो।
4. भूमि की ढलान सदैव पूर्व, उत्तर या ईशान की तरफ होनी चाहिए। वस्तुतः आजकल होने वाले निर्माण कार्य से पूर्व ही भूमि को समतल किया जाता है फिर भी भूमि का झुकाव, इन दिशाओं में होने से चुम्बकीय प्रभाव एवं सौरशक्ति का सकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है।
5. भवन निर्माण करते समय भूकम्परोधी विधि का प्रयोग करना चाहिए। भूमि की नींव में अधिक शक्तियुक्त द्रव्य का प्रयोग व तल निर्माण में नीचे के तल की अपेक्षा ऊपर के तल का मान (लम्बाई-चौड़ाई) कम होना चाहिए।
6. स्तम्भ का निर्माण 90 डिग्री पर होना चाहिए। स्तम्भ निर्माण में कंकरीट व सरिया का प्रयोग भवन की आकृति के अनुसार ही होना चाहिए। स्तम्भ निर्माण में अधिक द्रव्य का प्रयोग करना भी वास्तुशास्त्र के नियम विरुद्ध है।
7. भवन के आग्नेय कोण में रसोई घर का निर्माण शुभ होता है। आग्नेय कोण अग्नि तत्त्व से भरपूर रहता है, जिसके अधिपति ग्रह शुक्र हैं। इस कोण में अग्नि सम्बन्धी पदार्थ रखना, विद्युत उपकरण, जनरेटर, बिजली का मीटर लगाना शुभ होता है।
8. दक्षिण दिशा में शयन कक्ष का निर्माण करना व कक्ष के भीत्तर दक्षिण एवं पश्चिम की दीवार के साथ अधिक भारी द्रव्य रखना शुभ होता है। पूर्व, उत्तर एवं ईशान में यथा सम्भव हल्की वस्तुओं का स्थापन करना चाहिए।
9. भवन के बाहर उत्तर दिशा में बॉल्कनी या पौधारोपण करना शुभ है। दूधदार अथवा कंटीले पौधों का रोपण घर के समीप सर्वथा वर्जित है।

10. घर के मध्य भाग को यथासम्भव खाली रखना चाहिए। उत्तर एवं पूर्व में अधिक गवाक्ष का प्रयोग सौर ऊर्जा वं चुम्बकीय प्रभाव को संतुलित करता है। साथ ही वायु का संचरण निर्बाध रूप से होता है। जिससे भवन में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर बना रहता है।

वास्तुशास्त्र में भवन इत्यादि निर्माण हेतु प्राप्त निर्देशों का पालन, मानव की सुख-सुविधाओं में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपनी भूमिका निभाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

प्र.16. आवासीयवास्तु में रसोई घर किस दिशा में बनाना चाहिए?

प्र.17. भूमिगत जल के विन्यास हेतु कौन-कौन सी दिशाएँ प्रशस्त हैं?

प्र.18. अध्ययन कक्ष का विन्यास कौन सी दिशा में करना चाहिए?

प्र.19. कौन सी प्राकृतिक शक्तियाँ वास्तु को प्रभावित करती हैं?

प्र.20. भूखण्ड का प्लव किन दिशाओं में शुभ होता है?

4.4.4. धार्मिक एवं व्यवसायिक वास्तु

धार्मिक वास्तु से अभिप्राय धर्म विशेष हेतु होने वाले निर्माण कार्य से है। इसमें 64 पदवास्तु का विन्यास कर वास्तु निर्माण किया जाता है। धार्मिक वास्तु में मुख्य रूप से देवालय वास्तु के विषय में सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। देवालय निर्माण के सन्दर्भ में प्रासादमण्डनम् एवं मयमतम् मुख्य आधार ग्रन्थ हैं। देवालय का स्वरूप एवं शैलियों का चिन्तन उनका विकास इन्हीं में प्राप्त होता है। मुख्यतः नागर, द्राविड़ एवं बेसर शैलियों के देवालय भारतवर्ष में देखने को मिलते हैं। देवालय निर्माण वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों पर ही आधारित है। जिसमें देवालय को शरीर व उसमें स्थापित मूर्ति को उस शरीर की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है।

धार्मिक वास्तु हेतु वास्तुशास्त्र में निर्माण सम्बन्धी मुख्य नियम निम्नलिखित हैं[53]-

1. धार्मिक वास्तु पवित्र नदी या सरोवर के निकट, पर्वतों पर, उद्यान के निकट बनाना चाहिए।
2. देवालय चतुषष्टि पदवास्तु के विन्यास में बनाना चाहिए। इसके चारों दिशाओं में द्वार, ईशान में गर्भगृह, नैर्ऋत्य में मुख्य द्वार अथवा गोपुर का निर्माण करना चाहिए।

---

[53] वास्तुप्रबोधिनी पृष्ठ 126

3. देवालय हेतु ब्राह्मणी भूमि प्रशस्त होती है। इसके निर्माण के लिए वर्गाकार अथवा आयताकार , वृत्ताकार, षडभुजाकार या अष्टभुजाकार भूमि का ग्रहण करना चाहिए।
4. गर्भगृह के प्रमाण के बराबर गर्भगृह के बांयी अथवा दाईं ओर कक्ष बनाए जा सकते हैं। मुख्य मण्डप का निर्माण गर्भगृह से तीन गुणा अधिक प्रमाण तक हो सकता है।
5. गर्भगृह से दोगुनी अथवा चारगुनी देवालय की ऊँचाई शुभ होती है। गर्भगृह के चौथाई मान के बराबर देवालय के द्वार का निर्माण करना प्रशस्त है।
6. द्वार के प्रमाण में से उसका अष्टमांश घटाने से प्राप्त मान की प्रतिमा देवालय में स्थापित करनी चाहिए।
7. मन्दिर में ब्रह्मा, विष्णु व महेश की प्रतिमा किसी भी दिशा के अभिमुख स्थापित कर सकते हैं। सूर्य, इन्द्र व कार्तिकेय की प्रतिमा पूर्व या पश्चिमाभिमुख, गणेश, कुबेर, भैरव, चामुण्डा व देवी की प्रतिमाएँ दक्षिणाभिमुख एवं हनुमान जी की प्रतिमा नैऋत्याभिमुख स्थापित करनी चाहिए। अन्य सम्प्रदायावलम्बियों को अपने धार्मिक स्थल में सम्प्रदायानुसार वास्तु का विचार कर निर्माण करना चाहिए।

4.4.5 व्यावसायिक वास्तु[54]

व्यावसायिक वास्तु का निर्माण भी आवासीय वास्तु के मूल सिद्धान्तों पर ही निर्मित किया जाता है। सर्वप्रथम भूखण्ड चयन, भूमि परीक्षण, भू-प्लव, वेध, द्वार आदि का विचार कर ही व्यावसायिक वास्तु का निर्माण किया जाता है। वास्तुशास्त्र में सिंहमुखी भूखण्ड को व्यवसाय के लिए उत्तम कहा गया है। इसमें व्यवसाय करने वाला एवं ग्राहक दोनों को केन्द्र मानकर वास्तु के मूलसिद्धान्तों को दिशानुसार लागू किया जाता है। जिसमें कुछ मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. व्यावसायिक भवन में मुख्यतः दुकान, शोरूम एवं मॉल, भण्डार गृह (Store Room) को मुख्य रूप से देखा जाता है। इनके निर्माण में वर्गाकार, आयताकार अथवा सिंहमुखी भूखण्ड श्रेष्ठ होता है।

आयताकार

वर्गाकार

सिंहमुखी

54 वास्तुप्रबोधिनी पृष्ठ 121
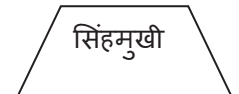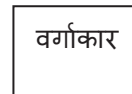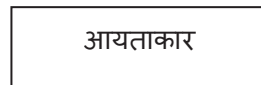
2. भूखण्ड के पूर्व या उत्तर में सड़क होना श्रेष्ठ है। भूखण्ड के दोनों ओर मार्ग भी शुभ है। भूखण्ड के दक्षिण दिशा में द्वार वास्तुशास्त्र में प्रायः शुभ नहीं कहा है। भवन का द्वार पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होना चाहिए। अन्य दिशाओं में द्वार साधारण व आग्नेय , वायव्य कोणों में द्वार अशुभ होता है।
3. भूखण्ड चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि नैर्ऋत्य एवं दक्षिण का स्थान ऊँचा व ईशान नीचा हो।
4. ईशान कोण खुला रखना चाहिए व ईशान में किसी भी प्रकार का निर्माण नहीं करना चाहिए।
5. विद्युत यन्त्रों का प्रयोग जैसे जरनेटर, बिजली का मीटर, स्विचबोर्ड, पैन्ट्री या रसोई आग्नेय कोण में स्थापित करने चाहिए।
6. सार्वजनिक सुविधाओं हेतु शौचालय नैऋत्य दक्षिण के बीच बनाना श्रेष्ठ होता है। वैकल्पिक स्थिति में पश्चिम में भी शौचालय का निर्माण किया जा सकता है।
7. भवन का मध्य भाग खाली रखना चाहिए। अतः इस स्थान में किसी भी प्रकार का निर्माण सर्वथा वर्जित है। इस स्थान पर औषधियुक्त पौधा लगाया जा सकता है।
8. मुख्य व्यक्ति का कक्ष अथवा बैठने का स्थान नैर्ऋत्य अथवा पश्चिम में होना शुभ है। जिससे उसका मुख सदैव ईशान या पूर्व की ओर रहे।

4.4.5.1 दुकान, शोरूम इत्यादि की आन्तरिक सज्जा

1. अल्मारियों, शोकेस, रैक, इत्यादि भारी सामग्री दक्षिण अथवा पश्चिम में , विक्रय की वस्तुएँ काउँटर इत्यादि पश्चिम या वायव्य में रखना श्रेष्ठ है।
2. ईशान कोण को खाली रखना चाहिए तथा उस स्थान पर पूजागृह का निर्माण करना चाहिए।
3. काऊँटर पर खड़े व्यक्ति का मुख पूर्व या उत्तर की ओर तथा ग्राहक का मुख दक्षिण या पश्चिम की ओर होना चाहिए।
4. तिजोरी अथवा धन रखने का स्थान दक्षिण या पश्चिम की दीवार के सहारे होना चाहिए।
5. प्रवेश द्वार पूर्व या उत्तर की ओर बनाना श्रेष्ठ होता है।

4.4.5.2 कार्यालय की आन्तरिक व्यवस्था

1. कैशियर, लेखा विभाग के कर्मचारियों का स्थान उत्तर की ओर तथा बाहरी कर्मचारियों. सेल्समेन,एजेन्ट, पत्रवाहक, निरीक्षक इत्यादि को बैठाने का स्थान वायव्य में होना चाहिए।
2. अधीनस्थ कर्मचारियों के बैठने का स्थान अधिकारी के केबिन के पास दक्षिण एवं पश्चिम के पद के क्रमानुसार होना चाहिए।
3. कार्यालय द्वार के सामने अन्य कार्यालय का द्वार. टेलिफोन बूथ, कैन्टीन इत्यादि नहीं होनी चाहिए।

4.4.5.3 होटल अथवा रेस्टोरेन्ट की आन्तरिक व्यवस्था

1. होटल में यात्रियों के निवास कक्ष पश्चिम और दक्षिण की ओर बनाने चाहिए। कक्षों का द्वार पूर्व या उत्तर की ओर खुलने वाला होना चाहिए।
2. रसोई आग्नेय कोण एवं भोजन कक्ष दक्षिण या पश्चिम में शुभ होता है।
3. स्वीमिंग पूल पश्चिम, पूर्व या उत्तर में. भूमिगत जल का स्थान ईशान व ओवरहैड टैंक वायव्य या पश्चिम में बनाने से लाभ होता है।
4. स्वागत कक्ष प्रवेश द्वार के निकट दक्षिण दिशा में बनाना चाहिए । इसके निर्माण की स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि स्वागतकर्त्ता का मुख उत्तर या पूर्व तथा आगन्तुक का मुख दक्षिण या पश्चिम में रहे।
5. जलपान का कक्ष दक्षिण या पश्चिम और कैशकाउण्टर पूर्व या उत्तराभिमुख होना चाहिए।

4.4.5.4 कारखानों की आन्तरिक व्यवस्था

1. कारखाने का मुख्य द्वार पूर्व या उत्तर में उत्तम होता है। परन्तु आग्नेय, वायव्य एवं नैर्ऋत्य में द्वार वर्जित है।
2. मुख्य भवन या कार्यशाला (workshop) दक्षिण, पश्चिम भाग में बनाना शुभ है।
3. कच्चे माल का गोदाम नैर्ऋत्य में तथा तैयार माल का सङ्ग्रह वायव्य में करना चाहिए। पैकिंग यूनिट पूर्व या उत्तर में बनाना शुभ होता है।
4. प्रशासनिक इकाई दक्षिण , पश्चिम में तथा कर्मचारियों के आवास पश्चिम. उत्तर या दक्षिण में बनाने चाहिए।

4.4.6 द्वार , खिड़की एवं साज-सज्जा

व्यावसायिक वास्तु में अथवा आवासीय वास्तु में 81 पदवास्तु का विन्यास किया जाता है। इसमें भवन के मान (लम्बाई-चौड़ाई) के अनुसार दक्षिण से पाँच व उत्तर से तीन भाग छोड़कर मध्य के एक भाग में द्वार की स्थापना करनी चाहिए।

खिड़कियों हेतु पूर्व व उत्तर दिशा शुभ होती है। इन दिशाओं में खिड़की व गवाक्ष का निर्माण करने से भवन में वायु का संचरण उत्तम रूप से बना रहता है।

साज सज्जा हेतु दीवारों का रंग व कक्षों में प्रयोग किए जाने वाले चित्रों का प्रयोग प्रमुख है। भवन के पूर्व की दीवारों पर पीला, सफेद दक्षिण में नीला, काला भूरा या कोई गहरा रंग, पश्चिम में धुंधला रंग का प्रयोग करना चाहिए। दीवारों के ऊपर शुभ वैदिक चिह्नों जैसे स्वस्तिक , गणेश का चित्र, उगते हुए सूर्य का चित्र व सौम्य प्रकृति के देवी देवताओं के चित्रों का प्रयोग शुभ होता है। आठों दिशाओं में ग्रहों का अधिपत्य होने से ग्रहानुसार भी चित्र या रंगों का प्रयोग किया जा सकता है।

4.5 वास्तु दोष एवं परिहार

वास्तुशास्त्र में न केवल ऐसे अनेक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है जिसके आधार पर हम एक अच्छे वास्तु की संकल्पना करते हैं अपितु इसके साथ वास्तु के गुण, दोषों का वर्णन भी प्राप्त है। शास्त्रानुकूल जो सिद्धान्त हैं वे वास्तु के गुण तथा जो इनके विपरीत हो वे वास्तु के दोष हो जाते हैं। वास्तु के दोष गृह में निवास करने वाले के लिए दुःख प्रदायक हो जाते हैं। वास्तु अनुसार गृह निर्माण विधि को न अपनाना वास्तु दोष हो जाता है। भवनादि में मूल स्वरूप जो कि वास्तु सम्मत हो उसकी क्षति हो जाए या भवन जीर्ण- शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाए तो दोषकारक वास्तु हो जाता है। दोष रहित वास्तु शुभ तथा दोषयुक्त वास्तु अशुभ हो जाता है। विभिन्न वास्तु ग्रन्थों में मर्म- महामर्म- दिङ्मूढ़ आदि दोषों का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे-

मण्डलं जालकं चैव कीलके सुषिरं तथा।
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च महादोषा इति स्मृताः।।[55]

किसी भी भवन, देवालय, गृह आदि के जीर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाने अथवा चूना के धब्बे दीवारों पर या मण्डल पर पड़ जाएँ, दीवारों पर कीलें ही कीलें हो जाना, दीवार का सुषिर

55 प्रासादमण्डनम् अ,08.श्लो16.

(दीवार में छेद) हो जाना, सन्धियों का उखड़ जाना, दीवार में दरारें आ जाना या भवन का निरन्तर बन्द पड़े रहना वास्तु दोष में परिगणित किया जाता है।

देवालय,मठ या भवन में सूर्य की किरणें मूषा या विस्तृत अलिन्द (बरामदा) , जालिकाओं या किसी द्वार द्वारा वेधित हों तो भवन में वास्तु दोष उत्पन्न होता है-

प्रासादमठवेश्मान्यभिन्नानि शुभदानि हि।
मूषाभिर्जालकैर्द्वारै गर्भो यत्र न भिद्यते।
अभिन्नं कथ्यते तच्च प्रासादो वेश्म वा मठः।।
कुक्षिद्वारैस्तथा जालैर्मूषा रश्मिप्रभेदिता।[56]

भवनादि निर्माण काल में अल्पलेप या अधिक लेप करना भी वास्तु दोष का मुख्य कारण है। गृह आदि निर्माण में बिना स्तम्भ के निर्माण करना गृह की आयु को कम करता है। शल्य युक्त भूमि में निर्माण करने से शीघ्र ही बनाया गया भवन नष्ट हो जाता है।[57] स्कन्धहीन, कबन्ध, समसन्धि, इत्यादि प्रासाद या भवन में वास्तु दोष को उत्पन्न करते हैं।[58] सशल्ययुता, बल्मीकयुक्त, रूखी भूमि दोष युक्त होती है । स्फुटित भूमि भी दोषकारक होती है जो धन का नाश करने वाली होती है। शल्य युक्त भूमि नित्य दुःख देने वाली, विषम भूमि शत्रुओं की वृद्धि करने वाली, बाल्मीक युक्त भूमि अपने कुल की हानि करने वाली, कश्यपाकार भूमि धन का नाश कने वाली होती है। भवन निर्माण में तथा जीर्णोद्धार में यह दोष विचारणीय होते हैं।

भारतीय वास्तुशास्त्र में दिग्-देश एवं काल को विशेष महत्त्व प्राप्त है। किसी भी देश में किसी भी काल में बिना दिशा के वास्तु की सम्भावना कल्पित नहीं की जा सकती है। दिग् विचार करने के पश्चात् दिग् दोष भी वास्तु में सम्भावित होते हैं। क्योंकि भवन-गृह-प्रासाद- कुण्ड-वापी-तडाग आदि का निर्माण दिशा के आधार पर ही सम्भव होता है। अतः इन निर्माणों में दिशा का दोष होने पर दिग्दोष होता है। दिशा के प्रयोजन को समझाते हुए आचार्य कहते हैं कि प्रासाद- सदन-अलिन्द-द्वार-कुण्ड[59] निर्माण में विशेषतः दिशा का निर्धारण किया जाता है। दिङ्मूढ़, छन्द का नष्ट होना, शिर भाग

---

[56]द्रष्टव्य प्रासादमण्डनम् पृष्ठ 182

[57]**अल्पलेपं बहुलेपं समसन्धि शिरोगुरुः।**
अप्रतिष्ठं पादहीनं तच्च वास्तु विनश्यति।।
सशल्यं पादहीनं च ह्येकद्रव्येण पूरितम्।
अचिरातच्चालयेद्वा तूर्ध्वगं तद्विनश्यति।।[57] द्रष्टव्य प्रासादमण्डनम् पृष्ठ 174

[58] **स्कन्धहीनः कबन्धश्च समसन्धिः शिरोगुरुः।**
अप्रसारितपादश्च पञ्चैते धननाशनाः।। अपराजितपृच्छा, अ. – 113, श्लोक - 10

[59] वृहद्वास्तुमाला दिक्साधन श्लोक 01

का बड़ा होना, आय हीन होना किसी भी भवन अथवा प्रासाद के मुख्य दोष हैं। जिसमें दिङ्दोष भी एक वास्तु दोष के रूप में गिना जाता है। किसी भी भवन का विभिन्न दिशाओं में झुक जाना अनिष्टकर होता है। किसी निर्माण में निर्दिष्ट दिशा के अनुरूप यदि भवन निर्मित न हो तो भी दिग्दोष होता है। ईशान या नैर्ऋत्य कोण में भवन झुका हुआ हो तो भी दोषकारक होता है जबकि तीर्थ स्थलों में निर्मित देवालयों में दिङ्मूढ़ दोष विचारणीय नहीं होता है-

पूर्वोत्तरे दिशामूढं मूढं पश्चिमदक्षिणे।
तत्र मूढममूढं वा यत्र तीर्थं समाहितम्।।[60]

इसी क्रम में सिद्ध आवास स्थल, तीर्थ, नदी के सङ्गम में तथा स्वयम्भू बाण लिङ्गों में भी दिग्दोष विचारणीय नहीं होता है-

सिद्धायतनतीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
स्वयम्भूबाणलिङ्गेषु तत्र दोषो न विद्यते।।[61]

वास्तुशास्त्र में जब कोई दोष उत्पन्न होता है तो उस क्षेत्र का पुनर्निर्माण कर उस दोष को ठीक किया जा सकता है। वास्तु पद के जिस देवता के पद में दोष हो उसी देवता का मन्त्र जाप कर उस दोष की शान्ति करना अनिवार्य है। एक से अधिक दोष होने पर सम्पूर्ण वास्तुशान्ति का विधिवत् विधान करना चाहिए।

4.6 स्थान भेद से वास्तु का स्वरूप

वास्तुशास्त्र का प्रत्येक नियम दिग्- देश अथवा काल के अनुरूप कार्य करता है। वास्तुशास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों में दिशा एवं ग्रहों के साथ प्राकृतिक शक्तियों के समन्वय को देखा जाता है। भारतीय वास्तुशास्त्र में भारत के भौगोलिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए वास्तु का चिन्तन किया गया है। विदित है कि भारत ऋतु प्रधान देश है अर्थात् भारत में छः ऋतुओं में अलग वातावरण देखने को मिलता है। इसलिए स्थान विशेष के आधार पर आवास की कल्पना की जाती है। जैसे जम्मू-कश्मीर, हिमाचल , उत्तराखण्ड लेह-लद्दाख जैसे क्षेत्र ठण्डे क्षेत्र हैं जिनमें वर्ष भर ठण्ड का अनुभव किया जाता है। इन स्थानों में प्रायः लकड़ी के मकानों का बाहुल्य मिलता है या घर की छतें ढलानदार बनाई जाती हैं ताकि वर्षा, वर्फ इत्यादि से आवास और रहने वालों को सुरक्षा प्रदान हो सके। सम्भवतः पहाड़ी क्षेत्र होने से यहाँ दिशाओं के अनुरूप आवास बनाना कठिन होता है लेकिन स्थान भेद से यहाँ यथोचित वास्तु के नियमों का पालन किया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र का

[60] प्रासादमण्डनम् ,08 – .अ ,श्लोक 09 -
[61] प्रासादमण्डनम्10 - .श्लो ,08-.अ ,

भौगोलिक वातावरण वास्तु को प्रभावित करता है। इसीलिए उस वातावरण का ध्यान रखते हुए ही वास्तु निर्माण करना शुभ होता है।

4.7 वास्तुशास्त्र एवं फेंगशूई

वैदिककाल से आधुनिक काल तक वास्तुशास्त्र की यात्रा में कई वर्ष बीत गए। इसी के साथ आधुनिकता की चकाचौंध भरे जीवन में कई ऐसे विकार उत्पन्न हो गए जो मानव जीवन के लिए हानिप्रद सिद्ध हुए। भारतीय वास्तुशास्त्र सदैव नियमों एवं सिद्धान्तों में बंधा हुआ है, जो भारत के धार्मिक, भौगोलिक, सामाजिक आदि स्थिति के अनुरूप बने हैं। आज के समय में फेंगशूई, जो चीन देश का वास्तु है, भारतीय जनमानस में अपनी पैठ बनाते हुए वास्तुशास्त्र में मिश्रित सा हो गया है। भारतीय वास्तुशास्त्र तथा फेंगसुई दोनों की प्रकृति को समझे विना ही आज भारतीय वास्तुशास्त्र के नाम से ही फेंगसुई के आघार पर गृहसज्जा होने लगी है। आज समझने की आवश्यकता है कि भारतीय वास्तुशास्त्र भारत के भौगोलिक वातावरण का अध्ययन करके व ऋषिचिन्तन से प्राप्त भवननिर्माण की एक विधा है। जबकि फेंगशूई चीन के भौगोलिक वातावरण पर आधारित है। जो हिमालय भारत के उत्तर में स्थित है वही चीन के दक्षिण दिशा में हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि दिशा भेद से वास्तु के नियमों में परिवर्तन भी स्वाभाविक है।

वास्तुशास्त्र में जहाँ पञ्चमहाभूतों पृथ्वी, जल ,अग्नि,वायु, आकाश के परस्पर सामंजस्यता की सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त है वहीं फेंगशूई जल एवं वायु तत्त्व को ही प्रमुखता देता है। इन दोनों पद्धतियों की मूलसंकल्पनाएँ भिन्न हैं। आज के समय में वास्तुशास्त्र का अध्ययन किए बिना कई तथाकथित वास्तुशास्त्री दोनों पद्धतियों में सामञ्जस्य स्थापित करने में लगे हुए हैं, जो शास्त्र की मर्यादा को भङ्ग करता है। दोनों के मध्य कई आधारभूत सिद्धान्तों का अन्तर स्पष्ट होता है। अतः शोधपरक इस विषय को बिना अनुसन्धान किए एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करना सर्वथा गलत है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.21. देवालय की मुख्य तीन शैलियाँ कौन सी हैं?

प्र.22. व्यावसायिक वास्तु हेतु किस आकृति के भूखण्ड ग्राह्य होते हैं?

प्र.23 वास्तुशास्त्र में मुख्य दोष कौन से होते हैं?

प्र.24. दिग्दोष से क्या अभिप्राय है?

प्र.25. भारतीयवास्तुशास्त्र एवं फेंगशूई में क्या भेद है?

4.8 सारांश

भारतीयवास्तुशास्त्र सदैव वैदिक परम्पराओं एवं ऋषिचिन्तन से प्राप्त मूलभूतसिद्धान्तों पर आधारित रहा है। किन्तु आधुनिक समय में वास्तु का बदलता स्वरूप शास्त्र की मर्यादा से परे होता जा रहा है। जिसके कारण मानव जीवन में होने वाले कई अनैच्छिक कृत्यों का सामना आज का मानव कर रहा है। एक अच्छे आवास की कल्पना बिना उसके सिद्धान्तों के बिना असम्भव है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि एक अच्छे आवास, व्यवसाय की कल्पना हेतु हमें वास्तुशास्त्र में निर्दिष्ट सिद्धान्तों का परिपालन कर नितान्त आवश्यक है।

4.9 शब्दावली

गृह - घर
विन्यास - निर्माण
प्लव - झुकाव, ढलान
अधोमुख- नीचे की ओर मुख
एकाशीति- इक्क्यासी
गवाक्ष - झरोखा
शल्य - हड्डी
स्तम्भ - खम्भा
अन्वेषण - खोज
शैली - निर्माण की कला का स्वरूप
तृण - तिनका
इष्टिका - ईंट
शैल - पत्थर
परिलक्षित- लक्षणों का दृष्टिगोचर होना
गर्भगृह - देवालय में प्रतिमा रखने का कक्ष
मर्म - नाजुक
दिङ्मूढ़ - दिशाविहीन

सशल्य - हड्डी से युक्त

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वास्तु शब्द वस् निवासे धातु में तृण प्रत्यय करने से बनता है।
2. वस्तुर्वसतेनिवासकर्मणः आचार्य यास्क की उक्ति है।
3. भूमि को मुख्य वास्तु के रूप में ग्रहण किया गया है।
4. ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओं ने वास्तुपुरुष को अधोमुख भूमि में स्थापित किया।
5. ब्रह्मस्थान।
6. वास्तुपद में पैंतालीस देवताओं का विन्यास किया जाता है।
7. इक्क्यासी पदवास्तु में ब्रह्मा के नौ पद होते हैं।
8. भूखण्ड के प्रमाणानुसार देवताओं का स्थापन करना वास्तुपदों का मुख्य प्रयोजन है।
9. वास्तुपदमण्डल में नौ मर्म स्थान होते हैं।
10. पूर्वादि दिशाओं के अधिपति ग्रह क्रमशः सूर्य, शुक्र,मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध एवं गुरु होते हैं।
11. आवासीय वास्तु के मुख्य चार भेद झोंपडी, मिट्टी के घर, ईंट के घर व पत्थर के घर होते हैं।
12. प्रभेदानुसार आवासीय वास्तु के फ्लैट, बेंग्लो, हवेली इत्यादि भेद होते हैं।
13. व्यावसायिक वास्तु के मुख्य भेद-दुकान, शोरूम व मॉल, कारखाना हैं।
14. गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त
15. देवालय हेतु 64 पदवास्तु का विन्यास किया जाता है।
16. रसोई घर का निर्माण आग्नेय दिशा में किया जाता है।
17. भूमिगत जल हेतु ईशान-पूर्व एवं उत्तर दिशाएँ शुभ हैं।
18. अध्ययन कक्ष का निर्माण पश्चिम दिशा में करना चाहिए।
19. आवासीय वास्तु में गुरुत्व-चुम्बकीय एवं सौर शक्ति प्रभावित करती हैं।
20. भूखण्ड का प्लव ईशान-पूर्व एवं उत्तर में शुभ होता है।
21. देवालय की प्रमुख शैलीयाँ नागर-द्राबिड़ तथा बेसर हैं।
22. व्यावसायिक वास्तु हेतु वर्गाकार,आयताकार एवं सिंहमुखी भूखण्ड शुभ होते हैं।
23. वास्तु दोषों में मुख्यतः द्वार,दिग् एवं सामान्य दोष होते हैं।
24. दिङ्मूढ से तात्पर्य वास्तु के दिशाविहीन निर्माण से है।

25. भारतीयवास्तुशास्त्र एवं फेंगशूई दोनों की मूलभूत पद्धतियाँ एवं सिद्धान्त भिन्न हैं।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7. **वास्तुसार,** प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक - ईस्टर्न बुक लिंकर्स 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली, 2016
8. **बृहद्वास्तुमाला,** डॉ.अशोक थपलियाल, प्रकाशक - अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2019
9. **मयमतम्,** सम्पादक- डॉ. शैलजा पाण्डेय, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013
10. **वास्तुप्रबोधिनी,** डॉ.अशोक थपलियाल, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2011
11. **भारतीय वास्तुशास्त्र,** प्रो. शुकदेव चतुर्वदी, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2004।
12. **प्रासादमण्डन,** सूत्रधारमण्डन, सम्पादक व व्याख्याकार- श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2006

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1- भारतीय वास्तुशास्त्र के मूल भूत सिद्धान्तों का वर्गीकरण करते हुए आवासीय वास्तु का वर्णन कीजिए।

2- व्यावसायिक वास्तु पर सुविस्तृत निबन्ध लिखिए।

3- धार्मिक वास्तु का वर्णन कीजिए।

4- भारतीयवास्तुशास्त्र के वर्तमान स्बरूप पर प्रकाश डालिए।

5- वास्तु के दोषों का वर्णन कीजिए।

खण्ड -3
वास्तुशास्त्र में भूमि एवं भूखण्ड

इकाई - 1 भूमि एवं भूखण्ड चयन

इकाई की रूपरेखा-

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मुख्य भाग खण्ड एक

1.3.1 उपखण्ड एक- वास्तुशास्त्र के मूल सिद्धान्त-पंचमहाभूत

1.3.2 उपखण्ड दो- भूखण्ड एवं प्राकृतिक ऊर्जा

1.3.3 उपखण्ड तीन- भूखण्ड चयन

1.4 सारांश-

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची-

1.8 सहायक उपयोगी सामग्री-

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न-

1.1 प्रस्तावना-

भारतीय संस्कृति में गृह निर्माण का अहम महत्त्व है। यहाँ तक कि पूर्व आचार्यों का कथन है कि यदि हम नित्य कर्म ईश्वर आराधना, ध्यान, दान, जप, तप, होमादि क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं तो उसका सीधे-सीधे फल गृहपति को प्राप्त होता है। भावार्थ यह है कि यदि हम किसी अन्य व्यक्ति विशेष की भूमि अथवा भवन में रहकर श्रौत-स्मार्तादि क्रियाएँ करें तो समस्त फल भूमिपति अथवा गृहपति को प्राप्त होता है यथा-

परगेहकृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तादि क्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्यानुसार गृह निर्माण अवश्य कर लेना चाहिए। लेकिन निर्माण से पूर्व वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को यह अवश्य जान लेना चाहिए कि कौन सी दिशा आवास की दृष्टि से उपयुक्त रहेगी, कौन सा ग्राम, नगर अथवा शहर में निवास करने पर भौतिक सुख संसाध्नों तथा आध्यात्मिक गुणों का विकास होगा। अतः उसके उपरान्त भूमि का चयन करना श्रेयस्कर रहेगा। भूमि चयन में भी यह आवश्यक है कि ग्राम के कौन से भाग में निवास करना उपयुक्त होगा। इसके लिए राशि की दिशा के अनुसार कौन सी राशि वालों को कौन सी दिशा में गृह निर्माण उपयुक्त रहेगा। इसी विषय को लेकर वास्तुरत्नाकर ग्रन्थ में कहा गया है कि सर्वप्रथम ग्राम, नगर, शहर का चयन और उसके उपरान्त दिशा का चयन तदुपरान्त भूमि चयन करना चाहिए और उसके बाद गृह के पिण्ड, आय,वार नक्षत्रादि का शास्त्र सम्मत विधिपूर्वक गृहनिर्माण करना चाहिए। ग्राम अथवा नगर का चयन वास्तुशास्त्र के नियमों के अनुसार वर्ग काकिणी के आधार पर किया जाता है। यदि अमुक ग्राम अथवा शहर में वास करने पर यदि गृहपति को लाभ की प्राप्ति होती है तभी हमें ग्राम अथवा शहर में भूमि चयन के विषय में विचार करना चाहिए। इस इकाई में हम भूमि चयन के विषय में वास्तुशास्त्रीय नियमों विधियों, उपविधियों के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य-

वास्तुशास्त्रीय नियमों के अनुसार आज हम इस इकाई के माध्यम से जान सकेंगे के वास योग्य भूखण्ड का चयन किस प्रकार की भूमि पर करना चाहिए। भूमि से प्राप्त होने वाले गुण-दोषों के विषय में हम इस इकाई के माध्यम से ज्ञान ग्रहण कर सकेंगे। वास्तविक रूप से उपयुक्त स्थल निश्चित करने के उपरान्त यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि स्थल की भूमि के शुभाशुभत्व का निर्माण वास्तु के सिद्धान्तों के अनुरूप करना आवश्यक होगा। सर्वप्रथम भूखण्ड के चयन की प्रक्रिया को जान लेना आवश्यक होगा। क्योंकि भूखण्ड से प्राप्त होने वाली सकारात्मक कला एवं सकारात्मकता

वास करने वाले व्यक्ति विशेष के जीवन को प्रभावित करती है। अतः सर्वप्रथम भूखण्ड चयन में भूमि के विषय में जानकारी वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिए। आज इस इकाई के माध्यम से समस्त भूमि के गुण-दोषों के विषय में ज्ञान ग्रहण करेंगे। क्योंकि वर्णानुसार भूमि का चयन अमुक वर्णयुक्त वाले व्यक्ति को उपयुक्त होगी। चूँकि बारह राशियों का अपना अपना वर्ण है। यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इसी क्रम में वास्तु शास्त्र में भी ब्राह्मणीय भूमि, क्षत्रिय भूमि, वैश्या भूमि तथा शूद्रा भूमि के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं तात्पर्य यह है कि यदि ब्राह्मण वर्णयुक्त भूमि पर यदि ब्राह्मण वर्ण की राशि विशेष का व्यक्ति निवास करता है तो ब्राह्मण वर्ण को वर्णानुसार लाभ की प्राप्ति होगी। इसी क्रम में यदि क्षत्रिय वर्णयुक्त राशि वाला व्यक्ति विशेष क्षत्रिया भूमि का चयन करता है तो उस वर्ण विशेष को क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित समस्त लाभों की प्राप्ति होगी। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भूमि के गुण-दोषों एवं कौन से वर्ण के व्यक्ति को कौन सी भूमि उपयुक्त रहेगी। इन सभी विषयों को हम इस इकाई के माध्यम से जान सकेगे।

मुख्य भाग खण्ड-1

1 उपखण्ड-एक- वास्तुशास्त्र के मूल सिद्धान्त पंच-महाभूत

वस्तुतः वास्तुशास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसमें केवल समस्त प्राणियों के वास करने के सम्बन्धित समस्त विधाओं का उल्लेख भिन्न-भिन्न स्तर पर किया गया हो, प्रकृति द्वारा इस शरीर का निर्माण जिस प्रकार से किया गया है उसमें हमारे समस्त ब्रह्माण्ड को बनाये रखने में पाँच तत्त्वों का ही योगदान है। अतः उसी क्रम में हमारे वास्तुशास्त्रीय आचार्यो ने भी विचार एवं मन्थन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि गृह निर्माण सर्वप्रथम क्यों आवश्यक है यदि आवश्यक है तो उसमें कौन कौन सी सावधनियाँ आवश्यक होंगी। क्योंकि समस्त ब्रह्माण्ड प्रकृति की गोद में स्थित है। इसलिए गृह निर्माण का कार्य प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। यदि इससे इत्तर हम जब भी वास्तुशास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करेंगे तो प्रायः यही प्रकृति अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्प, ज्वारभाटा, भूस्खलन जैसी समस्याएँ पैदा होंगी। चूँकि प्रकृति अपने अनुरूप ही समस्त कार्यो को करने पर बाध्य हो जाती है अतः इसके लिए आवश्यक है कि वास्तुशास्त्र के आवश्यक पाँच तत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के विषय के सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन जब तक नहीं करेंगे तब तक आप गृह निर्माण जैसे दुष्कर कार्य को सही ढंग से सम्पन्न नहीं कर पाएँगे जिस उद्देश्य को लेकर गृह निर्माण किया गया हैं यदि हम अपनी आस पास की स्थिति को लेकर विचार विमर्श करें तो प्रायः पूर्वजों को यह कहते सुना गया होगा कि अमुक गृह चार सौ वर्ष पुराना है, अमुक किला हजार वर्ष पुराना है, अमुक देवालय 5000 हजार वर्ष पुराना है। इस प्रकार की घटनाएँ आज भी ध्रातल पर दृग्गोचर होती हैं

परन्तु खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि जहाँ पूर्व में गृह की आयु वास्तुशास्त्रीय ने न्यूनतम 100 वर्ष से लेकर उत्तरोत्तर 1000 वर्ष तक रखी थी, आज केवल 20 से 50 वर्ष तक सिमट कर रह गयी है। वर्तमान पीढ़ी के लोग गृह निर्माण करते हैं और उन्हीं के होते-होते उनके पुत्रादि पुनः गृहनिर्माण करने पर उतारू हो जाते हैं। अन्यथा की स्थिति में यह भी देखा गया है कि यदि ऐसी स्थिति नही भी आयी तो स्वयं प्रकृति अपने मूल रूप में इस प्रकार के गृहों को करने पर उतारू हो जाती है। अतः यह परम आवश्यक है कि वास्तुशास्त्रीय सम्मत नियमों के अनुरूप यदि हम गृह निर्माण करेंगे तो निश्चित रूप से उस गृह में निवास करने वाले समस्त प्राणियों को सुख समृद्धि, भाग्य की अभिवृद्धि एवं दीर्घायु के साथ-साथ निरोग पूर्ण जीवन भी रहेगा। पंचमहाभूतों में प्रथम भूत के रूप में पृथ्वी का स्थान है चूँकि समस्त क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु भूमि का होना आवश्यक है अतः यदि व्यक्ति विशेष के पास स्वयं का भूखण्ड नहीं होगा तो वास्तु शास्त्रोक्त दूसरे के घर में किए जाने वाले श्रौत-स्मार्त क्रियाएँ निष्पफल होंगी। यथा-

परगेहकृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तादि क्रियाः शुभाः।
निष्पफलाः स्युर्यस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य अनुसार गृहनिर्माण अवश्य करना चाहिए। लेकिन अपनी इच्छा के अनुसार किसी ग्राम अथवा नगर का चयन कर लेना घातक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक ग्राम अथवा नगर प्रत्येक दिशा और प्रत्येक भूखण्ड प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। अतः सर्वप्रथम वास्तुशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए दिशा व दशा का विचार करके भूखण्ड का चयन करना चाहिए। वस्तुतः जिस प्रकार से पाँच तत्त्वों में किसी एक तत्त्व की शरीर में न्यूनता होने पर विकार उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार से यदि गृह निर्माण में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश तत्त्व वास्तुसम्मत नियमों के अनुरूप यदि न्यूनता रहती है तो स्वाभाविक रूप से उस गृह में निवास करने वाले प्राणियों को उस तत्त्व से सम्बन्धित रोगादि व्याधि होने की पूर्ण सम्भावना रहती है। अतः वास्तु सम्मत नियमों के अनुरूप व्यक्ति अपने आवास में पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश का अधिकतम सदुपयोग करे जिससे उसका जीवन रोग मुक्त सुरक्षित तथा सर्वविध सुविधमय हो सके।

1. **पृथ्वी –''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''** भूमि हमारी माता है और हम सब उसकी सन्तान हैं। वस्तुतः संसार में समस्त प्राणियों को मातृवत् आश्रय देने के कारण भूमि का एक नाम वसुन्धरा भी है। समस्त विश्व को धरण करने के कारण पृथ्वी को आधारशक्ति भी कहा गया है। पंचमहाभूतों से युक्त शरीर में बहुलांश तत्त्व पृथ्वी का ही रहता है। शारीरिक संरचना में पृथ्वी से न्यून जल और उससे न्यून तेज और तेज से कम वायु और वायु से कम आकाश तत्त्व का अंश शरीर में भीतर होता है।

भारतीय दार्शनिकों ने प्रत्येक जड़ तत्त्व को चेतन से युक्त माना है। क्योंकि चेतन तत्त्व ही उसका नियन्ता और संचालक है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में इसके आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों स्वरूपों की स्तुति की गई है।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरं कृतम्,
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वध्यान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्ददातु,
जरदृष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।।

पृथ्वी तत्त्व की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसकी बनावट धरातलीय तलहट्टी, पर्वतीय, नदी या समुद्र किनारे की समतलीय हो सकती है। व्यक्ति अपनी सुविध और सुरक्षा के अनुसार भू भाग का चयन करता है। भू–आकार, आयताकार, वर्गाकार, त्रिकोणाकार, दण्डाकार, या शकटाकार हो सकती है। भू की स्थिति उष्णीय, उष्ण कटिबन्धिय, शीत, शीतकटिबन्धीय, शीतोष्ण आदि हो सकती हैं। प्रायः देखा गया है कि उँचे पर्वतीय क्षेत्रों, हिमाच्छादित, मरुस्थलीय प्रदेशों में प्राणी जगत का अभाव रहता है। इसकी अपेक्षा निचले पर्वतीय क्षेत्रों नदी किनारों या समुद्र के किनारे मैदानी भू–भागों में प्राणी जगत का बाहुल्य पाया जाता है। उपजाउ मिट्टी से वनस्पति प्रभावित होती हैं। मिट्टी में खनिज–40 प्रतिशत, कार्बनिक 10 प्रतिशत, पीने योग्य जल 25 प्रतिशत और वायु का संचार 25 प्रतिशत रहता है। या गुरुत्व शक्ति एवं चुम्बकीय शक्ति का केन्द्र है यह अपने अक्षीय और कक्षीय भ्रमण के कारण ही गुरुत्वाकर्षण शक्ति की प्राप्ति हुई है। इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण ही पृथ्वी पर आकाश की तरह गति शून्यता नहीं है। इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण और चुम्बकीय प्रभाववश मानव जीवन में गतिशीलता तथा धरातल पर निर्मित भवनों को ठोस आधार प्रदान करती है। भूमि के **चुम्बकीय सिद्धान्त के आधार पर ही भवन** के दक्षिण और नैर्ऋत्य भू भाग पर भारी भरकम वस्तुओं को रखने का विधन है। अतः भवन निर्माण में पृथ्वी तत्त्व का अधिकतम सदुपयोग किस प्रकार से किया जाए, इसके भूखण्ड का चयन, भूखण्ड में मिट्टी का विचार, मिट्टी के प्रकार, मिट्टी में गुणवत्ता, भूमि के विविध परीक्षण करने के उपरान्त ही वास्तुशास्त्र भूखण्ड चयन के लिए आदेशित करता है।

2. जल– पंचमहाभूतों में जलतत्त्व की प्रधनता है। सामान्य से सामान्य जन भी जानता है कि जल ही जीवन है। अतः विश्व के समस्त प्राणधारियों, जीवों, जन्तुओं और वनस्पतियों के लिए आधार भूमि है और भूमि के उपर वास करने वाले अथवा पनपने वाले समस्त प्राणधारियों के लिए जल की प्रमुख महत्ता है। प्राणियों के रक्त में 80 प्रतिशत मात्रा जल की होती है तथा वनस्पति में यह मात्रा अधिक पाई जाती है। जीव–जन्तु, पशु–पक्षी जल पीकर अपनी पिपासा को शान्त करते हैं जबकि वनस्पति जगत अपनी जड़ों के द्वारा जल को ग्रहण कर जीवित रहते हैं। समस्त पृथ्वी के 2/3 भाग पर जल विद्यमान है जो हमें सागरों, नदियों, झीलों, जलाशयों, कुओं के रूप में पाया जाता है। जल के स्रोतों के आस

पास वस्तियों, नगरों शहरों का विकास देखा जा सकता है जिसके कुछ प्रसिद्ध उदाहरण हैं– देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, हरिद्वार, प्रयागराज, कोलकाता, मुम्बई, दिल्ली जैसे महानगर एवं नगर नदियों के किनारे स्थित हैं। यही कारण है कि भवन निर्माण में जल की 2/3 आवश्यकता पर वास्तुशास्त्र सम्मति प्रदान करता है। अतः भूमि का चयन में बहुत आवश्यक है कि जहाँ जिस नगर या शहर में हम गृह निर्माण करना चाहते हैं वहाँ जल की स्थिति पर्याप्त मात्राा में है अथवा नहीं। इसलिए यह भी वास्तुशास्त्र के अनुसार आवश्यक है। देश–काल परिस्थिति के अनुसार वास्तुशास्त्रा के नियम भी कार्य करते हैं। क्योंकि पर्वतीय प्रदेशों में प्रायः देखा गया है कि जहाँ पर हिमपात, अतिवृष्टि होती है वहाँ पर ढालदार छत बनाने का विधन है ताकि भवन की छत पर अध्कि भार पड़ने पर भवन को क्षति न हो सके। इसी क्रम में जब हम मैदानी क्षेत्राों में भवन निर्माण पर विचार करते हैं तो वहाँ पर जल की आपूर्ति हेतु वास्तुसम्मत नियमों के अनुसार पानी की टंकी, बोंरिग करना, भूमिगत टंकी, नलकूप, कुआँ इत्यादि का निर्माण भवन की सुरक्षा और सुविध को ध्यान में रखते हुए भूमि का चयन करना चाहिए। ताकि वास्तुशास्त्र के नियमों के अनुसार गृह निर्माण कर सकें।

3. तेज– शरीर संरचना हो या वनस्पति जगत की बात हो प्रायः आधाररूपा पृथ्वी के उपर क्रमशः जल और उसके उपरान्त तेज अग्नि का क्रम आता है। तेज या अग्नि ही संसार का आधार है। यदि संसार में तेज का अभाव हो जाएगा तो सम्पूर्ण विश्व अन्धकारमय हो जाएगा। तेज का सबसे प्रमुख एवं प्रत्यक्ष संसाधन स्वयं सूर्य है। इसलिए भूमि के चयन में जहाँ पर गृह निर्माण किया जाना है वहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि भूखण्ड के चारों तरफ सूर्य का पर्याप्त प्रकाश हमें प्राप्त होगा अथवा नहीं। क्योंकि विना अग्नि के संसार में कुछ भी कार्य सम्भव नहीं है। वास्तव में मानव शरीर में अग्नि ही प्राण का कार्य करता है। यथा–

''अग्निर्वै प्राणः''

अग्नि को वेदों में बार–बार अमृत कहा गया है। अग्नि ही वह अमृतदेव है जो समस्त भूतों में समाहित है। इसलिए यही जीवन है। मानव देह में जब तक तेज तत्त्व की प्रधानता है तब तक ही जीवन है। विश्व में अग्नि तत्त्व का प्रत्यक्ष एवं साक्षात् देवता सूर्य है। अतः समय का निर्धरण किस प्रकार से हो उसके लिए स्वयं सूर्यदेव मयासुर संवाद में कहते हैं कि–

न मे तेजः सह न कश्चिद् अख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निश्शेषं कथयिष्यति।।

यहाँ तक कि स्वयं वेदभगवान् भी सूर्य को आत्मा के रूप में देखते हैं। यथा–

''सूर्य आत्मा जगतस्थष्थुखश्च।''

भौगोलिक विविधता के कारण सूर्य की रश्मियों का प्रकाश भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रभाव डालता है। विषुवत् रेखा से ज्यों–ज्यों ध्रुवों की ओर चला जाए त्यों–त्यों सूर्य

की किरणें अधिकाधिक कोण बनाती जाती हैं। विषुवत् रेखा पर प्रायः सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ती हैं। अतः यहाँ पर प्रायः उष्णता की अधिकता पाई जाती है। ऐसी भूमि पर निवास करने वाले भूमिवासी उर्जावान् और अत्यधिक परिश्रमी होते हैं। इसके धरातल का स्वरूप भी सौर उर्जा को ग्रहण करने में सहायक होता है। इस प्रकार भौगोलिक विविधताओं के कारण सौर उर्जा का प्रभाव प्रायः सभी जगह एक समान नहीं रहता है। अतः जलवायु में भी भिन्नता होने का यही कारण है। इसी कारण वश मानवीय उन्नति, जीवन शक्ति, स्वास्थ्य एवं विविध वृत्तियों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः सूर्य की जीवनदायिनी किरणों का वास्तुशास्त्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसलिए भूमि चयन में उपर्युक्त आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए भूमि चयन करना चाहिए।

4. वायु– भूमि चयन में सबसे महत्त्वपूर्ण है कि भूखण्ड के चारों ओर का सुवासित वातावरण का होना आवश्यक है। क्योंकि भूमि चयन में यह आवश्यक है कि शु(वायु का आगमन जीवनदायिनी शक्ति का प्रतिक्षण भवनवासियों को उफर्जा प्रदान करता रहता है। क्योंकि शारीरिक संरचना में हमारे पफेपफड़ों को शु(वायु का संचार होने पर ही भवनवासी सुखी, समृ(शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होकर दीर्घायु जीवन जी सकें। वायु प्राणी जगत के लिए कितनी आवश्यक है इसका अनुमान इस प्रकार से लगाया जा सकता है कि प्राणी भोजन के विना एक माह और जल के विना एक सप्ताह तक जीवित रह सकता है परन्तु वायु के विना अध्कितम पाँच मिनट ही जीवित रह सकता है। विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के चारों ओर एक गैसीय पदार्थ का आवरण है जिसे वायुमण्डल कहते हैं।
विभिन्न गैसों एवं अनेकानेक तत्त्वों से युक्त यह गैसीय परत पृथ्वी के चारों ओर 32000 किलोमीटर से भी अध्कि मोटी परत है। पृथ्वी वायुमण्डल की इस मोटी परत को अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण धरण किए हुए हैं। इसी वायुमण्डल को पुराणों में एवं श्रुतियों में 'वराह' के नाम से सम्बोध्ति किया गया है। 'वराह' शब्द का योग 'वृ' और 'अह' धतुओं के संयोग से बना है। जिसका अर्थ है वह चारों ओर की वायु पृथ्वी पिण्ड को आवृत्त कर लेती है और संघात रूप बना लेती है। इसलिए उसका नाम वराह रखा गया है। पृथ्वी पर न केवल प्राणी जगत अपितु समस्त भूमिचर, नभचर अपितु जलचर एवं पेड़–पौध्े व वनस्पति वायु के कारण ही जीवित हैं। यदि पृथ्वी वायु विहीन हो जाएगी तो न बादल होंगे न वर्षा होगी और न ही जल प्रवाह होगा और न ही जीवन दायिनी वायु होगी। वायुमण्डल की ओजोन गैस की उफपरी परत सूर्य की पराबैगनी किरणों को सोख लेती हैं जिससे पृथ्वी पर पड़ने वाले भयघङ्कर ताप से जीवन की रक्षा होती है। सागरों, नदियों, झीलों एवं झरनों के जल में नाईट्रोजन, ऑक्सीजन तथा कार्बनडाई–ऑक्साइड पर्याप्त मात्राा में घुली रहती है। जिसके चलते जलीय जीव ग्रहण करके जीवित रहते हैं। वैसे तो वायुमण्डल में ऑर्गन, हीलियम, नियोन, क्रिपटन और जेनन जैसी गैसों का सम्मिश्रण रहता है परन्तु मुख्य रूप से दो गैसों की प्रधनता है। नाईट्रोजन 78.03 प्रतिशत और ऑक्सीजन 20.94प्रतिशत मिलकर कुल वायुमण्डल की गैसों का 98.97 प्रतिशत की रचना करती है। शेष 1.03 प्रतिशत में

अन्य गैसें पाई जाती हैं। समुद्र तल के आस पास नौ गैसें पाई जाती हैं। इनमें से भारी गैसें नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बनडाई–ऑक्साइड तथा ऑर्गन पृथ्वी के समीप पाई जाती हैं। हल्की गैसें जैसे– हीलियम, नियोन, क्रिपटन, ओजोन, जेनन आदि गैसें पृथ्वी से दूर उफपरी सतह पर पाई जाती हैं। वायु के विषय में यदि आधुनिक–पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा एअर और विंड दो भाग किए गए हैं। उनके अनुसार एअर सर्वत्र विद्यमान है और विंड एक प्रकार से लहर के रूप में कार्य करती है। जब भारतीय मनीषियों द्वारा वायु को पाँच भागों में बाँटा गया है जिसमें प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान है। जब भी शरीर में इन पाँचों महाप्राणों के मार्ग में अवरोध पैदा होता है तो मानव देह परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है अतः भूमि एवं भूखण्ड चयन में वायु की विशेष महत्ता है। अतः जब भी भूमि चयन के विषय में विचार करें तो यह आवश्यक हो जाता है कि भूमि एवं भवन के चारों ओर शुद्ध वायु एवं जीवन रक्षक वायु उत्सर्जन करने वाले पौधे, वृक्षादि होने चाहिए, जिससे गृह निर्माण करने के उपरान्त वहाँ निवास करने वाले निवासियों को शुद्ध एवं सन्तुलित लाभ मिल सके।

5. आकाश– पृथ्वी, जल, तेज, वायु के उपरान्त भूमि चयन में आकाश का विशेष महत्त्व है। क्योंकि आकाश स्वयं के लिए स्थान नहीं लेता अपितु अन्य समस्त वस्तुओं के लिए स्थान उपलब्ध करवाता है। आकाश में ही समस्त विश्व विद्यमान है। आदान –प्रदान करने में आकाश का अहम स्थान है। यहाँ तक कि भारतीय दर्शन भी आकाश के विषय को इस प्रकार कहता है कि–

''शब्दगुणकमाकाशम्''

अतः शब्द ही आकाश का गुण है। पूर्व कथित पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों महाभूतों का समावेश आकाश में ही है। क्योंकि पृथ्वी स्वयं आकाश में विद्यमान है और पृथ्वी पर ही जल, तेज और वायु का घर है अतः स्पष्ट है कि आकाश में सभी व्याप्त है न कि आकाश किसी में व्याप्त है। यहाँ तक कि समस्त भूमण्डलीय चेतन–अचेतन, जड़–जीवादि की व्याप्ति आकाश में है। इसलिए सकल ब्रह्माण्ड इसी आकाश में स्थित है। वस्तुतः आकाश की सीमा अनन्त असीम है। वास्तविक रूप से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश में ही समाहित है। जिस प्रकार से वृक्षों को फलने–फूलने एवं पनपने के लिए परस्पर स्थान की असमीपता आवश्यक है क्योंकि तभी वह आकाश में सिर उठाए खड़े रहते हैं। वृक्षों के तनों में छिद्र होते हैं जिसके कारण पत्तों तक वायु का संचार होता है, इसलिए आकाश का महत्त्व सर्वत्र है। आकाश में ही वायु मण्डल विद्यमान है जिसके कारण समस्त भू भागस्थ प्राणी जीवित रहते हैं। वायु मण्डल में ही ओजोन गैस परत है जो सूर्य द्वारा निःसृत पराबैंगनी किरणों को भू–भाग तक आने से रोकती है क्योंकि पराबैंगनी किरणें अत्यन्त घातक हैं। अतः भौतिक तत्त्वों में भी आकाश का भिन्न तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है जिस प्रकार प्राणी के समस्त अंग–प्रत्यंग आकाश की उपलब्धि एवं सहायता से समस्त कार्यों को सम्पन्न करते हैं ठीक उसी प्रकार से वास्तुशास्त्रोक्त निर्माण गृह में आकाश तत्त्व की

महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यही प्रमुख कारण है कि आकाश की सार्वभौमिकता के फलस्वरूप वास्तुशास्त्र भवन के चारों ओर एवं गृह के मध्य भाग को रिक्त रखने हेतु निर्देशित करता है। इसी के साथ भवन निर्माण में एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतुःशाला भवन की उफँचाई एवं छत उफँचाई के विषय में विशेष विचार किया जाता है जिससे आकाश का भवन निर्माण में समुचित उपयोग किया जा सके।

अभ्यास प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दें–

प्र.1– दूसरे के घर पर शुभ कार्य क्यों नहीं करने चाहिए?

प्र.2–''भूमीशः पफलमश्नुते'' का क्या अभिप्राय है?

प्र.3– पंचमहाभूत कौन–कौन है?

प्र.4– दक्षिण में भारी भरकम वस्तुएँ क्यों रखनी चाहिए?

प्र.5– भवन निर्माण में जल की मात्राा क्या रहती है।

1.1.2 भूखण्ड एवं प्राकृतिक उर्जा

वस्तुतः भूमि एवं भूखण्ड हेतु प्रकृति तथा प्रकृति के मूल बल का ज्ञान परमावश्यक है चूँकि भूखण्ड की कैसी प्रकृति है, उसका वातावरण कैसा है, भूखण्ड का परिक्षेत्र किस प्रकार का है इन समस्त बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। वस्तुतः प्रकृति विश्व का मूल कारण है। सम्भवतः हमारे चारों ओर विविधताओं से युक्त संसार दृष्टिगोचर हो रहा है यह प्रकृति है। संसार को प्रकृति का परिणाम कहा जाता है और प्रकृति को संसार का कारण। यह सत्ता की प्रारम्भिक इकाई है। इसी से जीवन की भिन्न–भिन्न व्यवस्थाएँ निकलती है। अतः इस विश्व का अन्तिम एवं परम आधर प्रकृति है। प्रकृति ही उत्पन्न करती है और प्रकृति में ही समस्त संसार समाहित हो जाता है। वस्तुतः प्रकृति अनन्त शक्तियों का भण्डार है। वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से इन अनन्त शक्तियों में प्रकृति के तीन बल हैं।

1. गुरुत्वाकर्षण बल, 2. भू चुम्बकीय बल, 3. नाभिकीय बल

वस्तुतः प्रकृति के मध्य अनेकानेक बल हैं। परन्तु वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से अन्य बलों का भवन निर्माण में योगदान नहीं है। चूँकि भवन निर्माण हेतु उपयुक्त तीन बलों के विषय में जानना आवश्यक है।

1. गुरुत्वाकर्षण बल–आकाशस्थ पिण्डों के परस्पर आकर्षण को गुरुत्वाकर्षण बल कहते है। ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक पिण्ड दूसरे पिण्ड के कारण इस बल का अनुभव करते हैं। जैसे भूमि में स्थित सभी पिण्ड पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होने के कारण गुरुत्व बल का अनुभव करते हैं। आचार्य भास्कर ने 'सिद्धान्तशिरोमणि' में स्पष्ट किया है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जिससे वह भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है। अतः यह गुरुत्व बल संसार में घटित होने वाली समस्त घटनाओं के लिए उत्तरदायी है। मुख्यतया यह बल पृथ्वी की चन्द्रमा तथा उपग्रहों के द्वारा परिभ्रमण करना तथा सूर्य की ग्रहों द्वारा परिभ्रमण को तथा

पृथ्वी पर गिरने वाली प्रत्येक वस्तु या द्रव्य की गति को संचालित करता है। सामान्यतया गुरुत्व का अर्थ बजनदार अथवा भारीदार है। अतः जिस वस्तु में जितना भारीपन होगा उतना ही अधिक गुरुत्वाकर्षण होगा अर्थात् जो वस्तु जितनी ठोस या भार वाली होगी उसके प्रति पृथ्वी का उतना ही अधिक गुरुत्वाकर्षण रहेगा। वास्तुशास्त्रीय दृष्टि के आधार पर यह गुरुत्वाकर्षण बल भूखण्ड पर बनने वाले भवन को न केवल स्थिरता एवं स्थायित्व देता हैं अपितु भवन के ठोस आधार हेतु उपयुक्त घनत्व वाली उत्तम भूमि के चयन में भी सहायक सिद्ध होता है।

अतः भूखण्ड के चयन में ठोस आधर एवं घनत्व के बल पर ही भवन निर्माण करना दीर्घ काल के लिए स्थायित्व प्राप्त होता है। इसी गुरुत्व बल के आधर पर भवन को प्रमुख चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

1. घास पफूस की पर्णकुटी, 2. कच्ची ईटों से बना घर, 3. पक्की ईटों से निर्मित घर, 4. पत्थरों का बना घर अर्थात् जिसमें लोहा, पत्थर, चूना आदि का प्रयोग किया गया हो।

2. भू–चुम्बकीय बल– भू चुम्बकीय बल के कारण ही अणुओं तथा परमाणुओं की संरचना, रासायनिक क्रियाओं को गति तथा द्रव्यों के यान्त्रिक, तापीय और दूसरे गुणों को संचालित करता है। यह स्थूल बलों जैसे–तनाव, घर्षण, सामान्य बल आदि का आधार है।

वस्तुतः भू–चुम्बकीय बल विजातीय आवेशों के बीच आकर्षण और सजातीय आवेशों के मध्य प्रतिकर्षण पैदा करते हैं गतिमान आवेश चुम्बकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं जिसके कारण बल उत्पन्न होता है। गुरुत्वाकर्षण बल के समान ही चुम्बकीय बल भी बड़ी दूरी तक कार्य करता है। गुरुत्वबल की अपेक्षा यह बल अत्यधिक प्रबल होता है। नाभिकीय घटना को छोड़कर हमारे चारों ओर की मूल दुनियाँ मूल रूप से गुरुत्वबल और भू–चुम्बकीय बल के उपर आधारित है।

ब्रह्माण्ड के अन्य पिण्डों के समान ही पृथ्वी एक बहुत बड़ी चुम्बकीय शक्ति है। वैज्ञानिकों के अनुसार पिछले साढ़े चार अरब वर्षों से अपने अक्षीय और कक्षीय परिभ्रमण के कारण पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति में वृद्धि हुई है। पृथ्वी के दो ध्रुव है। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। भू चुम्बकीय शक्ति तरंगों का प्रवाह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर रहता है। क्योंकि यह भू–चुम्बकीय बल विजातीय आवशों के मध्य आकर्षण तथा सजातीय आवेशों के मध्य विकर्षण पैदा करता हैं। अतः भू–चुम्बकीय शक्ति की तरंगों का प्रवाह उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर सतत बना रहता है। जिस प्रकार से पृथ्वी के दो ध्रुव उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव हैं ठीक उसी प्रकार से मानव शरीर के दो ध्रुव सिर और पैर हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से उत्तरी ध्रुव पृथ्वी के अनुसार मानव उत्तरी ध्रुव सिर की स्थिति एक दिशा में नहीं होनी चाहिए। क्योंकि दो चुम्बकों को परस्पर एक साथ लाया जाए और दोनों के उत्तरी ध्रुवों को एक साथ रखा जाए तो दोनों में विकर्षण पैदा होता है। और यदि दोनों विजातीय ध्रुव हो तो आकर्षण पैदा हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में उत्तर की ओर सिरहाना न करने हेतु निर्देश दिए जाते हैं। भू–चुम्बकीय आधार पर ही वास्तुशास्त्र के अनुसार गृह ऐसी भारी–भरकम सामान को दक्षिण दिशा में स्थापित करने

का विधान है।

3. नाभिकीय बल– नाभिकीय उर्जा से अभिप्राय है कि नभस् में अर्थात् आकाश में व्याप्त उर्जा वैज्ञानिकों के अनुसार नाभिकीय बल में परमाणुओं के परस्पर घर्षण वशात् उत्पन्न उष्मा एवं उष्णता समस्त ब्रह्माण्ड में फैल गई। इसी से ताप और तेज की उत्पत्ति तथा नक्षत्रावली की रचना हुई है। इस समस्त नाभिकीय उर्जा का प्रमुख कारण भगवान् सूर्य हैं। भारतीयों के लिए देवस्वरूप, जीवनदाता, वैज्ञानिकों के लिए अग्नि पिण्ड एवं उर्जा का स्रोत है। प्रश्नोपनिषद् के अनुसार ''**प्राणः प्रजानाम्**'' प्राणीमात्र का प्राण कहा गया है। ''**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'' निरोगी काया हेतु भगवान् भास्कर की शरण में जाओ।

अथर्ववेद में '' **उद्यन्तसूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्**'' उदित होता सूर्य मृत्यु के पाशों से रक्षा करता है। अर्थात् उदयकालीन सूर्य की शरण समस्त रोगों का शमन करता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि

''**उद्यन्नद्य मित्रामह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।**
हृदरोगं मम सूर्यं हरिमाणं च नाशय।।''

उदयकालीन सूर्य की शरण में जाने प्र समस्त हृदय के रोग पीलिया, रक्त की कमी को दूर करके स्वस्थ करता है।

अथर्ववेद के अनुसार–'' **अनसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च तो गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दधमसि**'' अर्थात् सूर्य की पराबैंगनी किरणें हृदय के रोगों को शरीर में रक्त की अल्पता का शमन करती है। ऋग्वेद में सूर्य की सात रंग की किरणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि–''**अद्युक्षत् पिप्युषीमिषम् उर्जं सप्तपदीमरिः सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः**'' अर्थात् सूर्य के सात रंग किरणें है उनसे सात प्रकार के रंग और सात प्रकार की उफर्जा हमें प्राप्त होती है। ये सात प्रकार की रश्मियाँ अपनी गति और स्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं और विषाणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखती है। यही कारण है कि भारतीय वास्तुशास्त्रा भूखण्ड में निवास करने वालों को आदेशित करता है कि प्राकृतिक शक्तियों का अध्कितम उपयोग किया जाए। इसलिए भूखण्ड की उँचाई–नीचाई के आधार पर वास्तुशास्त्र अलग अलग दिशाओं के अनुसार अलग अलग भवन स्वामियों को दिशा का निर्धारण करके उत्तर एवं पूर्व मुखी भूखण्ड को अत्यधिक प्राथमिकता देता है ताकि अधिक से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग हो सके। क्योंकि धरा मण्डल पर सूर्य ग्रह ही प्राकृतिक उर्जा का प्रमुख स्रोत है और सूर्य की उर्जा में समस्त विषाणुओं एवं रोगों को नष्ट करने की क्षमता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

प्र.1–वास्तुशास्त्रा प्रकृति में प्रमुख बल कितने हैं?

क 2 ख 5 ग 3 घ 6

प्र.2–गुरुत्वाकर्षण का अर्थ होता है?

क गुरूजी का बल, ख भारी भरकम बल,
ग गुरुजी का खींचना, घ उपुर्यक्त में से कोई नहीं

प्र.3–पृथ्वी के कितने ध्रुव हैं?
क 4 ख 10 ग 8 घ 02

प्र.4–विकर्षण कब होता है?
क सजातीय ध्रुव में ख विजातीय ध्रुव में
ग सजातीय–विजातीय में घ किसी में नहीं

प्र.5– आकर्षण कब होता है?
क विजातीय ध्रुव पर ख सजातीय ध्रुव में
ग सजातीय–विजातीय में घ उपर्युक्त में से कोई नहीं

1.1.3 भूखण्ड चयन

पूर्व खण्डों में भूमि के विषय में विस्तार से उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार की भूमि का चयन करना चाहिए। क्योंकि भूमि मानव समाज के लिए आधर है अतः सर्वप्रथम भूखण्ड चयन करने से पूर्व हमें भूमि का परीक्षण, भूमि के प्रकार, मिट्टी का परीक्षण, मिट्टी की गुणवत्ता, दिशा का चयन इत्यादि भूखण्ड के लिए आवश्यक मूल भूत सिद्धान्तों को जानकर, भूखण्ड के समीपस्थ वातावरण एवं वहाँ के निवासित समाज और क्षेत्रा विशेष की जलवायु, आचार–विचार को अच्छी तरह जाँच एवं परखकर भूखण्ड का चयन करना चाहिए। भूखण्ड के समीपस्थ पीपल, वरगद, सेंमल, काँटेदार वृक्ष इत्यादि नहीं होने चाहिए। पूजनीय वृक्षों के आस–पास सदैव देववास रहता है चूँकि सुखी–समृद्ध गृहस्थ को परस्पर रजोगुणी होना आवश्यक है। अतः ऐसे वृक्षों के समीपस्थ भूखण्ड के वास करने पर व्यक्ति विरक्ति की ओर अग्रसारित रहता है। इसी प्रकार सेंमल वृक्षों पर उल्लू जैसे पक्षियों का वास होने के कारण प्रायः उस भूखण्ड विशेष पर वास करने वाले लोगों का मन भयातीत रहता है। अतः आवश्यक है कि भूखण्ड चयन में वास्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। ताकि सुखी एवं समृद्ध जीवन यापन किया जा सके। भूखण्ड का चयन करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि भूमि किस दिशा में उँची तथा किस दिशा में नीची है। अर्थात् भूमि का प्लवत्व या ढलान किस दिशा में है और भिन्न दिशाओं एवं उपदिशाओं में भूमि की ढलान का होने का क्या पफल होगा– निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है।

1. यदि भूखण्ड भूमि का ढलान पूर्व दिशा की ओर हो तो ऐसे घर में निवास करने वाले गृहपति की श्री और लक्ष्मी का लाभ सर्वांगीण विकास तथा पुत्र सन्तति की प्राप्ति होती है अर्थात् वंशवृद्धि होती है।
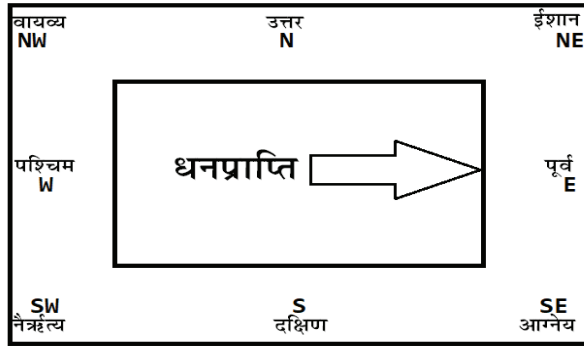
2. यदि भूमि का ढलान आग्नेय कोण की ओर हो तो ऐसे भूखण्ड पर गृह निर्माण करने पर निवास करने वाले को दाह, आगजनी आदि दुर्घटनाओं की सम्भावनाएँ अधिक रहेंगी।
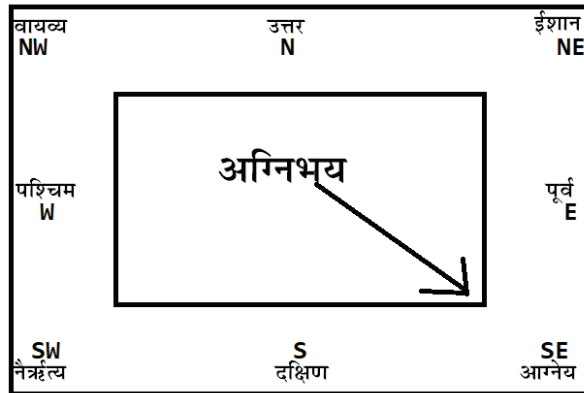
3. वास्तु भूखण्ड का ढलान दक्षिण की ओर हो तो ऐसे भूखण्ड पर भवन बनाने वाले गृहपति की मृत्यु होती है अथवा मृत्यु तुल्य कष्ट होता है।
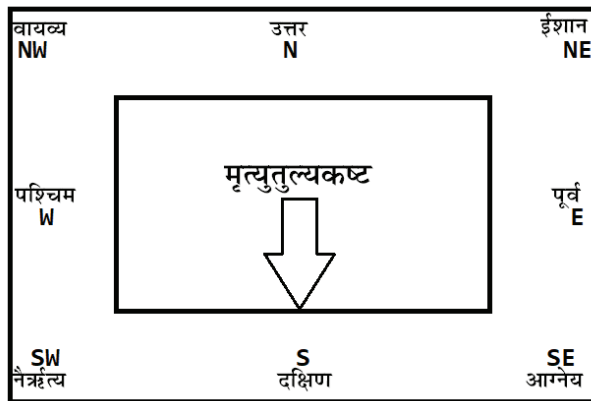
4. वास्तु भूखण्ड का ढलान यदि नैर्ऋत्यकोण की ओर हो तो ऐसे स्थान पर वास करने वाले को धन हानि होती है। साथ ही ऐसे घर के निवासियों को आकस्मिक दुर्घटना, दुर्व्यसन और दीर्घकालीन का सामना करना पड़ता है।
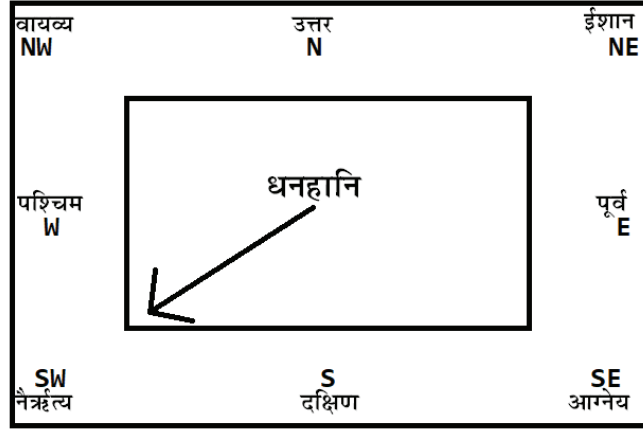
5. जिस भूमि का ढलान पश्चिम की ओर होता है उस भूखण्ड पर निवास बनाने पर धन–धान्य की हानि तथा सन्तान हानि जैसे कष्टों का सामना करना पड़ता हैं।
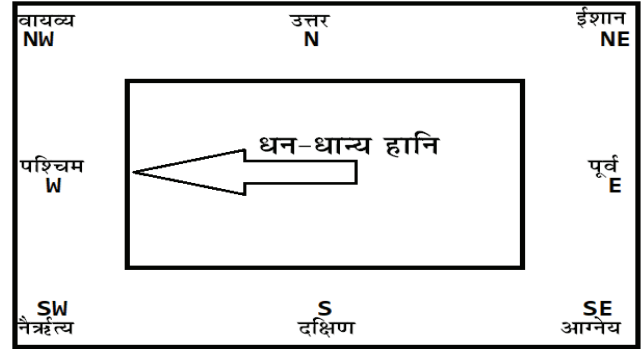
6. जिस वास्तु भूमि का ढलान वायव्य कोण की ओर होता है उस भूखण्ड पर निवास करने पर प्रवास में रहना पड़ता है। वाद–विवादों में उलझना पड़ता है तथा परिजनों में अकाल मृत्यु का भय भी रहता है।
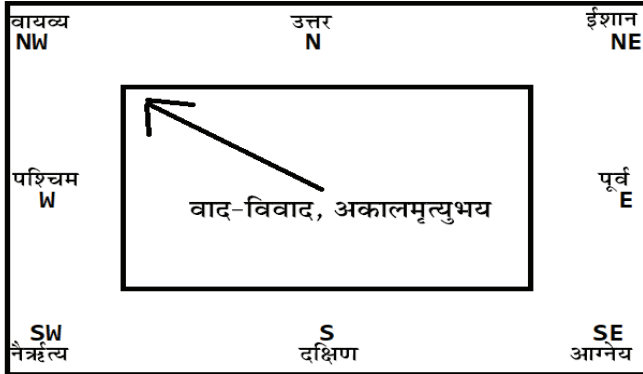
7. जिस वास्तु भूमि का ढलान उत्तर की ओर होता है ऐसे भूखण्ड पर निवास करने पर धन–धान्य, आयु–आरोग्य तथा सुख शान्ति की प्राप्ति होती है।
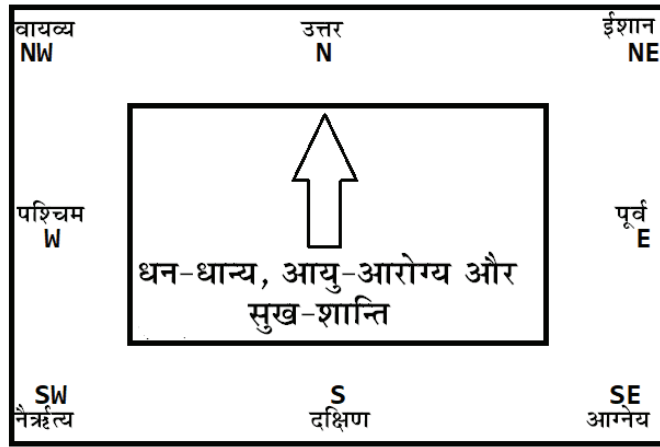
8. जिस वास्तु भूमि का ढलान ईशान कोण की ओर होता है उस भूखण्ड पर निर्माण करने पर लक्ष्मी, ज्ञान, सुख–सम्पत्ति, आरोग्य, ऐश्वर्य का विशेष अनुग्रह प्राप्त होता है।
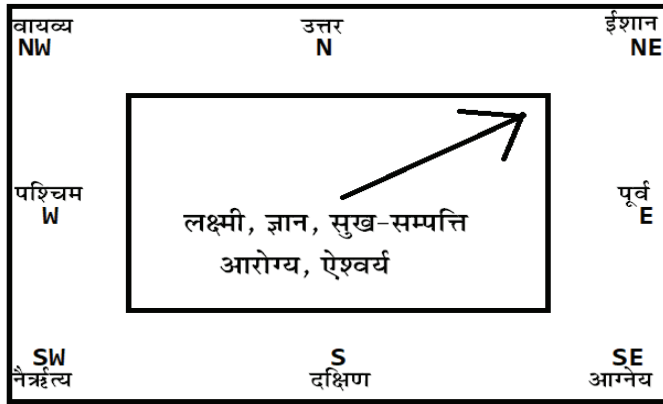
9.जिस वास्तु भूमि का ढलान चारों दिशाओं में हो और मध्य में उठी हुई हो उस पर वास करने वाले को अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है तथा बन्धन आदि से पीड़ा होती है।
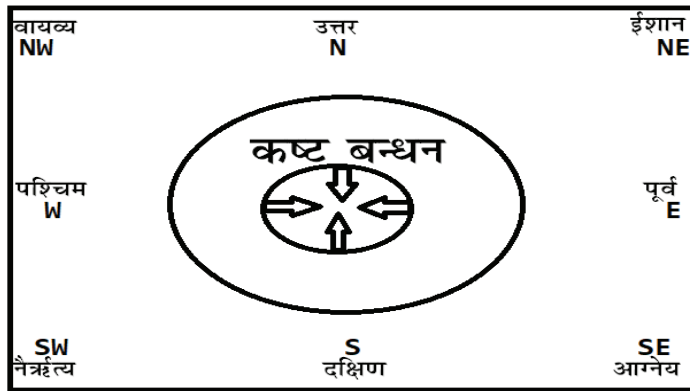
अभ्यास प्रश्न

प्र.1–भूखण्ड के समीपस्थ पीपल, वरगद का पेड़ शुभ होता है। सत्य/असत्य

प्र.2– पूजनीय वृक्षों के पास सदैव देवताओं का वास रहता है। सत्य/असत्य
प्र.3–भूखण्ड का ढलान पूर्व दिशा में होकर सुख–शान्ति एवं समृद्धि दायक होता है सत्य/असत्य
प्र.4–दक्षिण ढलान वाले भूखण्ड पर निवास करने पर गृहपति की मृत्यु होती है। सत्य/असत्य
प्र.5–मध्य से उठी हुई भूमि और चारों तरफ ढलान वाली बन्धन पीड़ा दायक नहीं होती है। सत्य/असत्य

1.4. सारांश–

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो यह है कि जिस वास्तु भूमि पर भवन निर्माण करना हो तो ईशान कोण सबसे अध्कि झुका हुआ तथा नैर्ऋत्य कोण सबसे उफँचा उठा हुआ होना चाहिए। ऐसे भूखण्ड में भवन निर्माण करने पर और निवास करने पर सुख–शान्ति समृद्धि में भाग्य की अभिवृद्धि होगी। वास्तु के मध्य में समस्त हिस्से का पृष्ठ पीठ कहा जाता है। भूमि को विभिन्न दिशाओं में उँचाई के आधार पर उस वास्तु भूमि को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है। 1. गजपृष्ठ, 2.कूर्मपृष्ठ, 3.दैत्यपृष्ठ, 4. नागपृष्ठ।

1. गजपृष्ठ– जब वास्तु भूमि का दक्षिण–पश्चिम, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोण उँचा उठा हुआ हो तो ऐसी भूमि को गजपृष्ठ भूमि कहते हैं। ऐसे भूखण्ड पर निवास करने वाले को निरन्तर लाभ की प्राप्ति एवं सुख–समृद्धि बनी रहती है।

2. कूर्मपृष्ठ– जो वास्तु भूमि चारों ओर से झुकी हुई और मध्य में उठी हुई हो ऐसी भूमि को कूर्मपृष्ठ भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि पर निवास करने पर निरन्तर उत्साह, सुख–समृद्धि एवं धन्य की अभिवृद्धि होती है।

3. दैत्यपृष्ठ– जब वास्तु भूमि ईशान, आग्नेय तथा पूर्वदिशा में उँची तथा पश्चिम दिशा में नीची हो तो इस प्रकार की भूमि को दैत्यपृष्ठ भूमि कहा जाता है। इस प्रकार के भूखण्ड पर निवास करने पर ध्न–धन्य, सुख–समृद्धि की हानि होती है।

4. नागपृष्ठ– जो भूखण्ड पूर्व एवं पश्चिम दिशा में लम्बी एवं दक्षिण दिशा में उँची तथा बीच में नीची हो तो ऐसी भूमि को नागपृष्ठ भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि पर निवास करने पर स्त्राी हानि, मृत्युभय, सन्तानभय तथा शत्रुवृद्धि होती है।

और भूमि के विषय में कहा गया है कि गृह निर्माण योग्य भूमि का चयन विशेष रूप से करने के उपरान्त करना चाहिए।

सचिवालयेर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः।।
चैत्ये भयं गृहकृतं वल्मीकिश्वभ्र सघ्कुले विपदः।
गर्तायान्तु पिपासा कूर्माकारे धन विनाशः।।

अर्थात् राजमन्त्री के घर के पास धननाश, पाखण्डी के घर के पास पुत्रहानि, देवालय के समीप घर निर्माण करने पर उच्चाटन, चौराहे के समीप अपवाद और वाद में अपयश की प्राप्ति, चैत्य अर्थात् ग्राम प्रधान वृक्ष के पास जहाँ ग्रामवासी बैठते हों वहाँ निवास करने पर

भूतबाध होती है। पक्षियों का घोंसला, खोखला या कोटर, आदि से युक्त या विकृत वृक्ष, वल्मीक युक्त भूमि, विवारबाहुल्यभूमि, गर्त गहरा गड्डा के समीपस्थ निवास से पिपासा में वृद्धि होाती है। तथा कूर्मपृष्ठ जैसी भूमि पर निवास करने पर धन–धान्य का नाश होता है। अतः जीवन में गृहनिर्माण एक ही बार होता है। अतः शास्त्र सम्मत नियमानुसार विचार करने के उपरान्त गृह निर्माण हेतु भूखण्ड चयन करना चाहिए।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

परगेह = दूसरे के घर पर,
कृताः = सम्पन्न किया गया
सर्वाः = सभी क्रियायें
श्रौत = श्रुतियों के अनुसार
स्मार्त = स्मृतियों के अनुसार
क्रिया = क्रियार्थ कार्य
शुभाः = मंगल कार्य
दुष्कर = कठिन
पृथिव्या= भूमि पर
पुत्राोऽहं = मैं पुत्र हूँ
भूम्यां = भूमि में
देवेभ्यः = देवताओं को
हव्यमरं = हवनक्रिया
स्वध्या = पितरों के निमित्त कार्य
मर्त्या = मृत्युलोक
ददातु = देते हैं।
जरदिष्टं = वृद्ध में अच्छा
नागपृष्ठ = नाग के पीठ
गजपृष्ठ = हाथी की पीठ
धूर्तगृहे = मूर्ख का घर
अर्थनाशः = धन नाश
गर्ताम् = गड्ढा
सघकुले = सिकुडी
निष्पफलाः = व्यर्थ फलरहित
स्युः = होवें
तासाम् = उनकी
भूमीश = भूमिपति, मालिक
फलमश्नुते= फल को प्राप्त करता है।
भूखण्ड = भू–भाग
वर्णानुसार = ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य वर्ण
कृणोतु = करें
अग्निर्वैः = अग्नि
पुरुषोऽयं = यह पुरुष
कथयिष्यति= कहेगा
गुरुत्वाकर्षण = जैसे गुरु के द्वारा स्वकर्षण
आकर्षण = अपनी ओर खिंचाव
विकर्षण = दूसरी ओर खिंचाव
मृत्युपाशान = मृत्यु के पाश कौड़े
उद्यन्तसूर्यः = उगता हुआ सूर्य
रश्मिभिः = सूर्य किरणें
कूर्मपृष्ठ = कछुए की पीठ के समान
दैत्यपृष्ठ = दैत्य की पीठ
उद्वेगः = विपरीत वेग उच्चाटन
वल्मीकश्वभ्र = वल्मीक भूमि
चैत्यः = प्रधानवृक्ष

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उपखण्ड एक 1.1.1

प्र. उत्तर 1– दूसरे के घर पर किए गए शुभ कार्यों का फल भूमिपति को प्राप्त होता है। इस लिए दूसरे के घर पर रह कर किए गए समस्त कार्यों का फल कभी भी प्राप्त नहीं होता है। अतः गृह निर्माण करना चाहिए।

प्र.उत्तर 2– भूमीशः फलमश्नुते से तात्पर्य यह है कि भूमि पर किए गए समस्त शुभ फल भूमिपति को प्राप्त होते हैं।

प्र.उत्तर 3– पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पंचमहाभूत है।

प्र.उत्तर 4– दक्षिण में भारी भरकम वस्तुएँ इसलिए रखनी चाहिए क्योंकि पृथ्वी ध्रुव और दक्षिण ध्रुव के उपर स्थित है। उत्तर से दक्षिण की ओर चुम्बकीय तरंगों कर गमन वशात् दक्षिण को भूमि का आधार मानकर भारी भरकम वस्तुएँ दक्षिण में रखनी चाहिए।

प्र.उत्तर 5–भवन निर्माण में जल की मात्रा 80 प्रतिशत रहती है।

उपखण्ड दो 1.1.2 के उत्तर

प्र.1. ग 2. ख 3. घ 4. क 5. क

उपखण्ड तीन 1.1.3 के उत्तर

प्र.1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2. वास्तुरत्नावली, श्रीजीवनाथ दैवज्ञ, सम्पादक डॉ. श्रीकृष्ण जुगनु, 2009 चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली।

3. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल विरचित, सम्पादक आचार्य कमलकान्त शुक्ल, 1999 सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. मयमतम्, दानवराज मय कृत, व्याख्यातृ डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2013 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

5. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण जुगनु, 2005 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

1.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

प्र.1 कर्मपृष्ठ भूमि के लक्षण उदाहरण देकर भूमि की उपयोगिता सिद्ध करें।
प्र.2 पंचमहाभूतों का संक्षिप्त परिचय दें।
प्र.3 भूखण्ड चयन में कौन कौन सी मुख्य विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। सविस्तार उल्लेख करें।
प्र.4 भूखण्ड के प्लवत्व का उल्लेख करते हुए वास्तुशास्त्रा में प्लवत्व की आवश्यकता पर बल दें।
प्र.5 नैर्ऋत्यकोण की ओर ढलान वाली भूमिका विस्तार से उल्लेख करें।

इकाई – 2 भूमि के प्रकार

इकाई की रूपरेखा -

2.1 प्रस्तावना -

पिछली इकाईयों में आपने वास्तु के विषय में तथा वास्तु के भेदादि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया इस इकाई में आपको प्रस्तावित करने जा रहे हैं कि भूमि के कितने प्रकार है तथा वास्तु की दृष्टि से भूमि के कौन से प्रकार का क्या फल है। किस आकार की भूमि त्याज्य है तथा कौन से आकार की भूमि पर भवननिर्माण करना शुभ होता है। भारतीय वास्तुशास्त्र बुद्धिजीवी मानवों को धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति के लिए भवननिर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र है। पंचमहाभूतों मे गृहनिर्माण का मुख्य आधर पृथ्वी है। यह पृथ्वी ही समस्त ब्रह्माण्ड में मावन के लिए सुविध एवं सुरक्षा से युक्त वास्तुनिर्माण का आधार प्रदान करती है। भूखण्ड का चुनाव भवन निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। आवासीय वास्तु, व्यवसायिक वास्तु तथा देववास्तु तीनों प्रकार के वास्तुकर्म में श्रेष्ठ भूखण्ड का चुनाव सुख-समृद्धि प्रदान करने वाला होता है। वास्तुशास्त्र में भूखण्ड के परीक्षण तथा शुभ भुखण्ड का चुनाव करने की अनेक विधियों का प्रतिपादन किया गया है। इस इकाई में भूखण्ड के विविध् प्रकारों का वर्णन किया गया है।

2.2 उद्देश्य -

1. इस इकाई प्रमुख उद्देश्य है, भूमि के विविध् प्रकारों का ज्ञान। गृहनिर्माण से पूर्व उचित भूखण्ड का चयन करना परमावश्यक है। वास्तुशास्त्र में भूमिचयन से पूर्व भूमि परीक्षण के अनेक सिद्धान्त बताए गए है। उन सिद्धान्तो का वर्णन इस इकाई में किया गया है।
2. भुमि का प्रथम प्रकार है, भूमि का ढलान। वास्तुशास्त्रा में भूमि के ढलान के आधर पर शुभाशुभत्व विचार किया जाता है। भूमि का आठ दिशाओं में आठ प्रकार का होता है। प्रत्येक दिशा में ढलान का क्या फल इसका विचार इस इकाई में किया गया है।
3. भूमि का शुभाशुत्व विचार भूखण्ड की आकृति के आधर पर भी किया जाता है। वास्तुशास्त्रा में भूमि की 12 आकृतियां होती है - आयताकार, चतस्राकार, वृत्ताकार, भद्रासनाकार, चक्रफाकार, विषमाकार, त्रिकोणाकार, शकटाकार, दण्डाकार, सूपाकार तथा धनुषाकार। भूखण्ड की इन आकृतियों का वर्णन तथा इन पर गृहनिर्माण के फल का वर्णन इस इस ईकाई के माध्यम से करवाने का प्रयत्न किया गया है।
4. उक्त प्रकारों के अतिरिक्त कूर्मपृष्ठ, दैत्यपृष्ठादि भी भूमि की आकृतियां जिनका यथाशास्त्र विचार कर भूखण्ड का चयन करना चाहिए। इस प्रकार भूमि के समस्त प्रकार तथा उनके शुभाशुभत्व का विचार इस इकाई में किया गया है।

2.3 मुख्य भाग खण्ड -1

2.3.1 प्लव ढलान के आधर पर भूमि के प्रकार -

वास्तुशास्त्र में भूमि के प्लवत्व अथा ढलान का विशेष महत्व है, अतः गृहनिर्माण में प्रवृत्त होने से पूर्व भूमि के ढलान पर विचार करना चाहिए। वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि के आठ दिशाओं में आठ ढलान होते है - पूर्व, आग्नेय, दक्षिण नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान। बृहद्वास्तुमाला में आठ प्रकार के प्लवत्व का फल इस प्रकार है -

श्रियं दाह तथा मृत्युं ध्नहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं ध्नलाभं च विद्यालाभं व्रफमेण च।।
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतत्पराः।।

अर्थात् पूर्व दिशा की भूमि ढालदार हो तो एसी भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहकर्ता धनलाभ होता है। अग्निकोण की दिशा में ढलान होने से दाह, दक्षिण दिशा में ढलान होने से मृत्यु, नैर्ऋत्य दिशा में ढलान होने से धननाश, पश्चिम दिशा में ढलान होने से पुत्राहानि, वायव्य दिशा में ढलान होने से परदेस में निवास, उत्तर दिशा में ढलान होने से धनागम तथा ईशान दिशा में भूमि के ढलदार होने से विद्यालाभ होता है। मध्य में ढलान अर्थात मध्य में गढ्ढे वाली भूमि कष्टदायक होती है। अन्यमतानुसार पूर्व दिशा ही ओर ढलान वाली भूमि वृद्धि करने वाली, उत्तर की ओर ढलान वाली भूमि ध्न-धन्य देने वाली, पश्चिम की ओर ढलान वाली भूमि अर्थ अर्थात ध्न का नाश करने वाली तथा दक्षिण की और ढलान वाली भूमि गृहपति की मृत्यु का कारण होती है। यथा -

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरीं विद्यात् पश्चिमप्लवना ततः।

उक्त विवेचन के अनुसार पूर्व, उत्तर तथा ईशान कोण की ओर ढलान वाली भूमि पर गृहनिर्माण करना शुभ हेता है।

वास्तुशास्त्र में बाह्मण क्षत्रिय आदि वर्ण के अनुसार भी प्लव विचार किया गया है। इसके अनुसार उत्तर की ओर ढलान वाली भूमि ब्राह्मण वर्ण के लिए, क्षत्रियों के लिय पूर्व की ओर ढलान वाली, वैश्य के लिए दक्षिण की ओर ढलान वाली तथा शूद्रवर्ण के लिए पश्चिम की ओर ढलान वाली भूमि शुभ होती है। इस प्रकर यथाशास्त्रा भूमि के प्लव का विचार कर तत्पश्चात उस पर गृह निर्माण करना चाहिए।

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1. भूमि के ढलान कितने प्रकार के हैं?
2. दक्षिण की और ढलान वाली भूमि पर गृह निर्माण का क्या पफल है?
3. वायव्य दिशा की और ढलान वाली भूमि पर गृह निर्माण करना शुभ है अथवा अशुभ?
4. मध्य में गढ्ढे वाली भूमि पर गृहनिर्माण का क्या पफल है।
5. कौन सी दिशा की ओर ढलान वाली भूमि क्षत्रिय वर्ण के लिए शुभ हाती है?

2.3.2 आकृति के आधर पर भूमि के प्रकार -

भूमिचयन करते समय दिक्प्लवत्व का विचार करने के पाश्चात आकार के आधर पर भूमि का परीक्षण करना चाहिए। यद्यपि आधुनिक युग में विभिन्न संस्थाओं/ नगर विकास प्राध्किरणों द्वारा ही भूखण्ड, भवन प्लैट, आवासीय एवं व्यावसायिक भवनों का निर्माण कर उपलब्ध् कराए जाते है। अतः वास्तुशास्त्रासम्मत भूखण्ड की प्राप्ति भाग्यवशात् ही संभव है। परन्तु यदि भूखण्ड खरीए कर भवन बनाया जा रहा हो तो उसकी आकृति का अध्ययन कर उस पर घर बनाना चाहिए। वास्तुशास्त्रा के अनुसार भूमि के बारह आकार होते है- आयताकार, चतस्रकार, वृत्ताकार, भद्रासनाकार, चव्रफाकार, विषमाकार, त्रिकोणाकार, शकटाकार, दण्डाकार, सूपाकार तथा ध्नुषाकार। वास्तुशास्त्रा के अनुसार इनका पफल इस प्रकार है-

आयते सियस्सर्वाश्चतस्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धि स्याद्भद्रं भद्रासने भवेत्।
चव्रफे दारिद्र्यमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम्।
राजभीतिस्त्रिाकोणे स्याच्छकटे तु ध्नक्षयः।।
दण्डे पशुक्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयः।
गोव्याघ्रबन्धने पीडा धनुः क्षेत्रो भयं महत्।।

आयताकार - आयताकार भूखण्ड दो प्रकार के होते है। समायतचतुर्भुज तथा विषमायतचतुर्भुज। जिस भूमि की आमने सामने की भुजाएं समान अन्तर पर हो तथा चारों कोण सम हो वह भूमि समायतचतुर्भुजाकार भूमि कहलाती है। यदि आमने समने की भुजाएं समान अन्तर पर हो परन्तु कोण सम ना हो वह भूमि विषमायतचतुर्भुज होती है। समायतचतुर्भुत भूमि सर्वसिद्धिदायक अर्थात सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है। विषमायताकार भुमि गृहनिर्माणार्थ शुभ नहीं होती, परन्तु यदि अत्यन्त आवश्यक हो तो भूमि में उचित संशोध्न कर गृहनिर्माण किया जा सकता है।

वर्गाकार - जिस भूमि की लम्बाई तथा चैडाई समान हो तथा चारों कोण समकोण हो वह भूमि

वर्गाकार कहलाती है। वास्तु शास्त्रा के अनुसार यह भूमि गृह निर्माण के लिए सर्वश्रेष् होती है। एसे आकार वाली भूमि पपर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी को ध्न की प्राप्ति होती है।

वृत्ताकार - जो भूमि गोलाई वाली हो वह वृत्ताकार भूमि कहलाती है। वृत्ताकार भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी तथा गृह में रहने वाले लोगों की बुद्धि वृद्धि होती है।

भद्रासन - वर्गाकार भूखण्ड में जब भूमि की लम्बाई तथा चैडाई बराबर हो तथा मध्य में भूमि समतल हो वह भुमि भद्रासन कहलाती है। भद्रसनाकार भूमि पर गृहनिर्माण करने से सर्वविध् कल्याण होता है।

चकार - जिस भूमि में अनेक कोण अनेक भुजाएं हो परन्तु चव्रफाकार प्रतीत हो वह भूमि चव्रफाकार होती है। चव्रफाकार अथवा सुदर्शन चव्रफवत् भूमि पर गृहनिर्माण करने से दरिद्रता आती है। इस पर आवास करने से ध्न की कमी उत्पन्न होती है परन्तु यदि इस पर व्यवसाय की दृष्टि से व्यावसायिक भवन बनाया जाए तो शुभ होता है।

विषमाकार - जिस भूमि की कोई भी भुजा समान ना हो अथवा उॅची-नीची हो वह भूमि विषमाकार कहलाती है। एसी भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी को शोक की प्राप्ति होती है।

त्रिकोणाकार - जिस भूमि की केवल तीन भुजाएं हो वह भूमि त्रिकोणाकार कहलाती है। त्रिकोणाकार भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी को राजभय अर्थात सरकार अथवा शासन से किसि प्रकार का भय रहता है।

शकटाकार - शकट अर्थात गाडी के आकार वाली भूमि शकटाकार भूमि कहलाती है। एसी भूमि पर घर बनाने से गृहस्वामी के ध्न का नाश होता है।

दण्डाकार - दण्ड अर्थात डंडे के आकार ;जिसकी लम्बाई अध्कि हो तथा चैडाई कमद्ध वाली भूमि दण्डाकार भूमि कहलाती है। एसे आकार वाली भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी के पशुओं का नाश होता है।

अर्धवृत्ताकार - वृत्त के आधे आकार वाली भूमि अर्धवृत्ताकार कहलाती है। इस भुमि गृहनिर्माणार्थ अशुभ होती है।

धनुषाकार – धनुष के आकार वाली भूमि धनुषाकार भूमि कहलाती है। एसे आकार वाली भूमि पर गृहनिर्माण करने से गृहस्वामी को महान् भय होता है।

इस प्रकार भूमि का आकार देखकर शास्त्रोक्त शुभ आकार वाली भूमि पर गृहनिर्माण करना शुभ होता है। आयताकार, वर्गाकार, वृत्ताकार तथा भद्रासन ये चार प्रकार के आकार वाली भूमि गृहनिर्माण के लिए शुभ तथा सभी प्रकार की सि(यों तथा सर्वविध् सुखों को प्रदान करने वाली होती है।

लघूत्तरीय प्रश्न -

1. आकार के आधर पर भूमि के कितने भेद हैं?
2. वर्गाकार भूमि पर गृहनिर्माण का क्या पफल होता है?
3. कौन से आकार वाली भूमि गृहनिर्माण हेतु शुभ होती है?
4. किस आकार की भूमि पर गृहनिर्माण करने से दरिद्रता आती है?
5. दण्डाकार भूमि की आकृति कैसी होती है?

2.3.3 यमवीथी जलवीथी आदि भूमि के प्रकार -

यमवीथि - जो भूमि पश्चिम में उॅफची तथा पूर्व में नीची हो वह यमवीथी कहलाती है। यह गृहनिर्माणार्थ शुभ होती है।

जलवीथी - जो भूमि पूर्व में उॅफची तथा पश्चिम मे नीची हो वह जलवीथी कहलाती है। यह भूमि अशुभ होती है।

यमवीथी - जो भूमि उत्तर की ओर उॅफची तथा दक्षिण की ओर नीची हो वह यमवीथी कहलाती है। एसी भूमि पर गृह निर्माण करना शुभ नही होता।

गजवीथी - जो भूमि पश्चिम में उॅफची तथा पूर्व मे नीची हो वह गजवीथी कहलाती है।

भूतवीथी - जो भूमि ईशान कोण में उॅफची तथा पूर्व नैट्र्टत्य कोण में नीची हो वह भूतवीथी कहलाती है।

नागवीथी - जो भूमि अग्निकोण में उॅफची तथा वायव्यकोण में नीची हो वह नागवीथी कहलाती है।

वैश्वानरी - जो भूमि वायव्यकोण की ओर उॅफची तथा पूर्व अग्निकोण की ओर नीची हो वह वैश्वानरी कहलाती है।

ध्नवीथी - जो भूमि ईशान नैट्र्टत्यकोण में उॅफची तथा ईशानकोण में नीची हो वह ध्नवीथी कहलाती है।

पितामहवास्तु - जो भूमि पूर्व तथा अग्निकोण के मध्य में उॅफची, पश्चिम तथा वायुकोण के मध्य में नीची हो वह पितामहावास्तु कहलाती है। एसी भूमि में निवास सुखद होता है।

सुपथवास्तु- अग्निकोण तथा पश्चिम में बीच में उफॅची वायव्यकोण एवं उत्तर के बीच में नीची भूमि को सुपथवास्तु कहते है। यह भूमि सभी कर्मो के योग्य होती है।

दीर्घायुवास्तु - जो भूमि उत्तर तथा ईशानकोण के मध्य में नीची, दक्षिण तथा नैट्र्टत्यकोण के मध्य में उॅफची हो वह दीर्घायु वास्तु कहलाती है। यह भूमि उत्तम तथा वंशवृ(िकारक होती है।

पुष्यकवास्तु - पूर्व तथा ईशानकोण के मध्य में नीची, पश्चिम तथा नैर्ऋत्य कोण के मध्य में उॅची भूमि पुष्यकवास्तु कहलाती है। यह भूमि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए सुखद होती है।

अपथवास्तु -जो भूमि पूर्व तथा अग्निकोण के मध्य में नीची, पश्चिम तथा वायव्यकोण के मध्य में उॅची हो वह अपथवास्तु कहलाती है। यह भूमि लडाई झगड़ा कराने वाली होती है।

रोगकरवास्तु - दक्षिण तथा अग्निकोण के मध्य में नीची, उत्तर तथा वायव्यकोण के मध्य में उॅची हो वह रोगकरवास्तु कहलाती है। यह भूमि गृहस्ववामी को रोग देने वाली होती है।

अंगलवास्तु - दक्षिण तथा नैर्ऋत्य कोण के मध्य में नीची, उत्तर तथा ईशानकोण के मध्य में उॅफची भूमि अंगलवास्तु कहलाती है। यह भूमि ब्रह्महत्या आदि पापों को नाश करन वाली होती है।

श्मशानवास्तु - पूर्व तथा ईशानकोण के मध्य में उॅफची, पश्चिम तथा नैर्ऋत्य कोण के मध्य में नीची भूमि को श्मशानवास्तु कहते है। यह भूमि कुलनाशक होती है।

शोकवास्तु - अग्निकोण में नीची, ईशान, वायव्य तथा नैर्ऋत्य कोण में उॅफची भूमि को शोकवास्तु कहते है। यह भूमि सम्पत्ति का नाश करने वाली तथा मृत्यु को देने वाली होती है।

श्वमुखवास्तु - नैर्ऋत्य कोण में नीची, ईशान अग्निकोण तथा पश्चिम में उॅची भूमि को श्वमुखवास्तु कहते है। यह भूमि निवासकर्ता को दरिद्र बना देती है। अन्य मत से यह भूमि शूद्रों के निवास हेतु शुभ होती है।

ब्रह्मघ्नवास्तु - पूर्व तथा वायव्यकोण में नीची, ईशान आग्नेय तथा नैर्ऋत्य कोण में उॅफची भूमि को ब्रह्मघ्नवास्तु कहते है। यह भूमि प्राणियों के निवास योग्य नहीं होती, एसी भूमि पर खेती आदि कार्य करने चाहिए।

स्थावरवास्तु - अग्निकोण में उॅफची, ईशान वायव्य तथा नैर्ऋत्य कोण में नीची भूमि को स्थावरवास्तु कहते है। यह भूमि सभी प्रकार से शुभ होती है।

स्थण्डिलवास्तु - नैर्ऋत्य कोण में उॅफची, ईशान वायव्य तथा आग्नेयकोण में नीची भूमि को स्थण्डिलरवास्तु कहते है। यह स्थिरता प्रदान करने के कारण शुभ है।

शाण्डुलवास्तु - इशानकोण में उॅफची, नैर्ऋत्य वायव्य तथा आग्नेयकोण में नीची भूमि को शानडुलवास्तु कहते है। यह भूमि सर्वथा निवास के अयोग्य होती है।

सुस्थानवास्तु - वायव्यकोण में नीची, ईशान नैर्ऋत्य तथा आग्नेयकोण में नीची भूमि को सूस्थानवास्तु कहते है। यह भूमि ब्राह्मणों के लिए शुभ होती है।

सुतलवास्तु - पूर्व में नीची, नैर्ऋत्य वायव्य तथा पश्चिम में उॅची भूमि को सुतलवास्तु कहते है। यह भमि क्षत्रियों के लिए हितकारी होती है।

चरवास्तु - - दक्षिण में नीची, उत्तर ईशान एवं वायव्य में उॅची भूमि को सुतलवास्तु कहते है। यह भूमि वैश्यवर्ण के लिए विशेष लाभदायक होती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य -

1. भूमि पूर्व में उॅची तथा पश्चिम मे नीची हो वह जलवीथी कहलाती है। सत्य/असत्य
2. अंगलवास्तु भूमि ब्रह्महत्या आदि पापों को नाश करने वाली होती है। सत्य/असत्य
3. सूस्थानवास्तु भूमि ब्राह्मणों के लिए अशुभ होती है। सत्य/असत्य
4. अग्निकोण में नीची, ईशान, वायव्य तथा नैर्ऋत्यकोण में उॅची भूमि को शोकवास्तु कहते है। सत्य/असत्य
5. उत्तर की ओर नीची भूमि पर गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए। सत्य/असत्य

2.3.4. कूर्मपृष्ठादि भूमि के प्रकार तथा फल -

भूमि के आकार का प्रभाव आवासीय, व्यवसायिक व धार्मिक तीनों पर पृथक्-पृथक् होता है। भूखण्ड की जिन आकृतियों की चर्चा की गई हैं, उनके अतिरिक्त और भी भूमि के प्रकारों का वर्णन वास्तुशास्त्रा के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। भमि के अन्य आकार इस प्रकार है -

कूर्मपृष्ठ भूमि - मध्यभाग से उफॅची तथा चारो दिशाओं में नीची भूमि कूर्मपृष्ठ ;कछुए की आकृति वालीद्ध भूमि कहलाती है। एसी भूमि निवास योग्य होती है। वास्तुशास्त्रा के अनुसार कूर्मपृष्ठ भूमि पर निवास करने से प्रतिदिन उत्साहवर्धन होता है, सुख की प्राप्ति होती है तथा धन-धान्य की वृद्धि होती है।

दैत्यपृष्ठ भूमि - पूर्व, ईशान तथा आग्नेयकोण में उफॅची तथा पश्चिम में नीची भूमि दैत्यपृष्ठ भूमि कहलाती है। दैत्यपृष्ठ भूमि पर यदि निवास करे तो उस गृह में लक्ष्मी कभी प्रवेश नही करती तथा धन-धन्य, पुत्रा पशुओं का भी विनाश होता है।

नागपृष्ठ भूमि - पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में उॅफची भूमि को नागपृष्ठ भूमि कहते है। एसी भूमि निवासकर्ता के मन का उच्चाटन करती है। अर्थात उस घर में रहने पर कभी शान्ति नहीं मिलती। अन्यमतानुसार पूर्वाक्त नागपृष्ठ के लक्षणों वाली भूमि पर निवास करने से गृहपति की मृत्यु, स्त्री हानि, पुत्र नाश, पद-पद पर शत्रुओं का भय बना रहता है।

गोमुखी - जिस प्रकार गौ की आकृति पीछे से चौडी तथा मुख के पास क्रमशः छोटी होती जाती है, उसी प्रकार जो भूखण्ड मार्ग की और से कम चैडा तथा पीछे की तरफ से अधिक चौड़ा हो वह गोमुखी भूमि कहलाती है। इस प्रकार की भूमि आवासीय घर बनाने के लिए उत्तम होती है।

इस प्रकार वास्तुशास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थों में भूमि के विविध् प्रकार आकृति ढलानादि के आधार पर बताए गए है। इन विविध् आकारों का भूमि चयन के समय यथाशास्त्र विचार कर भूमि का चयन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भमि की गुणवत्ता के आधर पर भी भूमि के कृछ प्रकार हैं, जो इस प्रकार से है- पफटी हुई, शल्य युक्त, दीमकों से व्याप्त, तथा अध्कि उॅफची-नीची भूमि को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, एसी भूमि ध्न एवं आयु का नाश करती है। अन्यमतानुसार पफटी हुई भमि से मरण, उशर से ध्ननाश, शल्ययुक्त भूमि से सदा क्लेश। अध्कि उॅफची-नीची भूमि से शत्रु वृद्धि, शमशान जैसी भूमि से भय, दीमकों से व्याप्त भूमि से विपत्ति तथा गढ्ढों वाली भूमि से विनाश होता है।

व्यवहारिक रूप से यदि विचार किया जाए तो गृहनिर्माण के लिए कठोर भूमि सर्वाधिक श्रेष्ठ होती है। भूमि जितनी अध्कि कठोर होगी भवन की नीव उतनी ही मजबूत होगी तथा अतिवृष्टि भूकम्पादि से घर को किस प्रकार के नुकसान होने की सम्भावनाएं कम रहती है।

बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर -

1. निम्नलिखित में से कौन सा वास्तु का प्रकार नहीं है -

क. आवासीय वास्तु ख. धर्मिक वास्तु

ग. वाहन वास्तु घ. व्यावसायिक वास्तु

2. निम्न में से कौन सा भूमि का प्रकार नहीं है -

क. गोमुखी ख. चन्द्रमुखी

ग. कूर्मपृष घ. दैत्यपृष

3. पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में उॅफची भूमि होती है -

क. दैत्यपृष ख. गोमुखी

ग. कूर्मपृष घ. नागपृष

4. वास्तु की दृष्टि से भवन निमाण हेतु सर्वोत्कृष्ट भूमि कौन सी है-

क. कठोर भूमि ख. रेतिली भूमि

ग. शल्य से युक्त भूमि घ. उर्फची-नीची भूमि

5. नागपृष्ठ भूमि होती है-

क. पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में उॅफची

ख. पश्चिम की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में नीची

ग. पश्चिम की ओर लम्बी, उत्तर तथा पश्चिम में उॅफची

घ. पूर्व की ओर लम्बी, दक्षिण तथा पश्चिम में नीची

2.4 सारांश

इस इकाई में आपने भूखण्ड के विविध् प्रकारों का तथा प्रकारविशेष पर गृहनिर्माण का क्या पफल है, इसके विषय में अध्ययन किया। वास्तुशास्त्रा में भूमि के विविध् प्रकारों का वर्णन किया गया है। भूखण्ड का प्रथम प्रकार है, ढलान। आठ दिशाओं मे भूमि के आठ ढलान होते है। इनमें पूर्व, उत्तर तथा ईशान कोण की ओर ढलान वाली भूमि पर गृहनिर्माण के लिए शुभ होती है। भूमि के चयन के समय भूमि की अनेक आकृतियां देखने को मिलती है। इन आकारों पर गृहनिर्माण के विविध् शुभाशुभ फल होते हैं। विविध आकृतियों में यथाशास्त्र संशोधन कर गृहनिर्माण करना चाहिए।

अधिक उँची-नीची भूमि वास्तुशास्त्र की दृष्टि से भवननिर्माण के लिए शुभ नही होती। तथापि विशेष दिशाओं में उँची तथा नीची भूमि पर गृहनिमार्ण करने से सुख की प्राप्ति होती है। यथा मध्य में उँची तथा अन्य सभी दिशाओं में नीची भूमि की कूर्मपृष्ठा संज्ञा है तो वास्तुकर्म के लिए शुभ होती है। इन सभी विषयों का इस इकाई में ज्ञान प्राप्त किया।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्लवत्व - ढलान

आयताकार- जिस आकृति की आमने सामने की भुजाएं समान अन्तर पर हो तथा चारों कोण सम हो।

वर्गाकार - जिस क्षेत्रा की लम्बाई तथा चैडाई समान हो तथा चारों कोण समकोण हो।

वृत्ताकार - जो गोलाई वाली आकृति को वृत्ताकार कहते है।

भद्रासन - वर्गाकार क्षेत्रा में जब क्षेत्रा की लम्बाई तथा चैडाई बराबर हो तथा मध्य में समतल हो।

चव्रफाकार - जिस क्षेत्रा में अनेक कोण अनेक भुजाएं हो परन्तु चव्रफाकार सुदर्शनचक्र के सदृश प्रतीत हो।

विषमाकार - जिस क्षेत्रा की कोई भी भुजा समान ना हो।

त्रिकोणाकार - जिस क्षेत्रा की केवल तीन भुजाएं हो।

शकट- गाडी/वाहन

धनुषाकार - धनुष का आकार

दण्डाकार - दण्ड अर्थात डंडे का आकार ;जिसकी लम्बाई अध्कि हो तथा चौडाई कम

नीव - आधर

शल्य - हड्डी

उषर - बंजर

कूर्म - कछुआ

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1. भूमि के ढलान आठ प्रकार के हैं।
2. गृहपति की मृत्यु।
3. वायव्य दिशा की और ढलान वाली भूमि पर गृह निर्माण करना अशुभ है।
4. गृहपति की मृत्यु।
5. पूर्व दिशा की ओर ढलान वाली भूमि क्षत्रिय वर्ण के लिए शुभ हाती है।

लघूत्तरीय प्रश्न -

1. आकार के आधर पर भूमि के 12 भेद हैं।
2. वर्गाकार भूमि पर गृहनिर्माण से ध्न की प्राप्ति होती है।
3. वर्गाकार, आयताकार वृत्ताकार भूमि गृहनिर्माण हेतु शुभ होती है?
4. चव्रफाकार भूमि पर गृहनिर्माण करने से दरिद्रता आती है।
5. जिसकी लम्बाई अध्कि हो तथा चैडाई कम

सत्य/असत्य प्रश्न

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ग 2. ख 3. घ 4. क 5. क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, सम्पादक डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ; 2012 चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. वास्तुरत्नावली, श्री जीवनाथ दैवज्ञ विरचित, सम्पादक डॉ. श्रीकृष्ण जुगनु ;2009 चैखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली।
3. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल विरचित, सम्पादक आचार्य कमलकान्त शुक्ल, 1999 सम्पुर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमूसत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक श्रीकृष्ण

जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

5. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण जुगनु, 2005 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. मयमतम्, दानवराज मय कृत, व्याख्यातृ डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2013 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2. बृहत्संहिता, वाराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विशविद्यालय वाराणसी।

3. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

5. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

6. मुहूर्तचिन्तमणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वशिष्ठ संहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

8. वास्तुप्रदीप, वासुदेवदैवज्ञकृत, 1997 चैखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

9. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेवशास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद जुगनु, ;2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. शिल्पशास्त्राम् विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. समरांगणसूत्राधर, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शुभ ढलान वाले भूखण्डों पर एक निबन्ध लिखिए।
2. भुखण्ड के शुभ आकार कौन-कौन से है।
3. भूखण्ड का विस्तार कौन सी दिशाओं में अशुभ होता है।

4. कूर्मपृष्ठादि भूखण्डों पर गृहनिर्माण का क्या पफल है।
5. भूखण्ड के शुभ प्रकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई - 3 भूखण्ड का विस्तार एवं कटाव

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मुख्य भाग खण्ड एक
 1.3.1 उपखण्ड एक– भूखण्ड का विस्तार एवं कटाव
 1.3.2 उपखण्ड दो– ईशान एवं आग्नेयमुखी भूखण्ड
 1.3.3 उपखण्ड तीन– नैर्ऋत्य एवं वायव्यमुखी भूखण्ड
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना–

इस इकाई के माध्यम से आज हम भूमि के कटाव एवं विस्तार के विषय में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे। वस्तुतः कई बार ऐसा देखा जाता है कि भूखण्ड का ईशान भाग बढ़ा हुआ अर्थात् नोक की तरह लम्बमान हुआ देखा गया है। और कई बार आग्नेय कोण अथवा नैर्ऋत्य अथवा वायव्य कोण का भाग बढा होता है ऐसे में उस भूखण्ड का अलग–अलग दिशा में भिन्न–भिन्न फल होगा। इसी क्रम में अधिकतर ऐसा भी देखा जाता है कि ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य अथवा वायव्य कोण का कटाव भूखण्डों में देखा जाता है। अतः कटाव वाले भूखण्ड तथा वृद्धि वाले भूखण्डों का प्रत्येक का भिन्न भिन्न प्रतिफल होगा। अतः यह जानना परमावश्यक है कि उन–उन भूखण्डों में निवासित लोगों का जीवन भौतिक एवं आध्यात्मिक किस प्रकार के प्रभावों से प्रभावित होगा। पूर्व दिशा के कोने का कटाव होने पर भूखण्ड वासी के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में कौन कौन सी बाधाएँ एवं जीवन में कौन कौन से उतार चढाव होंगे। क्या जीवन सुखमय रहेगा अथवा दुःखमय रहेगा। यदि दुःखमय रहेगा तो कौन कौन से वास्तुशास्त्रीय उपाय हो सकते हैं। जिनके माध्यम से भूमि भवन में निवास करने वाले लोगों को सुखमय जीवन की प्राप्ति हो। वस्तुतः इस प्रकार के भूखण्डों में भवन निर्माण करके रहने वाले लोगों के सामान्य जीवन के विषय में आज हम इस इकाई में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य–

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य केवल भूखण्डों के विस्तार अथवा कटाव के उपरान्त उस उस भूखण्ड पर निवास करने वाले व्यक्ति विशेष की दिनचर्या पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है? अथवा जीवन में उन्नति होगी अथवा अवनति होगी? गृहपति का स्वास्थ्य, आयु और आरोग्यता की स्थिति में क्या परिवर्तन होगा? वस्तुतः वास्तुशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सुख शान्ति, समृद्धि तथा भाग्य की अभिवृद्धि करना है। इसलिए वास्तुशास्त्र इस प्रकार के कटाव अथवा भूखण्ड विस्तार वाले भूखण्डों में निवास करने की अनुमति नहीं देता है इस इकाई का मुख्य उद्देश्य यही है।

3.3 मुख्यभाग खण्ड एक

3.1.1 उपखण्ड एक– भूखण्ड का विस्तार एवं कटाव

वास्तु पुरुष सभी पदों के स्वामी है। यद्यपि वास्तु से फल निरूपण में वास्तु पुरुष के पद विन्यास के अनुरूप व्यक्तिगत देवताओं का चरित्र–चित्रण करना पड़ता है। परन्तु यह भी सत्य है कि वास्तु पुरुष भूखण्ड में सर्व व्याप्त होते हैं।

जिस प्रकार कर्म युक्त या विकार युक्त आत्मा और ईश्वर का सम्बन्ध होता है ठीक इसी प्रकार विकार युक्त वास्तु पुरुषांश भूखण्ड सीमा रेखा तक सीमित है। और उससे बाहर वास्तु पुरुष अपने महत् अंशों में उपलब्ध हैं। वास्तु पुरुष स्वयं अनन्त हैं एवं सर्वव्याप्त हैं। तथा छोटे–छोटे भूखण्डों में व्यक्ति के कर्म पफलों सहित वास्तु पुरुषांशों के रूप में उपलब्ध

है।

भवन निर्माण के लिए प्रशस्त भूमि का विवेचन करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में बतलाया है कि जिस भूमि की मिट्टी में अच्छी औषधि वृक्ष व लताएँ उगती हो। जिसकी मिट्टी मधुर, चिकनी, सुगन्धित व समतल हो व थके–हारे व्यक्ति को बैठने से शान्ति मिले। वस्तुतः भवन निर्माण के लिए ऐसी भूमि अच्छी होती है जिसकी मिट्टी उपजाउ चिकनी, ठोस, सुगन्धित और समतल हो।

भूमि का विस्तार– भूखण्ड के समीप भूमि का विस्तार करना चाहता हो तो उसके शुभाशुभत्व पर विचार कर लेना चाहिए। इसका उल्लेख पुराणों में किया गया है

1. पूर्व दिशा में बढाया गया वस्तु सदा शत्रुता उत्पन्न करता है।
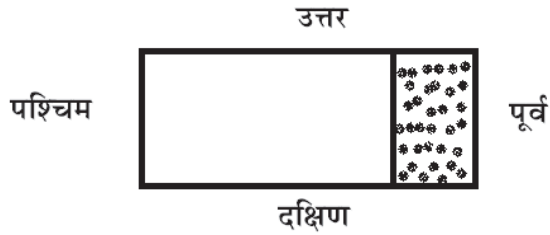
2. दक्षिण दिशा में बढाया गया वास्तु मृत्युकारी होता है।
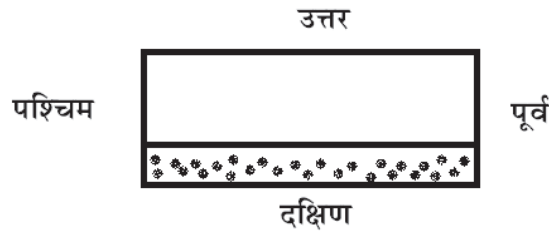
3. पश्चिम दिशा में बढाया गया वास्तु धनक्षकारी होता है।
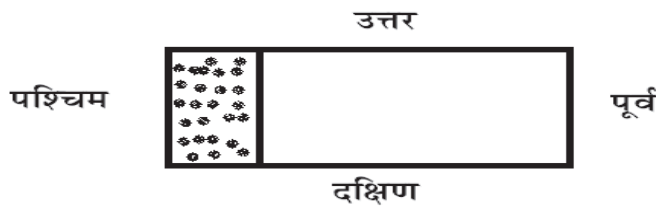
4. उत्तर दिशा की ओर बढाया गया दुःख और सन्ताप को वृद्धि करता है।
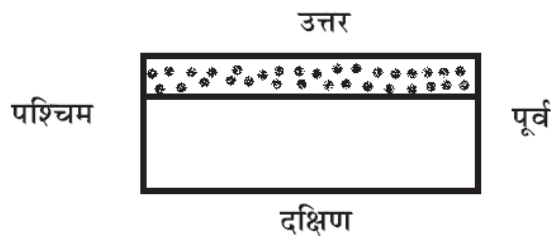
अग्निकोण में बढने पर अग्नि का भय, नैर्ऋत्यकोण में बढने पर शिशुओं का विनाश, वायव्य कोण में वात व्याधि रोग, ईशान कोण में अन्न की हानि। अतः गृह के किसी अंश को पिण्ड

के आगे नहीं बढाना चाहिए तथा यदि बढाना हो तो सभी दिशाओं में एक साथ बढाना चाहिए।

आकृति के आधार पर भूमि के विचार – भूमि चयन करते समय दिक्प्लवत्व का विचार करने के पश्चात् आकार के आधर पर भूमि का परीक्षण करना चाहिए। यद्यपि आधुनिक युग के विभिन्न संस्थाओं द्वारा ही भूखण्ड, भवन उपलब्ध कराए जाते हैं।

अतः वास्तु शास्त्र सम्मत भूखण्ड की प्राप्ति भाग्यवशात् ही सम्भव है। परन्तु भूखण्ड खरीद कर भवन बनाया जा रहा हो तो उसकी आकृति और विस्तार एवं अध्ययन कर घर बनाना चाहिए।

निवेश्य भूखण्ड के विविध आकार एवं फल– गृहस्वामी के लिए निवासयोग्य भूमि का विधिवत् चयन कर लेने पर उपयुक्त आकार और विस्तार के आधर पर गृह निर्माण योग्य भूखण्ड का चयन वास्तुशास्त्रीय रीति से करना चाहिए।

भूखण्ड का विस्तार एवं आकार	फल
आयताकार	सर्वसिद्धि
वर्गाकार	धनागम
मद्रासन	कार्यसिद्धि
वृत्ताकार	शरीरपुष्टि
चक्राकार	दरिद्रता
विषमबाहु	शोकप्रद
त्रिकोणाकार	राजभय
शकटाकार	धनक्षय
दण्डाकार	पशुनाश
पणवाकार	नेत्रहानि
मृदधैंकार	स्त्रीनाश
बृहन्मुख	बन्धुनाश
व्यंजनाकार	अर्थहानि

जिस भूखण्ड को खरीदना हो उसके सामने कोई धार्मिक स्थान हो तो भूमि को खरीदना नहीं चाहिए। कम से कम इतनी दूर खरीदना चाहिए कि उसके शिखर के प्रतिबिम्ब के पहुँच भूखण्ड तक न हो।

नैर्ऋत्य कोण की ओर भूमि खण्ड में उँचे से उॅचा निर्माण करने तथा उस कोण की ओर ज्यादा वनज रखने में कोण शक्ति प्रवाह क्षीण हो जाता है। और ऐसा निर्माण श्रेष्ठ रहता है।

पूर्व और उत्तर की ओर अधिक विस्तार व खुला स्थान उसमें विद्यमान क्षेत्रा को बढावा देता है।

दक्षिण तथा पश्चिम में अधिक विस्तार और उत्तर की जगह ज्यादा खुली रखनी चाहिए। ईशान कोण में ढलान हो तो वह धन शक्ति को बढावा है। अतः नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण की तरफ ढलान होनी चहिए।

भूखण्ड की दिशा– वैसे तो प्रकृति प्रदत्त आठों दिशाओं को ही शुभ मानना चाहिए। परन्तु वास्तु शास्त्रा के अनुसार प्रत्येक निर्माण के लिए पृथक् पृथक् दिशा को शुभ माना जाता है। व्यवसाय की दृष्टि से दुकारन आदि का निर्माण एक सीमित स्थान में किया जाता है। अतः यह सम्मत नहीं है कि दुकान के द्वारा वास्तु के अनुसार विपरीत दिशा में रखा जाए। परन्तु अन्य विचारों से द्वार दोष को दूर किया जा सकता है।

पूर्व	मेष, सिंह, धनु
पश्चिम	मिथुन, तुला, कुम्भ
उत्तर	कर्क, वृश्चिक, मीन
दक्षिण	वृषभ, कन्या, मकर

भूखण्ड के आस–पास का क्षेत्र – पुराणों के अनुसार देवालय, धूर्त, चौराहे के समीप गृह निर्मान नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे दुःख, शोक और भय बना रहता है। गृह के चारों ओर द्वार के सम्मुख और पीछे कुछ भूमि को छोड़ देना शुभकारक होता है। इन सब के गृह के आगे की ओर होना शुभकारी होता है। पीठ की ओर अथवा बायीं ओर हो तो भी शुभ माना जाता है। दक्षिण भाग में उफँचा रहने पर गृह सम्पूर्ण वास्तु के नाम से अभिहित किया जाता है। वह मनुष्यों की सभी कामनाओं की पूर्ति करता है।

न देवधूर्त सचिव चत्वराणां समन्ततः।
कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःख शोकभयः ततः।।

गृह निर्माण विधि– घर के व्यास से लम्बाई के मान में गुणाकर के आठ का भाग देना चाहिए, जो शेष बचे उसे आय मानना चाहिए। आय का भेद इस प्रकार बतलाया गया है– एक बचे तो ध्वज, दो बचे तो धूम, तीन बचे तो सिंह, चार बचे तो खर, पाँच बचे तो श्वान, छः बचे तो वृषभ, सात बचे तो हस्ती, आठ बचे तो काक संज्ञा जाननी चाहिए। चारों ओर मुखवाला तथा पश्चिम द्वारा वाला ध्वज शुभकारी होता है। सिंह का उत्तर, वृषभ का पूर्व, हाथी का दक्षिण मुख दुःखदायी होता है–

उदघ्मुखोभवेत्सिंहो प्राघ्मुखो वृषभोभवेत्।
दक्षिणाभिमुखोहस्ती ऋषिभिः समुहास्त।।

इसी प्रकार से गुणा करके भाग दिए शेष रहे हाथों को आठ से गुणाकर सत्ताईस से भाग देने पर शेष को नक्षत्र मानना चाहिए। पुनः उस नक्षत्र को आठ का भाग देने से जो शेष बचता है वह व्यय माना जाता है। जिसमें व्यय अधिक निकले उसे नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह दोषकारक होता है। लाभ अध्कि होने पर शान्ति होती है। गृह पूर्ण हो जाने पर

उसमें मांगलिक शान्ति के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा दही, अक्षत, आम के पल्लव, पुष्प पफलादि में सुशोभित जलपूर्ण कलश को देकर तथा अन्य ब्राह्मणों को सुवर्ण और वस्त्रा देकर उस भवन के गृहपति को प्रवेश करना चाहिए।

कृत्वाग्रतोद्विजवरानथपूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदल–पुष्प पफलोपशोभम्।
कृत्वाहिरण्यवसना नितदाद्विजेभ्यो मर्धैल्यशान्तिनिलयायगृहं विशतु।।

भवन में कक्षों का स्थान– मत्स्य पुराण के अनुसार ईशानकोण और शान्तिगृह अग्निकोण में रसोईघर और उसके समीप उत्तर दिशा में जलस्थान होना चाहिए। सभी घरेलू सामग्रियों को नैर्ऋत्य कोण में रखना चाहिए। पशुओं आदि और स्नानागार गृह के बाहर बनाने चाहिए।

वायव्य कोण में अन्नादि का स्थान बनाना चाहिए। इसी प्रकार कार्यशाला भी निवास स्थान के बाहर बनानी चाहिए। इस प्रकार से बनाया गया गृह गृहपति के लिए मंगलकारी होता है।

वास्तुग्रन्थों वास्तुराजवल्लभ, बृहत्संहिता आदि में पुराणों से भिन्न कक्षों का निर्माण निर्देश दिया है। उसमें भवन को सोलह भागों में विभाजित क विभिन्न दिशाओं में विविध कक्षों का निर्माण प्रतिपादन किया है। इन कक्षों के मध्य में खुला आँगन रखा जाता है। यह स्थान परिवार के लोगों के साथ मिल जुलकर बैठने पारिवारिक धार्मिक आदि कार्य सम्पन्न करने के उपयोग में आता है। किन्तु आज के समय सोलह कक्षों की आवश्यकता है और न ही छोटे–छोटे भूखण्डों पर अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मध्य वर्गीय परिवारों को इतने कक्ष बनाना सम्भव नहीं है।

भवन द्वार– भवन के मुख्य द्वार की स्थिति का भी विशेष प्रभाव होता है। यह वास्तु शास्त्रा के अनुसार उसमें रहने वाले लोगों की सपफलता या असपफलता का द्वारा भी है। मत्स्य पुराण के अनुसार भवन निर्माण शास्त्र सम्मत होने पर भी यदि गृह का द्वार निषिद्ध स्थान पर हो तो उसमें रहने वाले लोगों को अनेक समस्याओं एवं संकटों का सामना करना पड़ता है। भवन में मुख्य द्वारों का निर्धारण भूखण्ड के चारों दिशाओं में निवास करने वाले 32 देवताओं के वास्तु चक्र से होता है।

उत्तर

		भल्लाट सौम्य		
पश्चिम	**पुष्पदन्त वरुण**		**इन्द्र जयन्त**	**पूर्व**
		याम्य वितथ		

दक्षिण

इस प्रकार भूखण्ड पर वास्तु बनाकर द्वार निर्णय करना चाहिए–

पूर्वेणेन्द्रं जयन्तं च द्वारं सर्वत्रा शस्यते।
याम्यं च वितथ चैव दक्षिणेन विदुर्वुधः।
उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभेद भवेत्।।

वास्तु शास्त्र के अनुसार निवास की व्यवस्था– भूखण्ड के कौन से हिस्से में कौन सा कक्ष बनाना चाहिए यह वास्तु शास्त्र में विशेष रूप से विचारणीय होता है। जैसे पूर्व में स्नान गृह, आग्नेय दिशा में रसोई, दक्षिण दिशा में शयन कक्ष, नैर्ऋत्य दिशा में शौचालय, शस्त्रागार आदि। नैर्ऋत्य पश्चिम के बीच में बच्चों के पढने का कमरा, पश्चिम में जलस्थान व भोजनकक्ष, वायव्य और पश्चिम दिशा के बीच में निजी कक्ष, परिधन कक्ष, वायव्य दिशा में गैराज, कार पार्किंग, अनाज रखने की जगह और पशु स्थान आदि। उत्तरदिशा में मनोरंजन कक्ष ईशान में देवपूजा कक्ष, ईशान–पूर्व के बीच में ड्राईंगरूम आदि घर का मध्य भाग ब्रह्म स्थान या ब्रह्मभाग कहलाता है। और यह स्थान खाली रहना चाहिए।

ईशान पूर्व आग्नेय

देवस्थान या पवित्र पौधे, पानी स्थान लान आदि	शयनकक्ष ड्राइंगरूम भुजा स्थान जल स्थान	स्नान गृह, वाटिका, तिजोरी, शयनकक्ष जलस्थान, लिविंग रूप आदि	समान रखने का स्थान	रसोई घर
मनोरंजन कक्ष, मुख्य शयनकक्ष जल स्थान	आँगन, लॉबी सीढियाँ आदि	ब्रह्म भाग		संग्रह स्थान शयन कक्ष
कार पार्किंग, अनाज की जगह या गैराज पशु स्थान	निजी कक्ष	शयन कक्ष, भोजन कक्ष आदि	अध्ययन कक्ष शयन कक्ष	शौचालय, स्नानगृह, शास्त्रागार आदि

उत्तर (बाएँ) — दक्षिण (दाएँ)

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

गृहारम्भ एवं वृष वास्तुचक्र– वास्तुराजवल्लभ में मास के अनुसार गृह निर्माण के फल चैत्र मास में घर बनाने से शोक, बैशाख में धन लाभ, ज्येष्ठ मास में मृत्यु, आषाढ़ मास में पशु नाश, श्रावण मास में पशु वृद्धि, भाद्रपद मास में शून्यता, आश्विन मास में लड़ाई–झगड़ा, कार्तिक मास में सेवकों का नाश, मार्गशीर्ष पौष मास में अन्न लाभ, माघ मास में अग्नि भय, फाल्गुन मास में धन प्राप्ति होती है।

गृह निर्माण के श्रेष्ठ मास– नारद जी के अनुसार– फाल्गुन, बैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक।

वशिष्ठ के अनुसार माघ, फाल्गुन, बैशाख और कार्तिक।

सौर एवं चन्द्रमासों के समन्वय से पूर्व और पश्चिम दिशा मुख वाले गृह निर्माण के लिए कुम्भ के सूर्य में फाल्गुन मास, सिंह–कर्क के सूर्य में श्रावण मास में, मकर के सूर्य में पौष मास शुभ होता है।

दक्षिण और उत्तर मुख से गृह निर्माण में पौष और वृष के सूर्य में बैशाख मास, तुला–वृश्चिक के सूर्य में मार्गशीर्ष मास शुभ होता है।

अन्य आचार्यों के मत में मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, कुम्भ राशि के सूर्यों में क्रमशः चैत्रा, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, पौष और माघ मास में गृह निर्माण करना शुभ होता है

गृह निर्माण की श्रेष्ठ तिथियाँ– 2, 3, 5, 7, 10, 11, 13 शुक्ल

शुक्ल पक्ष में गृह निर्माण करने से ध्न लाभ और सुख की प्राप्ति होती है। परन्तु कृष्णपक्ष में गृह निर्माण करने से चोर भय रहता है।

प्रतिपदा तिथि को घर बनाने पर निर्धनता, चतुर्थी धन की हानि, अष्टमी में उच्चाटन, नवमी में शस्त्र भय, अमावस्या में राजभय और चतुर्दशी में घर बनाने पर स्त्राी का नाश होता है।

गृह निर्माण के श्रेष्ठ नक्षत्र –ध्रुवनक्षत्र, मृदुनक्षत्र, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त, और पुष्य नक्षत्र गृह निर्माण के लिए शुभ माने जाते हैं। गृहारम्भ में मंगल, रवि और रिक्ता तिथियाँ 1,4,14 व धनिष्ठा आदि पंचकों का परित्याग करना चाहिए।

राहु मुख विचार– गृह निर्माण आरम्भ करते समय राहु अथवा शेष नाग की पूँछ और मुख का विचार आवश्यक करना चाहिए। मुख की दिशा में नींव खोदना अशुभ माना जाता है और पूँछ की दिशा में नींव खोदना शुभ माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

प्र. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो वाक्यों में दें।

1. वास्तु पुरुष कितने पदों में स्वामी हैं?
2. पूर्व दिशा में बढा वास्तु कैसा फल देता है?
3. पश्चिम वृद्धि वाला वास्तु की क्या हानि है?
4. आयताकार भूखण्ड का विस्तार का फल क्या है?
5. व्यंजनाकार भूखण्ड कैसा होता है?

3.1.2 उपखण्ड भाग दो–ईशान एवं आग्नेय मुखी भूखण्ड–

यहाँ पर हम सर्वप्रथम सूक्ष्मता के साथ ईशानमुखी भूखण्ड के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा करेंगे। प्रायः देखा जाता है कि ईशानमुखी भूखण्ड के शुभाशुभ परिणाम विशेष रूप से पुत्रा सन्तान पर पड़ते हैं। इस प्रकार के भूखण्डों को प्राचीन वास्तुशास्त्रियों ने उत्तम प्रकार का

माना है। जो कुबेर के नगरी थी। इस प्रकार का भूखण्ड ऐश्वर्य, पुत्र, सन्तति तथा धन–धान्य से पूर्ण करता है। भवन निर्माण में ईशान दिशा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। ईशान दिशा का स्वामी रुद्र है आयुध जिसका त्रिशूल है। अन्य दिशाओं की अपेक्षा ईशान कोण का सावधनी पूर्वक रक्षण करना चाहिए। यदि ईशान भूखण्ड दोषपूर्ण हो तो भवन का विकास अवरूद्ध हो जाता है। यदि हम यह सोच कर उपेक्षा करेंगे कि इसमें एक ही कमी है और अनदेखा करेंगे तो सारी पूँजी खर्च हो जाएगी। पैसा बचेगा नहीं केवल परिश्रम करते रह जाओगे। इसलिए भूखण्ड क्रय करते समय अथवा भवन क्रय के समय ईशान दिशा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ईशान दिशा वाला स्थान पूर्व की सड़क से नीचा हो तो पूर्वोन्मुखी द्वार का निर्माण करना चाहिए परन्तु यदि 20 डिग्री से अधिक पूर्व आग्नेय की ओर हो तो पूर्व ईशान में गेट बनवाना अनिवार्य हो जाता है। और आवागमन उत्तरी प्रवेश द्वार से करना चाहिए। इस प्रकार उत्तरी सड़क से नीचे हो तो उत्तर में मुख्य द्वार बनाना चाहिए। किन्तु उत्तर 10 डिग्री से ज्यादा उत्तर वायव्य हो तो उत्तर ईशान में गेट बनवाना चाहिए। भवन निर्माण में ईशान दिशा कटाव वाली हो तो घर में समृद्धि और धन–धान्य का अभाव बना रहता है।

ईशान दिशा के शुभाशुभ परिणाम–

उत्तर में मुख्य द्वार हो या पूर्व में दोनों शुभदायक है। ईशान की वृद्धि बाहर तो ठीक है परन्तु भवन के प्रत्येक कक्ष में ईशान वृद्धि शुभ नहीं है। ईशान कोण जितना उन्नत होगा भवनवासियों की उतनी ही उन्नति होगी।

ईशान दिशा के दुष्परिणाम–

ईशान में उत्तरी दिशा की लम्बाई यदि घटकर, उत्तरी दिशा तक यदि इमारत हो तो उस घर में करने वाली स्त्री रोगी अथवा दुःखी या मृत्यु को प्राप्त हो जाएगी अन्यथा जीवन पर्यन्त दुःखमय जीवन जीयेगी। मकान की चारदिवारी की ईशान दिशा घट जाए तो सन्तान प्राप्ति नहीं होती है यदि सन्तान हो भी जाए तो मन्दबुद्धि अथवा विकलांग होती है।

ईशान कोण में निर्माण करते समय वहाँ पर उत्पन्न दोषों को ढक दिया अथवा छिपा दिया जाए तो उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं।

ईशान कोण में वास्तुशास्त्र के अनुसार कोई त्राुटि या दोष हो तो उस मकान में रहने वाली सन्तान विकलांग होती है।
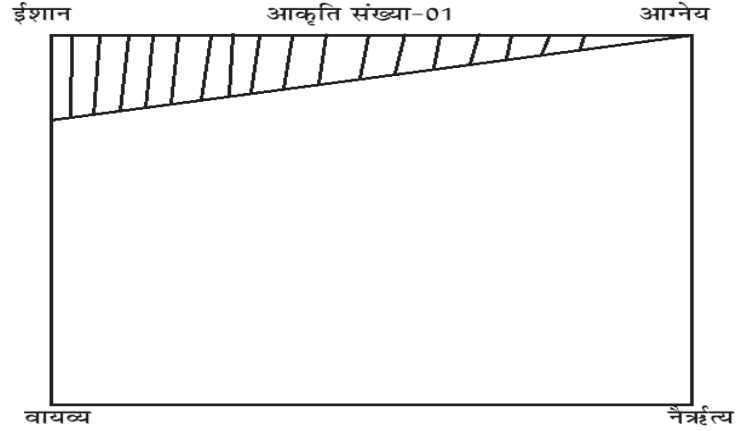
इस आकृति के अनुसार धनस्थान एवं लग्नस्थान की वृद्धि होने के कारण आर्थिक स्थिति उत्तम एवं स्वास्थ्य लाभ धन संचय। पारिवारिक सुख अच्छा रहेगा।
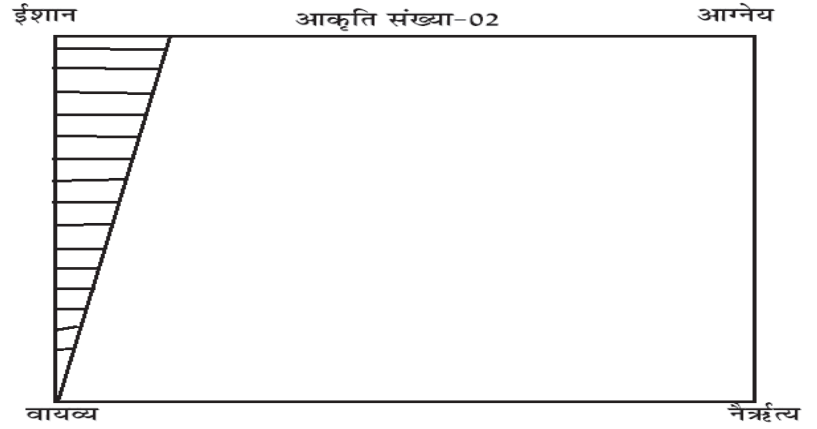
आकृति संख्या 02 के अनुसार तृतीय ईशान चतुर्थ एवं पंचम स्थान में वृद्धि होने के कारण आर्थिक स्थिति मजबूत, भाई–बहनों का सुख प्राप्त होगा, सन्तान सुख एवं वाहन सुख भी उत्तम प्रकार का रहेगा।

आग्नेयमुखी वृद्धि वाले भवन– आग्नेयमुखी भूखण्ड के प्रभाव विशेषरूप से स्त्रियों, बच्चों तथा प्रमुख रूप से रहने वाली सन्तान पर प्रभावी होते हैं। स्त्रियों का जलकर मरना, आत्महत्या जैसी दुर्घटना घर में कलह होना इत्यादि परेशानियाँ गृहपति को होती है।

आग्नेय स्थान का निर्माण– सर्वप्रथम यह जान लेना परमावश्यक होगा कि आग्नेय दिशा वास्तुशास्त्र के अनुसार कौन सी होगी। आग्नेय स्थान प्रधान रूप से अग्नि का क्षेत्र है। यहाँ पर अग्नि से सम्बन्धित कार्य ही सपफलता के सूचक होते हैं। दक्षिण और पूर्व के मध्य भाग पर स्थित ठीक 45 डिग्री पर आग्नेय दिशा पड़ती है। वस्तुतः सम्पूर्ण गोल का परिमाप 360 डिग्री है जिसके पफलस्वरूप प्रत्येक दिशा का परस्पर अन्तराल 90 डिग्री का होगा और दो दिशाओं के मध्य उपदिशा का कार्य करने वाली उपदिशा ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य आदि प्रत्येक दिशा दो प्रधन दिशाओं के मध्य 45 डिग्री पर स्थित होती है। ठीक दक्षिण पूर्व

के मध्य 45 डिग्री पर स्थित दिशा आग्नेय होगी। अतः आग्नेय दिशा में निवास करने वाले लोग अन्य दिशाओं की अपेक्षा कम सुखी तथा यातनाएँ झेलते हैं। वस्तुतः आग्नेय स्थान को वास्तुशास्त्रा के अनुसार उन्नत बनाया जा सकता है। जैसे–

1. आग्नेय दिशा वाले स्थान की दक्षिणी सड़क पूर्व से नीची हो तो वहाँ पूर्व की ओर मुख्य द्वार बनाना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि पूर्व 10 डिग्री से ज्यादा पूर्व आग्नेय को देखता हो तो पूर्व ईशान के द्वार से प्रवेश करना चाहिए और उत्तर में प्रवेश द्वार बनाना चाहिए। लेकिन इसके साथ–साथ पूर्वी द्वार भी होना आवश्यक है।

2. मकान के दक्षिण–आग्नेय भाग में द्वार रखें।

3. दक्षिण–आग्नेय से नैर्ऋत्य तक नीम, नारियल इत्यादि वजनदार वृक्षों को लगाना चाहिए।

4. मकान में प्रयोग किया हुआ जल आग्नेय दिशा से बाहर नहीं जाना चाहिए।

5. आग्नेय दिशा में कारखाने में बिजली का ट्रांसफार्मर तथा अग्नि से सम्बन्धित उपकरण फर्नेस वायलर आदि निर्माण कराना हो तो पूर्वी दिशा की चार दिवारी का स्पर्श किए बिना कम से कम तीन फ्फीट जगह खाली रखनी चाहिए।

6. कारखाने के आग्नेय में टायलेट बनवाना हो तो पूर्वी चारदिवारी से तीन पफीट खाली जगह छोड़नी चाहिए।

7. आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य के कोणों को बढ़ने नहीं देना चाहिए।

8. आग्नेय में गड्ढा नहीं होना चाहिए तथा टायलेट का पॉट पूर्वी दिशा में करवाना चाहिए।

दुष्परिणाम–

1. आग्नेय कोण में निर्मित भवन पूर्वी–आग्नेय उन्नत हो या दक्षिण–आग्नेय तथा पूर्व दक्षिण का मिलन का कोण उन्नत हो अथवा आग्नेय नीचा हो, कुआँ हो, गड्ढा हो, उत्तरी दिशा में खाली स्थान हो चारदिवारी के दक्षिण–नैर्ऋत्य में पूर्व–आग्नेय में फाटक हो पश्चिम में पूर्व की अपेक्षा अध्कि खाली स्थान हो तो ऐसे में गृहस्वामी को अकल्पित हानि होती है। अदालती परेशानियाँ, चोर एवं अग्नि सम्बन्धित भय बना रहेगा। स्त्री एवं पुरुष के चरित्रा सम्बन्धी दोष उत्पन्न होंगे। आय से अध्कि व्यय होगा। गृहस्वामीणी बनकर अपने मकान को बेचने के लिए बाध्य हो जाएगा।

2. दक्षिण–नैर्ऋत्य मार्ग प्रहार स्त्रियों को सुख से वंचित करता है। वे उन्माद रोग की शिकार होती हैं। कभी कभी वे आत्महत्या करने का भी प्रयत्न करतीं हैं।

3. दक्षिण में मुख्य द्वार हो तो पूर्व–उत्तर को सीमा बनाकर दक्षिण दिशा बरामदे को ढलानदार बनाया जाए तो घर की प्रमुख स्त्री गम्भीर रोग से पीड़ित होगी तथा सन्तान भी निकम्मी होगी।

4. दक्षिण में मुख्य द्वार हो पूर्व को सीमा बनाकर पश्चिम में खाली स्थान कुआँ एवं पूर्व आग्नेय का मार्ग प्रहार हो तो मालिक के वंश का नाश हो जाता है। और पत्नी पति की हत्या तक कर डालती है।

5. मकान के पूर्व आग्नेय में द्वार नहीं होना चाहिए अन्यथा चोर एवं अग्नि का भय बना रहता है।
6. आग्नेय कोण पूर्व दिशा से उन्नत हो तो पुत्र सन्तान की हानि होगी। घर की सम्पत्ति की मालकिन स्त्री हो जाएगी। अर्थात् पुत्र नहीं होंगे।
7. आग्नेय दिशा केवल कोण उन्नत में हो तो अदालती मामले, बीमारियाँ, अग्निभय आदि के साथ उस मकान में कलह होगी।
8. दक्षिण आग्नेय निम्न हो, वायव्य तथा उत्तर उफँचा हो तो मकान में रहने वाले कष्ट के कारण अशान्त रहेंगे।
9. दक्षिण आग्नेय नीचा हो, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान में उँचा हो तो निवासी दरिद्र और अस्वस्थ रहेंगे।
10. पूर्व आग्नेय में निकासी द्वार हो तो दंगा, धोखाधड़ी, पति–पत्नी में विरोध झगड़ा और दुष्परिणाम होंगे। इस भूखण्ड में आग्नेय कोण में वृद्धि होने के कारण दशम एवं एकादश स्थान प्रभावित होंगे। अतः इन स्थानों से सम्बन्धित प्राप्त होने वाले सुख संसाधनों में हानि एवं बाध उत्पन्न होगी।

अभ्यास प्रश्न

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें।
1. ईशान कोण उन्नत होने पर भवनवासियों पर क्या प्रभाव रहेगा?
2. ईशान वास्तु में उत्तर द्वार का क्या प्रभाव है?
3. आग्नेय मुखी भूखण्ड के दुष्प्रभाव क्या होते हैं?
4. आग्नेय कोण में द्वार कहाँ रखना चाहिए?
5. आग्नेय भूखण्ड में टायलेट कहाँ बनवाना चाहिए?

3.1.3 उपखण्ड तीन– नैर्ऋत्य एवं वायव्यमुखी भूखण्ड

इस भूखण्ड में हम नैर्ऋत्य मुखी अथवा नैर्ऋत्य तथा वायव्य में कटाव एवं विस्तार किए गए भूखण्डों के विषय में इस इकाई के माध्यम से अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम हम यहाँ नैर्ऋत्यमुखी अथवा नैर्ऋत्य विस्तार अथवा कटाव वाले भूखण्डों के विषय में अध्ययन करेंगे। पश्चिम और दक्षिण के मध्य भाग स्थित 45 डिग्री के मध्य स्थित भूखण्ड भाग को नैर्ऋत्य दिशा कहते हैं। नैर्ऋत्य दिशा स्थित भूखण्ड के शुभाशुभ फल विशेष रूप से गृहस्वामी, गृहिणी एवं ज्येष्ठ पुत्र पर प्रभावी होते हैं। अकस्मात् मृत्यु, आत्महत्या, भूत–प्रेत तथा प्राकृतिक संकट के रूप में नैर्ऋत्य ब्लॉक के अशुभ प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तुबल होने पर यह ब्लॉक अन्य सभी ब्लॉकों की अपेक्षा उत्तम होते हैं।

नैर्ऋत्य निर्माण भवन विधि वास्तुसम्मत–

1. भूखण्ड और भवन निर्माण में ईशान जितना उपयोगी होता है उतना ही नैर्ऋत्य भी। ईशान तथा नैर्ऋत्य दोनों परस्पर विरोधी हैं। ईशान जितना नीचा होना चाहिए नैर्ऋत्य

उतना ही उॅचा उठा हुआ होना चाहिए। ईशान जितना उन्नत हो नैर्ऋत्य उतना ही निम्न होना चाहिए। नैर्ऋत्य में भवन निर्माण करते समय चारों ओर खाली जगह छोड़नी चाहिए।
2. नैर्ऋत्य का अर्थ दुर्भाग्य भी है। इसलिए वास्तु के नैर्ऋत्य के सम्बन्ध में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। इसलिए ब्लॉक या प्लाट में फ्रलैट या मकान में या कमरों में नैर्ऋत्य में निर्मित वास्तु के बारे में पूरी सावधानी रखनी चाहिए।
3. मुख्यवास्तु या उपवास्तु का नैर्ऋत्य दिशा को स्पर्श करते हुए निर्माण होना चाहिए। 4. नैर्ऋत्य एवं ईशान का वास्तु ठीक हो तो ऐसा मकान सुख एवं वैभव को देने वाला होता है। मनुष्य अपने जीवन में भोग और भाग्य दोनों को प्राप्त कर ले तो उसका जीवन ध्न्य हो जाता है। जिसने अपने वास्तु में ईशान और नैर्ऋत्य का समन्वय कर लिया तो जीवन सफल हो जाता है।
5. नैर्ऋत्य के दक्षिण की अपेक्षा पश्चिम की सड़क नीची हो तो दक्षिणीमुखी द्वार बनाना उचित होगा। दक्षिण की दृष्टि आग्नेय पर हो तो दक्षिण–आग्नेय का फाटक बनाना कहीं अध्कि लाभदायक होगा। ताकि पूर्व के मुख्य द्वार से आवागमन हो। ऐसे मकान के लिए उत्तर दिशा में द्वार होना चाहिए। 10 डिग्री वायव्य की ओर पफाटक बनवाना उचित होगा। उत्तरी मुख्य द्वार आवागमन के लिए श्रेष्ठ होगा। ऐसे मकान के लिए पूर्वी द्वार भी आवश्यक है।
6. नैर्ऋत्य के निर्माण में बिलम्ब नहीं करना चाहिए थोड़ी सी लापरवाही भी जानलेवा हो सकती है। नैर्ऋत्य दिशा में स्थित कक्ष का पुनर्निर्माण करना हो तो आवश्यक सामग्री पूर्व में इकट्ठी कर लेनी चाहिए। ताकि निर्माण करते समय कोई परेशानी न आए और घर के लोग यात्राा पर न जाएँ लाभकारी रहेगा।
7. नैर्ऋत्य कोण के अनुसार भवन एवं चार दीवारी हो।
8. भू–स्वामी का शयन कक्ष नैर्ऋत्य दिशा में होना चाहिए।
9. आग्नेय दिशा में निर्माण करना हो तो वायव्य और नैर्ऋत्य दिशा वाले कमरों की आग्नेय दिशा में रसोई घर बना सकते हैं।
10. नैर्ऋत्य में ढ़लानदार बरामदों का निर्माण नहीं करना चाहिए।
11. नैर्ऋत्य की चारदिवारी कोणाकार या वृत्ताकार बनाई जा सकती है परन्तु 90 डिग्री का निर्माण होना आवश्यक है।

नैर्ऋत्य वास्तु के शुभ परिणाम–

1. दक्षिण पश्चिम एवं नैर्ऋत्य दिशाओं की अपेक्षा उपफँचा स्थान हो तो वास्तु में निवास करने वालों को सभी प्रकार की सुख–सुविधएँ प्राप्त होती हैं।
2. नैर्ऋत्य में मकान बनवाते समय सड़क की दिशा में नैर्ऋत्य उन्नत न हो इसका ध्यान अवश्य रखें। नैर्ऋत्य को बढ़ने से रोकने के लिए ईशान में कुआँ खुदवाकर दक्षिण– पश्चिम में खाली जगह कम रखें। मकान के दक्षिण–पश्चिम में ढ़लान एवं पूर्व–उत्तर में बरामदा बनवाने से ऐसे मकान में रहने वाले ऐश्वर्य सम्पन्न रहते हैं।
3. नैर्ऋत्य में बड़े उॅचे वृक्ष हो तो उन्हें कटवाना नहीं चाहिए। इसी दिशा में उॅची उठी

हुई भूमि हो अथवा उँचे–उँचे टीले हो तो उन्हें हटवाना नहीं चाहिए।

4. नैर्ऋत्य का भाग उँचा होने पर गृहपति को धन–धान्य एवं सुख की प्राप्ति होती है।

5. नैर्ऋत्य में उफँचे मकान एवं गोलाकार झोंपड़ी हो तो शुभ पफलदाई होती हैं।

6. नैर्ऋत्य में स्थित चबूतरे मकान से उँचे या उन्नत होने पर शुभपफलदायी होते हैं।

7. नैर्ऋत्य भाग लुप्त होकर उँचा हो तो सुख प्राप्त होते हैं।

नैर्ऋत्य वास्तु के दुष्परिणाम–

1. नैर्ऋत्य का प्रत्येक कोण मकान के अनुकूल होना चाहिए अन्यथा दुष्परिणाम होते हैं।

2. दक्षिण– नैर्ऋत्य मार्ग प्रहार हो तो उस घर की महिलाएँ रोगग्रस्त होगी। नैर्ऋत्य में कुआँ हो तो लम्बी बीमारी या मृत्यु का भय बना रहता है।

3. पश्चिम– नैर्ऋत्य मार्ग प्रहार हो और नैर्ऋत्य में कुआँ हो तो पुरुषों पर भी असर होगा।

4. नैर्ऋत्य दक्षिण के साथ मिला हुआ या पश्चिम से जुड़ा उन्नत नहीं होना चाहिए। दक्षिण– नैर्ऋत्य में वृद्धि स्त्रियों के लिए, पश्चिम नैर्ऋत्य में वृद्धि पुरुषों के लिए तथा पश्चिम नैर्ऋत्य दोनों दिशाएँ मिलकर या कोण उन्नत हो तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए कष्टप्रद होती है।

5. नैर्ऋत्य में कुंआ या गड्ढे हो तो उस मकान के स्त्री पुरुष लाइलाज रोगों के शिकार होंगे।

6. नैर्ऋत्य का बरसाती पानी दक्षिण के परनाले द्वारा बाहर निकलता हो तो स्त्रियों पर तथा पश्चिम में परनाले से निकलता हो तो पुरुषों पर बुरा असर पड़ता है।

7. नैर्ऋत्य उन्नत हो तो शत्रु, अदालत एवं व्रण सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।
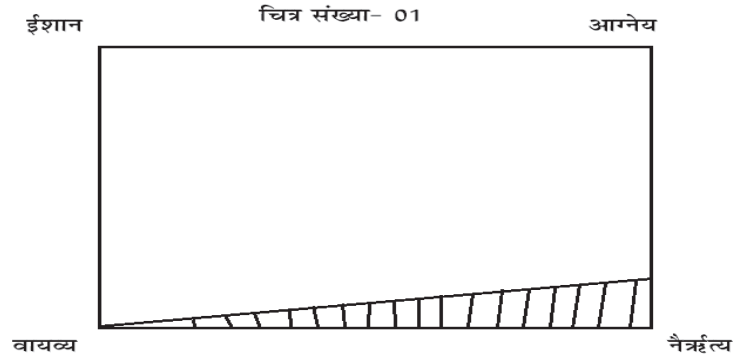
इस आकृति में भूखण्ड में नैर्ऋत्य कटने पर सप्तम अष्टम स्थान की हानि होगी। सप्तम अष्टम भाव से प्राप्त होने वाली चीजों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।
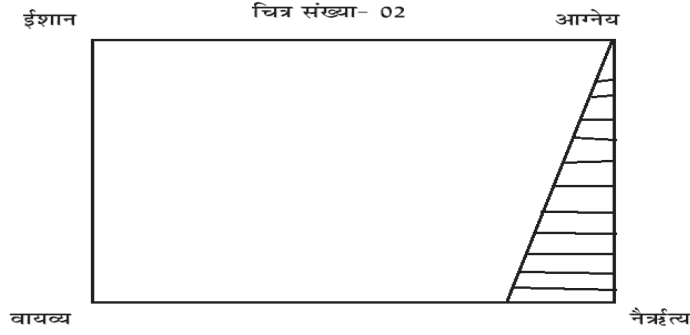
चित्रा सं. 02 में नैर्ऋत्य भाग कटने पर नवम एवं दशम भाव के द्वारा प्राप्त होने वाली चीजों और कारक पर गलत प्रभाव पड़ेगा।
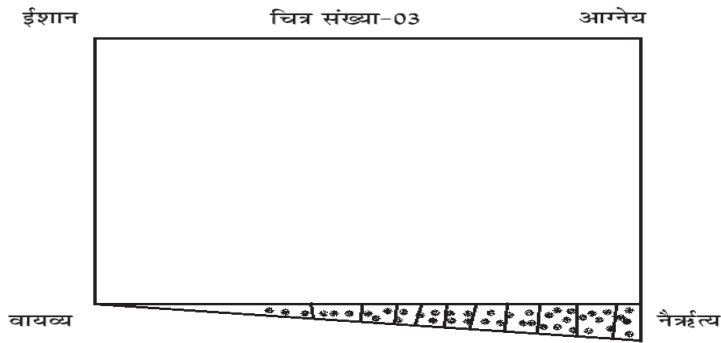
चित्रा सं. 03 में षष्ठ एवं सप्तम स्थान में वृद्धि हुई है। इस कारण शारीरिक परेशानियाँ रहेंगी, शत्रु एवं नौकरों से नुकसान पहुँचेगा। हर काम अटकेंगे। सन्तान एवं वाहन सुख उत्तम रहेगा।
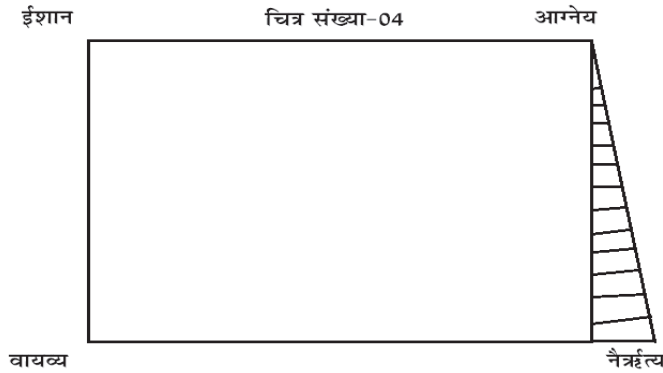
चित्रा सं. 04 में नैर्ऋत्य का भाग विस्तार लिए हुए है। इसलिए यहाँ पर नवम और दशम भावों की वृद्धि होने के फलस्वरूप इन भावों से प्राप्त होने वाले सकारात्मक परिणाम की अपेक्षा विपरीत फल देने वाले होंगे।

वायव्यमुखी भवन एवं कटाव तथा विस्तार

1. वायव्य दिशा जहाँ भू स्वामी को अपार वैभव दे सकती है वहीं दिवालिया भी बना सकती है। सर्वप्रथम यहाँ यह जान लेना आवश्यक होगा के पश्चिम और उत्तर के मध्य स्थित 45

डिग्री का कोण वायव्य दिशा का स्थान रखता है। वायव्य दिशा का स्वामी बटुक है और आयुध अंकुश है।

2. भूखण्ड के वायव्य ब्लॉक में रहने वाले लोग प्रायः शत्रुता, अदालती मामलों में हार–जीत के शिकार होते हैं।

3. वायव्य में स्थित मकानों के स्वामी की शुभ–अशुभ स्थिति सदैव समान नहीं रहती है। उसकी तृतीय सन्तान पर अधिक प्रभाव देखने को आता है।

4. वायव्य भाग में कुंए या गड्ढे नहीं होने चाहिए।

5. वायव्य भाग में टायलेट बनवाया जा सकता है।

6. मकान के पश्चिम में स्थान उन्नत हो तो कोई दोष नहीं रहता है किन्तु नैर्ऋत्य से वायव्य कोण के रूप में उन्नत नहीं होना चाहिए।

7. मकान का वायव्य हिस्सा लुप्त हो तो उसका उत्तम पफल मिलेगा परन्तु जानते हुए वायव्य कोण को लुप्त नहीं करना चाहिए।

8. वायव्ये पशुमन्दिरम् यह प्राचीन शास्त्रों का कहना है। वायव्य में पशुशाला बनवाकर उसे पश्चिम की दीवार से जोड़ा जा सकता है किन्तु उत्तर की दीवार से नहीं।

9. पश्चिम वायव्य में आम नारियल जैसे मजबूत पेड़ लगाएँ।

10. वायव्यवास्तु जरा भी त्रुटि शत्रुता का कारण बन सकती है इसलिए वायव्य दिशा में कोई परिवर्तन करना हो तो अत्यन्त सावधनी के साथ वास्तु नियमों का पालन करते हुए करें।

वायव्य निर्माण के शुभ परिणाम–

1. वायव्य दिशा के ब्लॉक को पश्चिम वायव्य मार्ग प्रहार हो तो उस मकान में रहने वालों को यश प्राप्त होता है।

2. उच्च स्थान वाले पश्चिम वायव्य दिशा का गमन उत्तम पफलदायी है।

3. वायव्य ब्लॉक में गृहोपयोगी भारी भरकम सामान सीढ़ियाँ यदि नैर्ऋत्य में हो तो और नैर्ऋत्य आग्नेय की अपेक्षा वायव्य दिशा निम्न हो और ईशान की अपेक्षा उन्नत हो तो स्थिति उत्तम पफलदायी होती है।

वायव्य निर्माण के अशुभ परिणाम–

1. उत्तर–वायव्य मार्ग प्रहार हो तो ऐसे मकान में रहने वाली स्त्रियाँ सुखी नहीं रहेंगी। साथ में घर में रहने वाले कई प्रकार के व्यसनों को करने वाले होंगे।

2. इस ब्लॉक का उत्तर वायव्य उन्नत हो तो उसमें रहने वाले अदालती कार्यवाही, चोर तथा अग्नि से भयभीत रहेंगे। साथ ही पुत्रा सन्तान विहीन होकर अशान्त जीवन व्यतीत करेंगे।

3. वायव्य ब्लॉक के मकान में उत्तरी द्वार हो तो पश्चिम स्थित पूर्वी दिशा के मकान की अपेक्षा यह मकान पीछे न हो।

4. वायव्य में उत्तर दिशा की सीमा से जुड़ी वायव्य दिशा में पानी की टंकी हो तो घर मालकिन तथा उसमें रहने वाली सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

5. उत्तर में मुख्य द्वार हो तो पूर्व में खाली जगह नहीं हो तो, अन्य मकानों से सटा हो तो तथा दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा खाली जगह अधिक हो तो वह मकान अनेक समस्याओं का केन्द्र बनेगा और पराधीनता की ओर अग्रसर होगा।
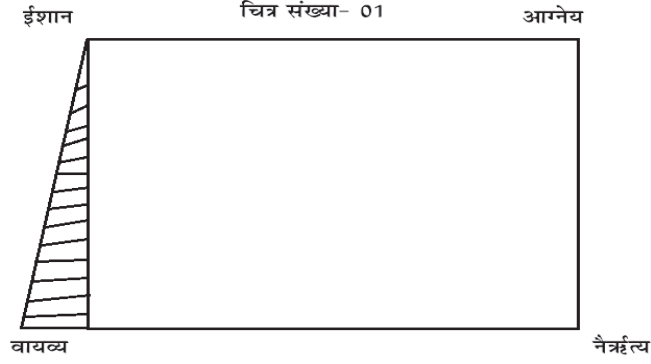
चित्रा सं. एक में वायव्य कोण की वृद्धि हुई है। इस कारण इस भूखण्ड वासियों को शारीरिक परेशानियाँ रहेंगी। शत्राु और नौकरों से नुकसान पहुँचेगा। हर काम में विघ्न और बाधाएँ आयेंगी लेकिन सन्तान एवं वाहन सुख उत्तम रहेगा।
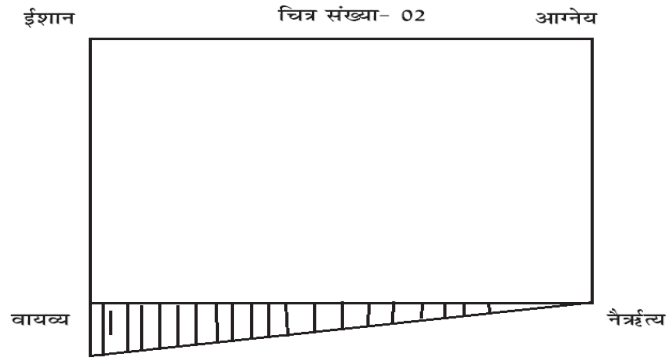
चित्रा सं. दो में वायव्य वृद्धि होने के पफलस्वरूप षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम भाव से सम्बन्धित विषयों के अनुसार स्वास्थ्य शिकायतें रहेंगी। नौकर एवं शत्रु से लाभ रहेगा। गुप्त धन की प्राप्ति होगी।
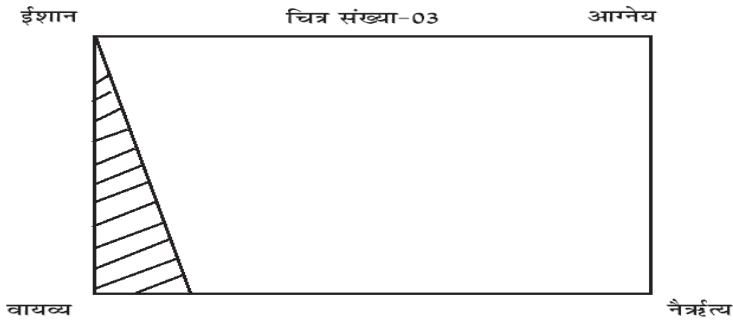
चित्रा सं. तीन में वायव्य के कटाव होने पर सन्तान तथा वाहन की हानि होगी। मानसिक अस्वस्थता होने पर भी स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।
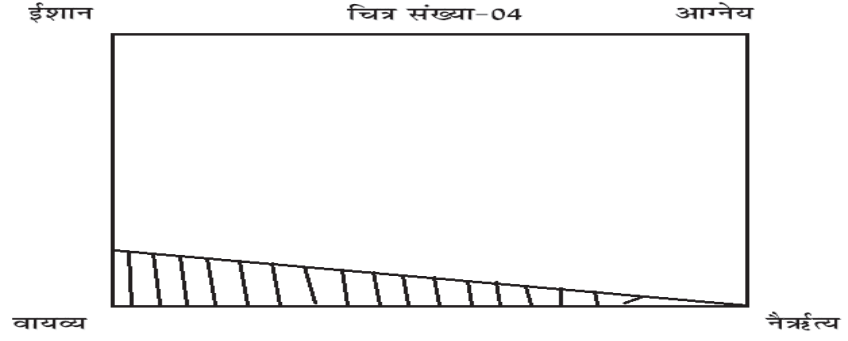
चित्रा सं. चार में वायव्य का कटाव होने पर इस भूखण्ड पर निवास करने वालों के लिए कोर्ट कचहरी में हार होगी। वैवाहिक तथा सन्तान सुख में कमी रहेगी।

अभ्यास प्रश्न

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षिप्त में दें।

1. नैर्ऋत्य दिशा कितनी डिग्री पर स्थित है?
2. दक्षिण और पश्चिम के मध्य कितनी डिग्री का अन्तर है?
3. नैर्ऋत्य का दूसरा अर्थ क्या है?
4. वायव्य भूखण्डवासियों की स्थिति कैसी रहती है?
5. क्या वायव्य भाग में कुंए या गड्ढे बनाए जा सकते है?

3.4 सारांश–

इस इकाई के माध्यम से हमें यह जानकारी प्राप्त हुई कि सर्वप्रथम हमें किसी ग्राम अथवा नगर का ब्लॉक अथवा कालोनी में भूखण्ड को लेते समय या गृह निर्माण करने से पूर्व नैर्ऋत्य, वायव्य, ऐशान्य और आग्नेय आदि उपदिशाओं में भूखण्ड लेने से बचना चाहिए। और इसी के साथ यदि आवश्यक रूप से यदि किसी कारण वश उपदिशाओं में गृह निर्माण करना ही पड़े तो विस्तार एवं कटाव वाले भूखण्डों को लेने से बचना चाहिए। अन्यथा की स्थिति में यदि गृह निर्माण करना ही पड़े तो वास्तु सम्मत नियमों का अनुपालन करते हुए गृह निर्माण करना चाहिए।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली–

प्रशस्त	उत्तम
नैर्ऋत्य कोण	45 डिग्री दक्षिण–पश्चिम के मध्य
वायव्यकोण	45 डिग्री उत्तर–पश्चिम के मध्य
चारों कोणों का परिमाप	360 डिग्री
आयताकार	जिसकी आमने–सामने की भुजाएँ बराबर
वर्गाकार	जिसकी चारों भुजाएँ समान हो

मृदघैंकार	मृदंग वाद्ययन्त्र के समान
दण्डाकार	दण्ड के समान
देवधूर्त	देवालय और धूर्त मनुष्य
समन्ततः	चारों ओर
प्राज्ञो	बुद्धिमान
उदघैंमुखो	उर्ध्वमुखी
प्राघैंमुखी	पूर्वमुखी
दध्यक्षत	दही और चावल
हिरण्य	सुवर्ण
द्विजेभ्यः	ब्राह्मण
निलय	घर
राहुमुख	राहु का मुख

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.1.1 उपखण्ड संख्या एक के प्रश्नोत्तर–

1 वास्तु पुरुष सभी पदों के स्वामी होते हैं।

2 पूर्व दिशा में बढ़ा हुआ वास्तु शत्रुता उत्पन्न करता है।

3 पश्चिम वृ(ियुक्त वास्तु ध्नक्षयकारी होता है।

4 आयताकार भूखण्ड का विस्तार सर्वसि(दायक होता है।

5 व्यंजनाकार भूखण्ड अर्थहानि कारक होता है।

3.1.2 उपखण्ड संख्या दो के प्रश्नोत्तर–

1 ईशान कोण उन्नत होने पर भवनवासियों पर शुभ पफलदायी होता है।

2 उत्तर द्वार शुभदायक होता है।

3 आग्नेयमुखी भूखण्ड के प्रभाव स्त्रिायों बच्चों पर नकारात्मक पड़ते हैं विशेष रूप से द्वितीय सन्तान पर पड़ते हैं।

4 मकान के दक्षिण–आग्नेय भाग में द्वार रखना चाहिए।

5 आग्नेयमुखी में टॉयलेट पूर्वी दिशा में बनवाना चाहिए।

3.1.3 उपखण्ड संख्या तीन के प्रश्नोत्तर–

1 नैर्ऋत्य दिशा पश्चिम–दक्षिण के मध्य 45 डिग्री पर स्थित है।

2 दक्षिण और पश्चिम के मध्य 90 डिग्री का अन्तर है।

3 नैर्ऋत्य का दूसरा अर्थ दुर्भाग्य है।

4 वायव्य स्थित भूखण्डवासियों की स्थिति सदा एक समान नहीं रहती है।

5 वायव्य भाग में कुंआ या गड्ढा नहीं बनाया जा सकता है।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. वास्तुसारः, डॉ. देवी प्रसाद त्रिपाठी कृत, 2006, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली।

2. वास्तु प्रबोधिनी, डॉ. अशोक थपलियाल कृत, 2011, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. वास्तुशास्त्राविमर्शः, हरिप्रसाद पाण्डेय कृत, 2012, न्यू भारत बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली।
4. बृहत्वास्तुमाला, पं रामनिहोर द्विवेदी, 2010, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. वास्तुरत्नावली, पं. अच्युतानन्द झा., 1993, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
7. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
10. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
12. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
13. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
14. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, ;2017द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
15. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
16. समराङ्गणसूत्राधर, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी, अनुवादक जुगनु, ;2017द्ध चौख्म्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
17. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
18. भारतीय वास्तु विद्या के वैज्ञानिक आधर, प्रो. बिहारी लाल शर्मा, प्रथम संस्करण 2004, मान्यता प्रकाशन मायापुरी नई दिल्ली, 110064
19. भारतीय वास्तु शास्त्रा, प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण 2004, श्रीलालबहादुर शास्त्राी केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रकाशन नई दिल्ली 110016

3.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 ईशान विस्तार युक्त भूखण्ड के विषय में विस्तृत उल्लेख करें।

प्र.2 वायव्य स्थित भूखण्ड के शुभाशुभ प्रभावों का वर्णन करें।

प्र.3 उपदिशाओं में गृहनिर्माण करना चाहिए अथवा नहीं उल्लेख करें।

प्र.4 ईशान दिशा निर्मित गृहनिर्माण के दुष्परिणामों के विषय में उल्लेख करें।

प्र.5 नैर्ऋत्य दिशा के शुभाशुभ गुण–दोषों का विस्तृत उल्लेख करें।

इकाई – 4 भूमि के आकार एवं ढलान विचार

इकाई की रूपरेखा–

4.1 प्रस्तावना –

इस इकाई के माध्यम से हम आज भूमि का प्लवत्व किस ओर है अर्थात् ढलान, इस विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। सामान्य बात यह है कि यदि भूमि का ढलान किसी दिशा में क्यों न हो उससे सामान्य कोई सरोकार नहीं रखता परन्तु भूमि का आकार–प्रकार तथा ढलान वास्तुशास्त्र में मुख्य विषय हैं। क्योंकि ढलान एवं आकार–प्रकार का सीधे सम्बन्ध सूर्य एवं पृथ्वी के मध्य होने वाले समस्त गुण–धर्मों पर आधारित है। जिसका सीधे–सीधे प्रभाव गृह में निवास करने वाले लोंगो पर पड़ता है। अतः ढलान के विषय में जानने से पूर्व हमें भूमि परीक्षण करना अनिवार्य है। परीक्षण से तात्पर्य यहाँ यह है कि भूमि की आन्तरिक गुणवत्ता या आन्तरिक संरचना के विषय में भी कह सकते हैं। क्योंकि गृह निर्माण हेतु ठोस भूमि का चयन करना चाहिए। इसलिए भूमि की आन्तरिक संरचना कैसी है और कैसी होनी चाहिए और भूखण्ड का ढलान किस ओर है। इसके विषय में दिशाओं को आधर मानकर वास्तुशास्त्र में उस–उस दिशा में गृह निर्माण करने पर क्या लाभ है और क्या क्या हानियाँ हैं इस विषय में इस इकाई के माध्यम से ज्ञान ग्रहण करेंगे।

4.2 उद्देश्य–

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य केवल इस विषय में ज्ञान ग्रहण करना है कि भूमि चयन करते समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाए कि जिस भूखण्ड का चयन हम करने जा रहे हैं। उसकी आन्तरिक गुणवत्ता ठोसपन कैसा है चूँकि ''**आधरोधिकरणम्**'' अर्थात् आधर ही मुख्य है। अतः आधर यदि ठोस रहेगा तो गृहनिर्माण भी अच्छा होगा। इसी के साथ–साथ हम ढलान की दिशा के विषय में जानना और उस दिशा का पफल क्या होगा और उस दिशा में निवास करने वाले लोगों के जीवन पर प्रभाव अनुकूल रहेगा अथवा प्रतिकूल, इन सभी विषयों को जानना अथवा ज्ञान प्रदान करना ही इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

4.3 मुख्य भाग खण्ड एक

4.3.1 उपखण्ड एक–भूमि का आकार एवं ढलान

'वास्तु' शब्द का अर्थ है निवास करना। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे वास्तु कहते हैं। इसके नियमों का शुद्ध रूप से पालन करने में मनुष्य को कई प्रकार के लाभों के साथ आरोग्यता का लाभ भी प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र के संहिता भाग में सर्वाधिक रूप से वास्तु विद्या का वर्णन प्राप्त होता है। ज्योतिष के विचारणीय पक्ष दिक् देश काल के कारण ही वास्तु ज्योतिष के संहिता भाग में समाहित हुआ है।

भौगोलिक आधार– भौगोलिक आधार पर भूमि का सीध सम्बन्ध पृथ्वी से है। निर्माण क्रियायों के लिए भौगोलिक एवं भूगर्भिक परिस्थितियों से परिचित होना परम आवश्यक है। निर्माण के लिए किसी भूखण्ड की परम आवश्यकता होती है। वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार श्वेत भूमि ब्राह्मणी, रक्त भूमि क्षत्रिया, हरित भूमि वैश्या तथा कृष्णा भूमि शूद्रा इन चार प्रकार की भूमियों का वर्णन प्राप्त होता है।

शुक्लमृत्रना च या भूमिब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता।
क्षत्रिया रक्तमृत्रना च हरिद्वैश्या प्रकीर्तिता।।[62]

रस के आधर पर–रस के आधर पर भूमि को चार वर्णों के लिए क्रमशः भूमि इस प्रकार है–

मधुरं कटुकं तिक्तं कषाय च रसक्रमात्।[63]

भूमि प्लवत्व के आधर पर–भूमि प्लवत्व के आधर पर भूमि को अष्टवीथियों में वर्गीकृत किया गया है। जैसे– गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यृष्ठ, नागपृष्ठ आदि नामों से भूमि को अभिहित किया गया है।

भूमि का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान करना उत्तम रहता है।

भूमि की आकृति,

भूमि का ढलान और कटाव

गृह वास्तु में मकान बनाने के लिए वर्गाकार, आयताकार, वृत्तकार उत्तम माना गया है। अनियमित आकार के व अनियमित कोणों वाले भूखण्ड अशुभ होते हैं। भूखण्ड के सभी कोण अंश के सभी कोण हो तो उत्तम माने जाते हैं।

वर्गाकार– वर्गाकार भूखण्ड की चारों भुजाएं समान और चारों कोण अंश के होते हैं। वास्तु के अनुसार इसे माना गया है परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण में रोसे भूखण्ड में ध्न का नाश होता है।

आयताकार भूखण्ड– जिस भूखण्ड की आमने–सामने की दोनों भुजाएँ समान हों और चारों कोण अंश के हो तो उसे आयताकार भूखण्ड कहते हैं। इसकी लम्बाई चौड़ाई में दुगुनी या उससे अधिक हो तो गृहस्वामी के लिए कष्टकारक होता है।

वृत्ताकार भूखण्ड– वृत्त के आकार भूखण्ड को वृत्ताकार भूखण्ड कहते हैं। इसमें वास करना शुभ माना जाता है परन्तु यदि भूखण्ड में निर्माण भी वृत्ताकार ही होना चाहिए। वर्गाकार या आयताकार निर्माण अशुभ माना जाता है।

अण्डाकार भूखण्ड– अण्डाकार भूखण्ड गृहवास्तु के लिए हानिकारक माने जाते हैं। ऐसे भूखण्ड धर्मिक वास्तु जैसे मन्दिर, धर्मशाला, आश्रम आदि के लिए काम में लाई जा सकती है।

अर्धवृत्ताकार भूखण्ड– ऐसे भूखण्ड व्यवसाय के लिए उत्तम होते हैं। परन्तु गृहवास्तु की दृष्टि से भयकारक और अशुभ माने जाते हैं।

कुम्भाकार भूखण्ड– घड़े के आकार का भूखण्ड ध्ननाशक माना जाता है। परन्तु इस भूखण्ड पर सरोवर, कुओं और जलाशय का निर्माण करना शुभ होता है।

पंचकोणी भूखण्ड– गृहवास्तु के लिए यह भूखण्ड क्लेश कारक और मृत्यु कारक मानी गई है।

षट्कोणीय भूखण्ड– ऐसे भूखण्ड गृह वास्तु के लिए सुख समृद्धि कारक माने गए हैं।

सप्तकोणीय भूखण्ड–सप्तकोण वाला भूखण्ड सर्वदा अशुभ फलदायक माना जाता है।

---

62 बृहद्वास्तुमाला

63 वास्तुमाला–

विषमबाहु भूखण्ड– असमान आकार और भुजाओं वाला भूखण्ड विषमबाहु भूखण्ड कहलाता है। जो शोक कारक व रोगकारक माने जाते हैं। परन्तु ऐसे भूखण्ड व्यापार और व्यवसाय के लिए उत्तम माने जाते हैं।

भूमि का ढलान वास्तुशास्त्र के अनुसार बहुत महत्त्व रखती है। वास्तु शास्त्रा में 20 से अधिक ढलान भूखण्डों का उल्लेख मिलता है।

ढलान आदि के विशेष नियम–

प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुगन्धे।
वद्ध बन्धुविनाशो न सन्ति गर्भाश्च दिघ्मूढे।।
इच्छेधदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्धयेत् तुल्यम्।
एकोद्देशे दोषः प्रागथवाऽप्युत्तरे कुर्यात्।।[64]

आचार्य वराह मिहिर के अनुसार भूखण्ड उत्तर की ओर उचाई अर्थात् पश्चिम या दक्षिण की ओर ढलान हो तो धन का नाश होता है। भूमि से दुर्गन्ध आए तो पुत्र नाश, टेढा प्लाट हो तो बन्धु–बान्धवों का नाश, दिशाओं के अनुसार कोण व मुख्य दिशाएँ न पड़े तो सन्तति हानि होती है।

पूर्व की ओर से अधिक चौड़ा भूखण्ड हो तो मित्रा बैर। दक्षिण की ओर अध्कि भाग हो तो मृत्यु, पश्चिम की ओर अधिक भूभाग हो तो धन नाश और उत्तर की ओर अधिक भाग हो तो मनस्ताप होता है। कम दोष रहने पर मजबूरी में उत्तर व पूर्व की वृद्धि का नियम है।

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव।
विप्रः सर्वत्रा वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम्।।[65]

उत्तर की ओर ढालू भूमि ब्राह्मणों के लिए, पूर्व की ओर ढाल भूमि क्षत्रिायों के लिए, दक्षिण प्लवा भूमि वैश्यों के लिए तथा पश्चिम की ओर से नीची या ढालू भूमि शूद्रों के लिए शुभ होती है ऐसा मत वराहमिहिर का है।

लेकिन ब्राह्मण चारों ओर से किसी भी दिशा में एक ओर भूमि में प्लव हो तो निवास कर सकता है। क्षत्रिय पूर्व, दक्षिण और पश्चिम ढलाव भूमि में निवास कर सकता है, वैश्य दक्षिण और पश्चिम प्लव भूमि में तथा शूद्र केवल पश्चिम प्लव भूमि में ही निवास कर सकता है।

वास्तु के अनुसार दिशाओं तथा चारों कोणों में भूखण्ड की उँचाई–नीचाई के अनुसार '**गोवीथी**' भूखण्ड कहलाता है। ऐसे भूखण्ड पर वास करने से वंश की वृद्धि होती है।

जो भूमि ईशान कोण में उँची और नैर्ऋत्य कोण में नीची हो वह भूतवीथि कहलाती है। जो भूमि अग्निकोण में उँची और वायव्य कोण में नीची हो वह नागवीथि कहलाती है। जो भूमि वायव्य कोण में उँची तथा अग्निकोण में नीची हो वह वैश्वानरी कहलाती है तथा जो भूमि नैर्ऋत्यकोण में उँची और ईशान कोण में नीची हो वह वीथि कहलाती है।

---

64 बृहत्संहिता अ. ÿü श्लोक ûûý, ûûþ

65 बृहत्संहिता अ.ÿ, श्लोक {ζ

वीथियाँ

वीथिनाम	दिशाउँची	दिशानीची	फल
गोवीथि	पश्चिम	पूर्व	शुभ
जलवीथि	पूर्व	पश्चिम	अशुभ
यमवीथि	उत्तर	दक्षिण	अशुभ
गजवीथि	दक्षिण	उत्तर	शुभ
भूतवीथि	ईशानकोण	नैर्ऋत्यकोण	अशुभ
नागवीथि	अग्निकोण	वायव्यकोण	अशुभ

ब्राह्मण, क्षत्रिाय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के लिए क्रमशः सफेद फल, लाल फल, पीला फल और काला फल का चयन करके उस गड्ढे में सांय काल के समय रखकर प्रातः काल देखना चाहिए। जिस वर्ण का फल न हो कुम्हलाया हो उस वर्ण के लिए भूमि उत्तम होगी।

अभ्यास प्रश्न–

अतिलघूत्तरीय प्रश्न–

1– ब्राह्मण वर्ण के लिए कौन सी भूमि उपयुक्त है।

2– भूमि परीक्षण किसके द्वारा करवाना चाहिए।

3– भूमि परीक्षण के लिए गड्ढा कितना गहरा खोदना चाहिए।

4– भू परीक्षण जल किस बात का सूचक है?

5– समरांगणसूत्रधार किस विषय का ग्रन्थ है?

4.3.2 उपखण्ड दो–दिक् शोधन–गृह निर्माण में भूखण्ड की उँचाई और भूखण्ड के ढलान के उपर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि भूमि के प्रकार, भूमि की उँचाई, भूमि के ढलान के अनुसार ही भूमि के फल की प्राप्ति होती है। क्योंकि वास्तुशास्त्र पृथ्वी की आकर्षण और विकर्षण तथा दो ध्रुवों उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के उपर आधारित है। प्रायः पृथ्वी अपने अक्ष और कक्ष के अनुसार भ्रमणवशात् भूचुम्बकीय बल के प्रभाव वश ही आकर्षण और विकर्षण वशात् दिन–रात की उत्पत्ति सम्भव है। इस खण्ड में हम उँचाई और नीचाई वाले भूखण्डों से प्राप्त होने वाले गुण–दोषों के विषय में जानेंगे। प्रायः वास्तुज्ञान न रखने वाले कहीं पर भी किसी भी दिशा में गृह निर्माण कर डालते हैं। जिसके दुष्परिणाम बाद में भोगने पड़ते हैं। वस्तुतः गृह निर्माण जीवन में एक बार ही सम्भव है। अतः वास्तुसम्मत नियमानुसार यदि होगा तो सर्वविध सम्पन्नता, सुख–समृद्धि एवं भाग्य की अभिवृद्धि को प्राप्त करेंगे। अतः गृह निर्माण में विशेष कर सर्वप्रथम भूखण्ड चयन में निश्चित रूप से दिशाओं–विदिशाओं का ज्ञान परमावश्यक है। उसके उपरान्त भूखण्ड में ढलान किस–किस दिशा की ओर है यह ज्ञान करके ही अन्तिम निर्णय पर पहुँचना चाहिए। दिशाओं का निर्धारण हेतु सर्वप्रथम भूखण्ड की उपरी सतह को रेत अथवा सीमेन्ट के द्वारा समतल करके उसके उपरान्त

प्राचीन विधि से एक बारह अंगुल का शंकु स्थापित करके उसकी छाया का निरीक्षण करना चाहिए परन्तु ध्यान रहे कि यह दिशा निर्धारण का कार्य सूर्य मेष राशि में रहने पर अथवा तुला राशि में आने पर मध्य में करना चाहिए तभी सही प्रकार से दिशा का ज्ञान होना सम्भव है। शंकु की छाया जहाँ पर पड़े उस बिन्दु को पूर्व और उसके विपरीत पश्चिम दिशा मानकर एक तिमिना रेखा दक्षिण उत्तरा स्थापित करके इसी प्रकार से दिशाओं के मध्य भाग में विदिशाओं का स्थापन करना चाहिए।

यथा–

शिलातलेम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्रा शक्वगुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत्।।
तन्मध्ये स्थापयेच्छकुं कल्पनाद्वादशांगुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्रा वृत्ते पूर्वपरार्द्धयोः।।
तत्र बिन्दू विधातव्यो वृत्ते पूर्वापराभिधै।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा।।
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङमध्यमत्स्यैः ससाध्या विदिशस्तद्वदेव हि।।

भूखण्ड में उँचाई का फल

उँचाई की दिशा/कोण	**फल**
पूर्व	सन्तान की हानि
दक्षिण	धन वृद्धि
पश्चिम	धन एवं यश की प्राप्ति
उत्तर	दरिद्रता, कष्ट
आग्नेय	वायव्य और ईशान में उँची हो तो शुभ, अन्यथा अशुभ
नैर्ऋत्य	सुख, शान्ति
वायव्य	ईशान से उँची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ।
ईशान	चिन्ता, धन हानि
मध्यभाग	समृद्धि एवं ऐश्वर्य

इसका तात्पर्य यह है कि भूखण्ड पर घर बनाना हो तो उसमें नैर्ऋत्य कोण सबसे उँचा होना चाहिए और ईशान कोण सबसे नीचा होना चाहिए। वायव्य कोण ईशान कोण से उफँचा तथा आग्नेय कोण वायव्य कोण से उफँचा होना चाहिए। ऐसे भूखण्ड पर निवास करने में जीवन में प्रगति एवं समृद्धि प्राप्त होती है।

नीचाई ढलान का फल

नीचाई की दिशा/कोण	**फल**
पूर्व	सुख, समृद्धि
दक्षिण	व्याधि, भय
उत्तर	मंगलकारक
पश्चिम	धनहानि, रोग
नैर्ऋत्यकोण	व्यसन, व्याधि
अग्निकोण	नैर्ऋत्यकोण से नीची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ
वायव्यकोण	नैर्ऋत्यकोण एवं अग्निकोण से नीची हो तो शुभ अन्यथा अशुभ।
ईशानकोण	सुख, शान्ति
मध्यभाग	अनिष्टकारी

भूखण्डों के पृष्ठादि भूमियाँ– भूखण्ड की जीमन की विभिन्न दिशाओं और कोणों में उँफचाई के आधर पर उस भूमि को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

गजपृष्ठभूमि

कूर्मपृष्ठभूमि

दैत्यपृष्ठभूमि

नागपृष्ठभूमि

इनके लक्षण इस प्रकार हैं–

भूमि	**उँचाई/नीचाई दिशा**	**फल**
गजपृष्ठ–	दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य एवं वायव्य में उँची,	धन–लाभ एवं आयुवृद्धि।
कूर्मपृष्ठ–	मध्य में उँफची और चारों ओर नीची	धनवृद्धि और वंश वृद्धि।
दैत्यपृष्ठ–	पूर्व, ईशान एवं आग्नेय में उँची तथा पश्चिम में नीची	धन, पुत्र, व पशुओं की हानि
नागपृष्ठ–	पूर्व–पश्चिम की ओर लम्बी उत्तर–दक्षिण में उँची और मध्य में नीची	पत्नी–पुत्र हानि व शत्रु वृद्धि।

यदि भूमि गीली रहे तो उस गृह का विनाश होता है। यदि शुष्क रहे तो उस गृह में धन–धान्य की हानि होती है।

दिशा निर्धारण– दिशा निर्धरण का कार्य उत्तरायण मास में शुभ शुक्लपक्ष में सूर्योदय होने पर करना चाहिए।

वक्ष्येऽहं दिक्परिच्छेद शुभनार्कोदये सति।
उत्तरायणं मासे तु शुक्लपक्षे शुभोदये।।

प्रशस्तपक्षनक्षत्रो विमले सूर्यमण्डले।
गृहीतवास्तुमध्ये तु समं कृत्वा शुभोदय।।[66]

ऐसा मयमतम् में मयसुर ने कहा है। शुभ पक्ष एवं शुभ नक्षत्राों में सूर्य मण्डल के निर्मल रहने प्र ग्रहण की गयी भूमि वास्तु के मध्य भाग को समतल करना चाहिए। जिस स्थान पर वास्तु स्थापन करना हो उस स्थान से चारों दिशाओं में दण्ड प्रमाण से चौकोर की गई भूमि के जल द्वारा समतल करना चाहिए।

जीवित–मृत आदि भूखण्ड का ज्ञान और फल– नाम, गाँव या नगर का नाम और दिशा, इनके अक्षरों की संख्या में 7 जोड़कर 3से भाग देने पर यदि 1 शेष बचे तो भूमि जीवित, 2 बचे तो मृत और शून्य बचे तो शून्य भूमि होती है।

नै)त्य कोण की ओर भूमि खण्ड में उँचे से उँचा निर्माण करने तथा उस कोण की ओर ज्यादा वजन रखने से प्राण शक्ति प्रवाह क्षीण हो जाती है और ऐसा निर्माण श्रेष्ठ रहता है।

नै)त्य कोण की ओर छत को ढकने से दक्षिण तथा पश्चिम की ओर कम उत्तर और पूर्व की ओर अधिक स्थान छोड़ने पर प्राण शक्ति कम होती है। ऐसे मकान का आकाश तत्त्व मजबूत हो जाता है और ऐसा निर्माण श्रेष्ठ रहता है।

पूर्व और उत्तर की ओर अधिक खुला स्थान उसमें विद्यमान क्षेत्रा को बढावा देता है।

दक्षिण तथा पश्चिम में अधिक पूर्व और उत्तर की जगह ज्यादा खुली श्रेष्ठ होती है।

ईशान कोण में ढलान हो तो वह धन शक्ति को बढावा देता है। अतः नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण की तरफ ढलान होनी चाहिए।

ईशान कोण में पानी की टंकी श्रेष्ठ मानी जाती है। भूखण्ड में केन्द्र मध्य स्थान खुला होना चाहिए तथा नैर्ऋत्य कोण में मुख्य शयन होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. पूर्व की उफँचाई वाली भूमि.............होती है।
2. उत्तर की ओर नीचाई दिशा वाली भूमि ....होती है।
3. भूमि को...........श्रेणियों में बाँटा गया है।
4. दिशा निर्धरण का कार्य ....मास में करना चाहिए।
5. जीवित मृत भूमि का ज्ञान...........समझना चाहिए।

4.3.3 उपखण्ड तीन–भूखण्ड शोधन

वस्तुतः भूखण्ड का चयन अहम है क्योंकि सर्वप्रथम आप लोगों ने वास्तुशास्त्र के पूर्व से चले आ रहे ग्रन्थ में लिखित नियमों के अनुरूप जैसे सर्वप्रथम ग्राम अथवा नगर विशेष आपके लिए लाभप्रद सिद्ध होगा अथवा उस नगर या ग्राम विशेष में वास करने पर कहीं प्राणी तो नहीं हो जाएँगे क्योंकि भारतीय ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र एक–दूसरे के पूरक हैं। या इस प्रकार से कहें कि अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतः जहाँ पर गृहनिर्माण कर लिया और

[66] मयमतम् द्व.û/ü

भीख माँग कर गुजर बसर करने को उतारु हो गए तो ऐसे क्यों? यह जानना भी अति आवश्यक है। उसके उपरान्त ग्राम में दिशाओं–विदिशाओं का ज्ञान, भूखण्ड के आस–पास का वातावरण, रहने वाले लोग, आचार–विचार, वृक्षों की स्थिति, भूखण्ड के आस–पास, भूखण्ड की उँचाई, नीचाई, यानि मृत्तिका की स्थिति का ज्ञान, ब्राह्मणी, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र की स्थिति को अपनी राशि के वर्णक्रम के अनुसार ही भूखण्ड की मृत्तिका का चयन करना चाहिए और इसी के साथ–साथ यह ज्ञान भी परमावश्यक है कि हमारा कार्य क्षेत्रा कौन से वर्ण से सम्बन्धित है और यदि वर्णक्रम के अनुसार भूखण्ड का चयन होगा तो आपके कार्यक्षेत्रा में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। चूँकि भारतीय परम्परा संसार की समस्त परम्पराओं के उफपर अहम स्थान रखती है। क्योंकि भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ प्रत्येक जीव प्रत्येक जड़ और चेतन दोनों में ही ईश्वर मानता आ रहा है। यह कोई अन्धविश्वास नहीं है अपितु यह वास्तविकता है। इसको आप और हम पिछले कल तक सुनते थे कि भारतीय पत्थरों में भगवान को खोजते हैं। वृक्षों में ईश्वर को देखते हैं, प्रत्येक जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं। इस प्रकार के विषयों में भारत के समुन्नत राष्ट्र हंसी और ठिठोलियाँ किया करते थे परन्तु आज स्थिति भिन्न है और भिन्न भी है कि वही समुन्नत राष्ट्र इन सभी विषयों को गम्भीरता पूर्वक ले रहे हैं। और वास्तविक तथ्यों से अवगत हो रहे हैं। ऐसे ही नहीं हमारे राष्ट्र को किसी काल में जगद्गुरु की संज्ञा से अलंकृत किया गया था। आज समस्त विश्वजन हमारे यहाँ जड़–चेतन के सिद्धान्त को स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु इसके साथ विश्व की सबसे बड़ी प्रयोगशाला नासा अमेरिका स्थित ने भी यह मानना प्रारम्भ कर दिया है कि भारतीय परम्परा और संस्कारों की प(ति पूर्णतः वैज्ञानिक है। परन्तु चिन्तन का विषय है कि दीपक तले अंधेरा की उक्ति चरितार्थ हो रही है जिस देश ने जहाँ की तपोस्थली पर निवास करने वाले ऋषियों महर्षियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ज्ञान दिया है, संस्कार दिए, ज्ञान–विज्ञान दिया। आज उस राष्ट्र के लोग ही विषयों को अनदेखा कर रहे हैं। अतः शास्त्र में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि–

स्त्रीपुत्राादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्,
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुर्ध्मापदम्।
वापीदेवगृहादि पुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते,
गेहं पूर्वमुशान्ति तेन विबुधः श्रीविश्वकर्म्मादयः।।

अतः समस्त विषयों हेतु आवश्यक है कि गृहनिर्माण में वास्तुशास्त्रीय संस्कारों के विषय में ज्ञान ग्रहण करके उनका पालन करते हुए गृह निर्माण करना चाहिए।

प्रस्तुत उपखण्ड में हम भूखण्ड संस्कार में आवश्यक नियमों का पालन करते हुए कौन कौन से नियम भूखण्ड संस्कार में आवश्यक है उन विषयों को निम्नलिखित ढंग से प्रयोग करके ही गृह निर्माण करना चाहिए। ताकि निर्माण होने वाले गृहपति एवं गृह वासियों का उस घर में निवास करने पर सुख, शान्ति, समृ(और भाग्य की अभिवृद्धि होती रहे। गृह निर्माण से पूर्व हमें मुख्य विषयों को भी ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि गृहनिर्माण हेतु भूमि का आधार ठोस होना चाहिए। '**आधारोऽधिकरणम्**' गृह निर्माण हेतु आधार ही प्रमुख है।

अतः आधर यदि ठोस होगा तो उस भूखण्ड पर निवास करने वाले लोग भी तन से मन से निश्चित रूप से सुदृढ होंगे। क्योंकि '**सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति।**' अर्थात् समस्त दोषों को जिस प्रकार से धतु शीशे के सम्पर्क में आने पर बहुमूल्य हो जाती है अर्थात् एक सामान्य काँच का टुकड़ा भी जब किसी बहुमूल्य धतु में स्थापित कर दिया जाता है तो उसकी कीमत भी धतु के अनुरूप ही आँकी जाती है। ठीक इसी प्रकार से आधर स्तम्भ ठोस एवं मजबूत होगा तो गृहनिर्माण में यदि किसी सामग्री की त्राुटि भी रह जाएगी तो भी गृहवासियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा अतः इस हेतु कि भूमि की गुणवत्ता कैसी है उसके ठोसपन का आधर क्या है इन समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम भूमि परीक्षण वास्तुशास्त्रा की सरल रीतियों द्वारा करना चाहिए जिसके विषय में वास्तु ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है।

1. जिस भूखण्ड का हमने चयन किया है सर्वप्रथम उसके परीक्षण हेतु भूस्वामी के हाथ प्रमाण तुल्य गहरा गड्ढा खो दें और ध्यान रहे यह गड्ढा एक हाथ प्रमाण गहरा, हस्त प्रमाण चारों दिशाओं से चौड़ा होना चाहिए। दूसरे ध्यान देने योग्य विषय है कि भूखण्ड का परिमाप केवल गृहपति के द्वारा ही होना चाहिए। ऐसा वास्तुग्रन्थों में प्रमाण सहित उल्लेख प्राप्त होता है।

अतः शास्त्रा सम्मत ही विध्यिों का पालन आवश्यक है। क्योंकि यदि ऐसा नहीं करेंगे तो स्वाभाविक है कि विध् ठीक से सम्पन्न नहीं हो पाएगी। अतः शास्त्रासम्मत विध् का उल्लेख परमावश्यक है। इसलिए खोदे गए गड्ढे को पुनः उसी मिट्टी से जो मिट्टी गड्ढा खोदने से निकली हुई है उसी से भर दें। मिट्टी को पुनः उसी गड्ढे में भरने से यदि मिट्टी बच जाए तो उत्तम, यदि मिट्टी भरने पर बराबर हो तो उस भूमि को मध्यम समझना चाहिए। और यदि गड्ढा मिट्टी के भरने पर कम पड़ जाए तो अध्म श्रेणी का भूखण्ड समझना चाहिए। इसलिए तृतीय श्रेणी में आने वाले भूखण्ड का त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार की निषि(भूमि पर मकान का निर्माण नहीं करना चाहिए। क्योंकि भूमि परीक्षण में वैज्ञानिकता का आधर भूमि और मिट्टी को भरना, कुछ शेष रह जाना यह सभी केवल एक परीक्षण मात्रा नहीं है अपितु गृह निर्माण के उपरान्त उस भूखण्ड पर निर्मित भवन में रहने वाले निवासियों के लाभ–हानि, सुख–दुःख, आय–व्यय का सूचक है। अतः यही मिट्टी गड्ढे में भरने पर शेष बच जाती है तो स्वाभाविक है कि उस घर में निवास करने वाले निवासियों को जीवन पर्यन्त सुख–समृद्धि, भाग्य की अभिवृद्धि, चारों ओर खुशहाली, आनन्दमय वातावरण प्राप्त होता रहेगा जीवन पर्यन्त किसी प्रकार के कष्टों का सामना नहीं करना होगा। यदि कष्टों की प्राप्ति होती है उस स्थान पर निवास करने पर यह तो निश्चित है कि जन्म जन्मान्तर में किए गए शुभाशुभ कर्म द्वारा प्राप्त रोग–शोक, आधि–व्याधि भय इत्यादि का भोग तो करना स्वाभाविक होगा परन्तु उस स्थान विशेष गृह में ईश्वर की अनुकम्पा मात्रा से स्थान विशेष प्रभाव से जन्म–जन्मान्तर में किए गए अशुभ कर्मों द्वारा प्राप्त दुःखों को पार करने की शक्ति ईश्वर प्रदान करता है। चूँकि माता की गोद में बैठते तो सभी है परन्तु माँ आशीर्वाद किसी–किसी को ही देती हैं। अतः यह करना

ठीक नहीं होगा कि भूमि तो भूमि कहीं भी गृह निर्माण किया जा सकता है चूँकि एक भूमि पर हरे–भरे पौधे होते है। काजू किशमिस, मेवा के पौधे उगते हैं। और दूसरी ओर एक भूमि पर कंटीली झाडियाँ, उबड़–खाबड़, भयानक कर्म होता है। भयावह स्वप्न आते हैं। इसी प्रकार से स्थान विशेष के अनुसार प्रत्येक भूखण्ड का गुण–दोष, धर्म उस स्थान विशेष में उस उस कार्य के अनुसार समाहित हो जाते है।

2. इसी क्रम में दूसरी विधि भी कुछ इस प्रकार से है कि पूर्व की तरह गृहपति के हाथ के तुल्य एक हाथ गहरा, एक हाथ लम्बा और एक हाथ चौड़ा गड्ढा खोदा जाना चाहिए और उस गड्ढे को पानी से परिपूर्ण कर देना चाहिए और उपरान्त देखें कि यदि गड्ढे में जल यथावत् रहे तो उत्तम भूखण्ड, यदि तुरन्त उसी क्षण सूख जाए तो नाश कारक और यदि जल स्थिर रहे तो गृहपति की स्थिरता बनी रहे। और जल का घूमना दक्षिणावर्त रहे तो सुखकारक मानना चाहिए और जल का घूमना वामावर्त रहे तो मृत्यु कारक ऐसा मानना चाहिए। हमें इस विषय में इस प्रकार से विचार करना चाहिए कि यदि जल की स्थिरता भूखण्ड में रहती है तो उस भूखण्ड पर निवास करने वाले लोग जीवन पर्यन्त सुख–शान्ति, समृद्धि के साथ–साथ दीर्घायु और उसके मन मस्तिष्क में स्थिरता बनी रहती है। स्वाभाविक है कि जहाँ स्थिरता होती हैं वहाँ सम्पूर्ण कार्य विधि के नियम के अनुसार सम्पन्न होते हैं। अतः धर्म, अर्थ, काम को लेकर ही क्यों न हो। क्योंकि जब त्रिवर्ग का ठीक से पालन होगा तो स्वतः ही समस्त सांसारिक उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त होगी। अतः सांसारिक भौतिक सुख संसाधनों की प्राप्ति हेतु आवश्यक है। जीवन में स्थिरता की प्राप्ति होना निश्चित है। अतः परिपूर्ण जलयुक्त गड्ढा वाला भूखण्ड श्रेष्ठतम होगा। ठीक इसी के विपरीत यदि गड्ढे में जल की मात्र शून्य हो जाती है तो ऐसे भूखण्ड पर निवास करने पर उन गृह निवासियों का जीवन शून्य हो जाता है चूँकि जल इस विषय का सूचक है कि जल ही जीवन है। मानव देह में 82 प्रतिशत तक जल है। जल शून्य हो जाने पर जीवन भी शून्य हो जाता है। अतः शून्य जल वाले भूखण्ड पर निवास करना श्रेयष्कर नहीं होता है। जल के घूमने का सिद्धान्त दक्षिणावर्त और वार्मावर्त का भी कुछ इस प्रकार से ही हैं क्योंकि शरीर के समस्त अवयव, सांसारिक समस्त जीव, जड़, चेतन, यहाँ तक कि आकाशीय समस्त पिण्डो का आगमन, परिगमन एवं परिभ्रमण बाएँ से दाएँ ओर रहता है जो कि एक सकारात्मकता का सूचक है। स्वाभाविक भी है कि यदि सकारात्मकता मन–मस्तिष्क में होगी तो कोई भी कार्य सम्पन्न होने में जीवन जीने में किसी भी प्रकार की बाध उत्पन्न नहीं आती है। शरीर में भी जितनी ज्यादा नकारात्मक रहेगी व्यक्ति उतने अध्कि रोगों से प्रभावित होगा। और अन्त में रोग और शरीर के मध्य युद्ध को करते करते अन्ततः मृत्यु के पाश में बँध जाता है। अतः दक्षिणावर्त जल घुमाव युक्त जल से परिपूर्ण भूखण्ड को ही उत्तम जानकर चयन करना चाहिए।

3. समरांगण सूत्रधार वास्तुशास्त्र का एक प्रसिद्ध एवं वैज्ञानिक की कसौटी पर आधरित ग्रन्थ है उसके अनुसार भूमि परीक्षण की विधियाँ कुछ इस प्रकार से बताई गई है। उसके अनुसार भूखण्ड के मध्य में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा

खोदा जाना चाहिए और उसको पूर्ववत् जल से परिपूर्ण करके सौ कदम आगे जाकर लौट आए और उसके बाद उसका निरीक्षण करें यदि जल से पूरित गड्ढे में जल की मात्राा एक चौथाई से कम रह जाए तो वह भूखण्ड अनिष्टकारक होगा। और यदि चौथाई भाग के आधे से अधिक जल शेष रह जाए तो मध्यम और यदि चौथाई में आधे से अधिक शेष जल रह जाए तो उत्तम भूखण्ड जानना चाहिए।

उपर्युक्त परीक्षण का वैज्ञानिक परीक्षण आधर है कि भूखण्ड में जल की मात्र भूभाग की ठोसता का सूचक है और दूसरी बात यह ध्यान देने योग्य है उस भूखण्ड पर निर्मित आवास में प्रवास करने वाले निवासियों के जीवन में भी उसी प्रकार से सुख–शान्ति, समृद्धि बनी रहेगी चूँकि जल हमारे जीवन का आधार है। जल शीतलता और शान्ति का प्रतीक है। आज भी जिन राष्ट्रों में शान्ति स्थिरता की बात होती हो वह चिन्तन रहता है उस–उस राष्ट्र को उन्नति, समृद्धि के पथ पर देखा जा सकता है। अतः घर में निवास करने वाले प्रत्येक गृहवासी को आवश्यक है कि सुख–शान्ति, समृद्धि बनी रहती है।

4. पूर्वोक्त क्रम में गड्ढा का निर्माण करके गृहपति के हाथों सम्पन्न करवाकर सांयकाल को गड्ढे को जल से पूरित करवा देना चाहिए प्रातः काल देखने पर यदि

जल की मात्राा में यदि परिवर्तन जैसे कि यदि उस गड्ढे में जल शेष बचा दिखाई दे तो वृ(और केवल कीचड़ ही बचा हो तो समता और यदि उसमें दरारें पड़ जाए तो नाश समझना चाहिए। इस परीक्षण में भी स्पष्ट है कि जल शेष रहने पर भूमि की ठोसता एवं उस भूखण्ड पर निवास करने वाले लोगों के मन में एकाग्रता, बुद्धिमत्ता, स्थिरता, सकारात्मकता प्रायशः बनी रहेगी। कीचड़ शेष रहने पर समता अर्थात् जीवन में परिवार सहित परस्पर विचारों के आदान–प्रदान में, चिन्तन में, एकता, अखण्डता की विचारधारा बनी रहेगी और इस प्रकार से जीवन जीते हुए व्यक्ति स्वस्थ रहता हुआ दीर्घायु हो जाता है। दरारें इस बात की सूचक है कि ठीक इसके विपरीत विचारों के आदान–प्रदान में, चिन्तन में, एकता, अखण्डता में कभी भी एकता की भावना में सकारात्मकता नहीं आ सकती और जब इस प्रकार की स्थिति जब परस्पर बनी रहेगी तो प्रत्येक परिवार के मन मस्तिष्क में एक–दूसरे के प्रति नकारात्मकता और द्वेष, कलह आदि की वृद्धि होने पर परिवार और घर का नाश होना स्वाभाविक है।

5. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। जिनके अनुसार सम्पूर्ण जगत राशि, नक्षत्राों के अनुसार कार्य करता है। अतः सर्वप्रथम मन एवं मस्तिष्क से इस विषय को निकाल देना चाहिए कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातीयगत न होकर वर्णगत हैं। यह एक ईश्वरीय संरचना है। चूँकि मानव अपनी राजनैतिक बुद्धि के बल पर इस ध्रा में निवास करने वाले लोगों अपनी राजनीति यथावत् बनाए रखने हेतु किसी भी नीचता की पराकाष्ठा पर उतर सकता है। किन्तु ईश्वरीय संरचना को भी झूठलाया नहीं जा सकता चूँकि ब्राह्मणादि वर्णों की व्यवस्था आकासीय पिण्डों से प्राप्त होने वाली सकारात्मता एवं नकारात्मकता उफर्जा के उफपर आधरित है। आप सभी अवगत होंगे वही सूर्य प्रातः काल में जीवनदायिनी रश्मियों के प्रकाश से प्रकाशित करता हुआ निरोग एवं स्वस्थता की वृ(

करता है और वही भगवान भास्कर द्वारा निःसृत मध्यकालीन उफर्जा का प्रवाह भयानक ताप से तापित करता हुआ हमारे शरीर में तरह–तरह के पित्तजन्य रोगों का समावेश घर कर देता है। अतः संसार के समस्त जड़–चेतन में सकारात्मकता एवं नकारात्मकता दोनों विद्यमान रहती है। अन्तर केवल आपके चिन्तन पर आधारित है कि आपका चिन्तन किस प्रकार का है। ठीक इसी प्रकार से राशि नक्षत्रों एवं ग्रहों को भी उनके गुण धर्म एवं दोषों के आधर पर ब्राह्मणादि वर्णों में विभाजित किया गया है। अतः व्यक्ति विशेष जिस समय जिस घटी, पल में जन्म होता है। वह कालवशात् आकाशीय ग्रह नक्षत्राों के क्रमानुसार उस उस वर्ण में स्वतः ही आ जाता है अतः यदि वर्णगत व्यवस्था के अनुसार भूखण्ड का चयन होगा तो उस उस वर्ण से सम्बन्धित व्यक्ति विशेष अपने कार्यों में संलग्न होते हुए सुख–शान्ति, समृद्धि एवं भाग्य की अभिवृद्धि को प्राप्त करेगा। उपर्युक्त विधि में पुष्प के कुम्हलाने की चर्चा इस बात की सूचक है कि उस भूखण्ड के आस–पास का पर्यावरण वातावरण कैसा रहेगा। भूमि परीक्षण में आपने पाँचों विध्यिों को पढ़ा होगा, प्रथम चार विध्यिाँ भूखण्ड के वातावरण की सूचक हैं। चूँकि वास्तु भवन निर्माण में भूमि प्रमुख आधर है। यहाँ भूमि परीक्षण का तात्पर्य है कि भूमि जितनी ठोस, निर्दोष और विभिन्न प्रकार के लक्षणों से युक्त होगी उस भूखण्ड पर निवास करने पर गृहवासियों का मन मस्तिष्क एवं चिन्तन सकारात्मक तथा दृढ़ संकल्प युक्त तथा सुख–सम्पन्नता से युक्त होगा। अतः विविध् प्रकार के परीक्षणों के उपरान्त यदि भूमि कटी कटी, शल्य ;हड्डीद्ध युक्त वल्मीक एवं दीमक युक्त हो तो वह भूमि गृहपति सहित परिवार को कष्ट देने वाली होती है। अतः ऐसी भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए।

भूखण्ड के संस्कार–

आकार रंग एवं शब्द आदि गुणों से युक्त भूमि का चयन करने के बाद वास्तु स्थापित कर देव पूजा करनी चाहिए।

उस समय स्वस्तिवाचक घोष एवं जय आदि मंगलकारी शब्दों के साथ इस प्रकार कहना चाहिए–

स्वस्तिवाचक घोषेण जय शब्दादिमलैः।
अपक्रामन्तु भूतानि देवता सराक्षसाः।।

भूखण्ड पर हल चलाकर गोबर मिश्रित सभी प्रकार के बीजों को बो देना चाहिए।

बैल एवं बछड़ों के साथ गायों को वहाँ बसा देना चाहिए क्योंकि गायों, बैलों के वहाँ चलने से व सूँघने से वह भूमि पवित्रा हो जाती है।

बैलों के नाद से बछड़ों के मुख से गिरे हुए पफेन से भूमि अलघ्कृत हो जाती है व भूमि के सभी दोष ध्ुल जाते हैं–

सहृष्टतृषनादै निधैतकलुषीकृतम्।
वत्सवक्त्राच्युतैः पफेनै संस्कृतं प्रस्नवैरपि।।

गोमूत्र से सीचीं गई तथा गोबर से लीपी हुई तथा गायों के चलने से भूमि शुद्ध हो जाती है।

गाय की गन्ध से युक्त इसके बाद पुण्य जल से पुनः पवित्र की गई भूमि पर निर्माण के लिए शुभ तिथि से युक्त नक्षत्र का विचार करना चाहिए।

भूमि का विस्तार

भूखण्ड के समीप भूमि का विस्तार करने वाले को चाहिए कि वह उसके शुभाशुभत्व पर विचार कर लेना चाहिए। इसका उल्लेख पुराणों में भी किया गया है।

पूर्व दिशा में बढाया गया वास्तु क्षेत्रफल सदा शत्रुता को उत्पन्न करता है
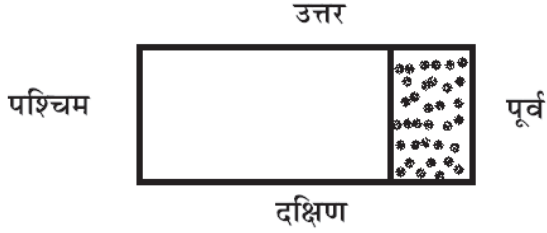
दक्षिण दिशा में बढाया गया वास्तु मृत्युकारी होता है।
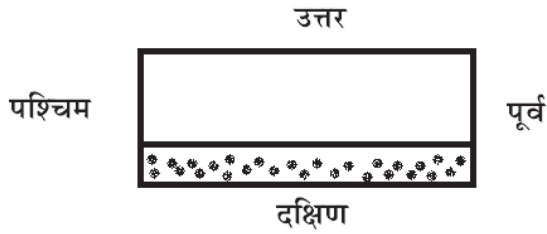
पश्चिम दिशा में बढाया गया वास्तु धनक्षयकारी होता है।
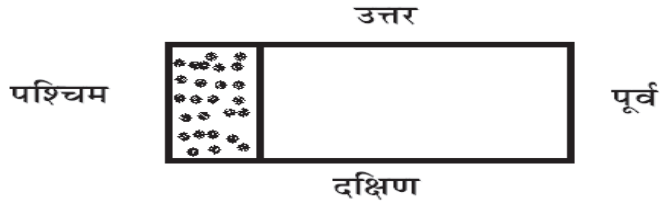
उत्तर दिशा की ओर बढाया गया वास्तु दुःख और सन्ताप की वृद्धि करता है।
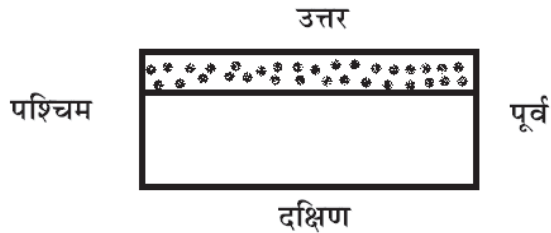
इसी प्रकार से अग्नि कोण में बढने पर अग्नि का भय, नैर्ऋत्य कोण में बढने पर शिशुओं का विनाश, वायव्य कोण में वात या व्याधि रोग। ईशान कोण में अन्न की हानि। अतः गृह

के किसी भी अंश को पिण्ड से आगे नहीं बढाना चाहिए तथा यदि बढाना ही तो सभी दिशाओं को एक साथ बढाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–

निम्न प्रश्नों के सत्य/असत्य आधरित उत्तर दें।

1– भूखण्ड चयन के बाद वास्तु पूजन नहीं करना चाहिए। सत्य/असत्य

2– पूर्वदिशा में बढ़ा हुआ भूखण्ड सदा शत्रुता में वृद्धि करता है। सत्य/असत्य

3– उत्तर दिशा में बढ़ाया गया वास्तु सन्ताप और दुःख की वृद्धि करता है। सत्य/असत्य

4– गोमय से युक्त भूमि शुद्ध हो जाती है। सत्य/असत्य

5– गाय और बछड़े भूमि की पवित्रता के सूचक हैं। सत्य/असत्य

4.4 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने भू परीक्षण के विषय में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की। भू परीक्षण क्यों आवश्यक है इस विषय में और उसकी महत्ता भूखण्ड वासियों को क्यों आवश्यक है इस विषय में ज्ञान ग्रहण किया। उपखण्ड दो में वीथियों के विषय में जानकारी प्रदान की गई। पूर्व की ओर नीची भूमि का प्रतिफल क्या है, उत्तरदिशा में नीची भूमि का प्रतिफल क्या है। कौन कौन से वर्णों के लिए किस प्रकार की भूमि उपयुक्त है इस विषय में जानकारी दी गई। भूखण्ड के चयन के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई कि किस प्रकार का भूखण्ड कौन से वर्ण के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार से समस्त भूखण्ड से सम्बन्धित विषयों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

शुक्लामृत्स्ना = सफेद मिट्टी
प्रकीर्तिता = कही गई है
रक्तमृत्स्ना = लाल वर्ण युक्त मिट्टी
हरिद्वैश्या = हरित वर्ष भूमि वैश्य के लिए
कटुकं = कटु कड़वा
मधुरं = मीठा
कषाय = कसैला
प्रागुत्तरोन्नत = पूर्व की ओर उन्नत
सुतक्षयः = पुत्रानाश
सुतवधः = पुत्र का वध
वक्रे = टेढ़ा–मेढ़ा

उदगदिपल्लमिष्टं= पूर्व की ओर ढ़लान वाली
गजपृष्ठ = हाथी की पेठ के समान
कूर्मपृष्ठ = कछुए की पीठ के समान
दिक्परिच्छेद = दिशा का परिच्छेदन
प्रशस्त = उपयुक्त
घोषेण = घोष के द्वारा ;शब्द के द्वाराद्ध

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.3.1 अतिलघूत्तरीय प्रश्नोत्तर उपखण्ड एक

1. सपेफदवर्ण युक्त
2. गृहपति के द्वारा
3. एक हाथ गहरा, एक हाथ चौड़ा।
4. शीतलता का, परस्पर प्रेम सहभागिता का।
5. वास्तुशास्त्रा का ग्रन्थ है।

4.3.2 उपखण्ड दो

1. अनिष्ट एवं अमंगलकारी
2. मंगलकारी
3. चार
4. उत्तरायण
5. एक शेष बचे

4.3.3 उपखण्ड तीन

1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2. वास्तुरत्नावली, श्रीजीवनाथ दैवज्ञ, सम्पादक डॉ. श्रीकृष्ण जुगनु, 2009 चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली।

3. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल विरचित, सम्पादक आचार्य कमलकान्त शुक्ल, 1999 सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. मयमतम्, दानवराज मय कृत, व्याख्यातृ डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2013 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

5. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण जुगनु, 2005 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. समराघँणसूत्राधर, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

1– भू परीक्षण क्यों आवश्यक है? स्पष्ट करें।
2– वर्णानुसार भूमि का चयन क्यों उपयुक्त है स्पष्ट करें।
3– भौगोलिकता की दृष्टि से पृथ्वी का सम्बन्ध स्थापित करें।
4– गो, यम, जल, गज वीथियों का विस्तृत उल्लेख करें।
5– भूखण्ड संस्कार की क्या आवश्यकता है स्पष्ट करें।

इकाई - 5 वीथि विचार

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना–

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम भूखण्ड की उँचाई–नीचाई के आधर पर वीथियों के बारे में विचार करेंगे। वस्तुतः यह इकाई गृहनिर्माण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यदि हम विचार करें कि भूखण्ड के प्लवत्व की भूखण्ड का ढलान किस ओर है तो यह एक अलग विषय हो जाएगा। क्योंकि पूर्व की इकाईयों में हमने भूखण्ड का प्लवत्व विचार किया। जिसको हम भूखण्ड का ढलान अमुक दिशा की ओर है। यह भूखण्ड के विषय में स्थूल विचार किया गया। अतः भूखण्ड के विषय में सूक्ष्म ज्ञान की प्राप्ति हेतु हमें भूखण्ड के प्रत्येक कोने के विषय में ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि जब हम गृह निर्माण करेंगे तो निश्चित रूप से यह आवश्यक नहीं कि भूखण्ड का सम्पूर्ण भाग उत्तर दिशा में झुका होगा। अथवा सम्पूर्ण भाग पूर्व की ओर ही झुका होगा। इस विषय को और अध्कि गहराई तक जानने हेतु हमें सूक्ष्म परीक्षण की आवश्यकता होगी। सूक्ष्म परीक्षण हेतु हमें दिशाओं और विदिशाओं के विषय में जानकारी होनी चाहिए। प्रधानरूप से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार दिशाएँ प्रमुख हैं। परन्तु पूर्व और दक्षिण के मध्य में कौन सा स्थान है। दक्षिण और पश्चिम के मध्य में कौन सा स्थान है। इसी प्रकार से पश्चिम और उत्तर तथा उत्तर–पूर्व के मध्य में स्थित स्थान के विषय में स्थित विदिशाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना तथा इन्हीं विदिशाओं के मध्य में स्थित भूखण्ड की उँचाई का फल, नीचाई का पफल क्या होगा। सामान्य जन जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इन सभी विषयों को इस इकाई के माध्यम से विस्तृत रूप से हम जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य–

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है भूखण्ड के विषय में सूक्ष्म रूप से और अधिक जानकारी प्राप्त करना। पूर्व की इकाईयों में हमने भूखण्ड की चारों दिशाओं की उँचाई–नीचाई के विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान ग्रहण किया। परन्तु भौगोलिक स्थिति के आधर पर आठ प्रकार की दिशा–उपदिशा के विषय में ज्ञान ग्रहण करना। वास्तु शास्त्रा इन आठ प्रकार की भूखण्ड की स्थितियों के आधर पर उँचाई–नीचाई के अनुसार आठ प्रकार की वीथियों की परिकल्पना करता है। इन्हीं वीथियों की परिकल्पना करके उनके आधर पर वास्तुशास्त्रीय नियमों के अनुरूप शुभाशुभ की प्राप्ति क्या होगी, इस विषय में विस्तृत रूप से ज्ञान ग्रहण करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

5.3 मुख्य भाग एक–

5.3.1 उपखण्ड एक–दिशा साधन

हम पूर्व की इकाईयों में वास्तु शब्द का अर्थ, वास्तु की उत्पत्ति, वास्तु क्यों आवश्यक? वास्तु के लिए उपयुक्त भूमि, वास्तु के प्रकार, वास्तु का ढलान, पूर्वादि दिशाओं में ढलान का फल, वर्णानुसार भूमि चयन, वास्तु के परिक्षेत्र में विभिन्न वृक्षों का रोपण, वास्तु के कारण आय एवं व्यय, लाभ–हानि इत्यादि मानव जीवन में उपयोगी समस्त विषयों का अध्ययन हम

करते आ रहे हैं। वस्तुतः सामान्य जीवन में हम वास्तु निर्माण अर्थात् गृहनिर्माण में स्थूल रूप से मुख्य दिशाओं अर्थात् पूर्व–पश्चिम, उत्तर, दक्षिण का उल्लेख करते हैं। तथा व्यावहारिक रूप से भी लोगों के मन मस्तिष्क में केवल इन चारों दिशाओं का ही समावेश रहता है। इन चारों दिशाओं के ढलान के विषय में हमनें पूर्व की इकाईयों में अध्ययन किया है। यहाँ हम आज पुनः ढलान के विषय में ही अध्ययन करेंगे परन्तु अन्तर केवल इतना है कि वहाँ हमने पूर्व आदि दिशाओं के विषय में अध्ययन किया था और यहाँ पर हम पूर्व और दक्षिण के मध्य भाग में स्थित भूखण्ड के विषय में आज हम ज्ञान ग्रहण करेंगे। इसी क्षेत्र को वास्तु शास्त्र में वीथि कहा गया है। वास्तु के अनुसार प्रत्येक स्थान की उँचाई–नीचाई का फल भिन्न है। अतः भूखण्ड के प्रत्येक कोने का सही प्रकार से आकलन करना चाहिए। वास्तु का प्रमुख उद्देश्य–

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तूनामयनं सुखास्पदमितं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशान्ति तेन विबुधः श्रीविश्वकर्मादयः।।

इसलिए आवश्यक है कि भौतिक सुख–संसाधन एवं गृह, पुत्राादि के भोग, सुख का जनक, धर्म–अर्थ–काम को देने वाला जीवों का निवास स्थान, सुख का स्थान, शीत, गर्मी, जल आदि से रक्षा करने वाला होता है। गृह निर्माण से वापी, देव मन्दिर आदि निर्माण के द्वारा प्राप्त होने वाले फल की प्राप्ति होती है। इसलिए विश्वाकर्मादय आचार्यों ने सर्वप्रथम गृह निर्माण करने का आदेश दिया है।

अतः इस प्रकार गृह निर्माण किए जाने हेतु समस्त सकारात्मक गुणों का गृह के अन्दर किस प्रकार से समावेश हो इस हेतु आवश्यक है कि वास्तुशास्त्रीय नियमानुरूप यदि गृह निर्माण किया जाए तो निश्चित रूप से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति सम्भव है।

अतः गृह निर्माण हेतु दिशा और उपदिशाओं का पारम्परिक विधि से ज्ञान होना परमावश्यक है तथापि आधुनिक काल में दिशा सूचक विविध यन्त्र उपलब्ध हैं। अतः यह जानना भी परमावश्यक है कि आज से हजारों वर्षों पूर्व हमारे ऋषियों, महर्षियों, मुनियों द्वारा दिशा–उपदिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कौन सी विधि का उपयोग किया जाता रहा होगा। अतः सर्वप्रथम दिक् साधन करना परमावश्यक होगा।

दिक् साधन का प्रयोजन– दिक् शुद्धि के बिना गृह–प्रासाद–जलाशय का निर्माण हानि व मृत्युकारक होता है। अतः प्रथम दिक् शोधन करना चाहिए। यथा–

दिक्शुद्धिरहितं गेहं प्रासादो वा जलाशयः।
कुर्यानिं मृतिं तस्मादादौ दिक्शोधनं चरेत्।।

दिक् शोधन के विषय में और भी ऋषियों द्वारा कहा गया है कि दिक् शोधन क्यों आवश्यक है। प्रासाद, गृह, अलिन्द, द्वार और कुण्ड के निर्माण में विशेष रूप से दिक् शोधन करना चाहिए। क्योंकि दिक् भ्रमित होने पर कुल का नाश होता है। यथा–

प्रसादे सदनेलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिक्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्माद् संसाध्येद्दिशः।।

पहले धरातल के भाग को समान करके सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखी गई रीति के अनुसार स्पष्ट पूर्वापर का साध्न करके उसके बाद उस भूमि पर घर बनवाना चाहिए। जैसे–

प्रथमे सुसमे क्षेत्रो प्राचीं संसाध्येत्स्फुटम्।
सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततौ निष्पादयेद् गृहम्।।

दिक् साध्न में जल के समान भूमि को एकदम समतल बनाकर उस पर एक वृत्त बनाना चाहिए। उस वृत्त के केन्द्र में एक बारह अंगुल का शंकु स्थापित करना चाहिए। शंकु की छाया पूर्वादि में उस वृत्त की परिधि में जहाँ प्रवेश करे वह पश्चिम दिशा और दिन के मध्याह्न के उपरान्त उस शंकु की छाया जहाँ उस परिधि से निकलती हुई स्पर्श करे वह बिन्दु पूर्व दिशा होगी। इस प्रकार से पश्चिम बिन्दु का ठीक ज्ञान हो जाएगा। परन्तु प्रतिक्षण क्रान्ति की विलक्षण गति लक्षित होने के कारण पूर्व बिन्दु का ठीक ज्ञान नहीं हुआद्ध अतः छाया प्रवेश और छाया निर्गम काल की अलग–अलग क्रान्तिज्याओं के अन्तर को छाया कर्ण के मान से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर जो अंगुलादि उतना अयम की दिशा की ओर वृत्त में चला दें तो स्पष्ट बिन्दु हो जाता है। उसके बाद पूर्व और पर दोनों बिन्दुओं से मत्स्योत्तपादन करके याम्योत्तरा अर्थात् दक्षिण और उत्तरदिशा का साधन करना चाहिए। प्रायः साक्ष देशों में ध्रुवतारा ठीक उत्तर दिशा की ओर रहता है। एक ही समय के छायाग्र पर से उसी इष्टकाल का भुज और कोटि का साध्न सिद्धान्तोक्त प्रकार से करके उन्हीं भुज और कोटि दोनों के बराबर शलाका लेकर यथास्थान स्थापन करे तो कोटि पूर्वापरा और भुज दक्षिणोत्तरा हो जाएगी। यथा सि(ान्त शिरोमणि के अनुसार–

वृत्तेऽम्भः सुसमीकृते क्षितिगते केन्द्रस्थशंकोः क्रमाद्
भाग्रं यत्रा विशत्यपैति च यतस्तत्राापरैन्द्रयौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराकर्णमित्या हता
ल्लम्बज्याप्तमिताघ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता।।
तन्मस्यादय याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भये–
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटिमितां शंकूतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्टयग्रयोः संयतिः
कोटि प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा।।

मतान्तर से दिक् साध्न– जल के समान समतल भूमि पर एक प्रकार से एक वृत्त बनाकर 12 अंगुल का एक शंकु स्थापित करें। उसकी छाया का प्रवेश स्थूल पश्चिम बिन्दु होगा और अपरार्ि में वृत्त से बहिर्गत बिन्दु पर पूर्व बिन्दु होगा। उन दोनों बिन्दुओं से मत्स्य रेखा करके मत्स्य रेखा के मुख–पुच्छगत सीधी रेखा उत्तर–दक्षिण रेखा होगी। इस रेखा के मध्य केन्द्र बिन्दु से जो लम्ब रेखा होगी वह रेखा पूर्व–पश्चिम वृत्त को जहाँ काटेगी वह पूर्व छिन्न बिन्दु पश्चिम बिन्दु छिन्न बिन्दु होगा। परन्तु यह प्रकार 30 घटी का दिनमान होगा।

अन्यथा प्रवेश निर्गमकालिक क्रान्तिज्यान्तर चालन देने पर ही दिक् सिद्धि होगी। वस्तुतः वृत्त के मध्य केन्द्रगत शंकु की मध्याह्नकालिक स्वमार्ग में परिवर्द्धित छायारूप रेखा से छिन्न वृत्त प्रदेश दक्षिणोत्तर व केन्द्र से उसके उपर कृत लम्बरूप व्यास रेखा से छिन्न वृत्त प्रदेश दक्षिणोत्तर व केन्द्र से उसके उपर कृत लम्बरूप व्यास रेखा से छिन्न वृत्तप्रदेश पूर्व व पश्चिम दिशा होगी। दिग्ज्ञान की यह सुलभ रीति है। अर्थात् वृत्त में केन्द्रगत दक्षिणोत्तर व्यास रेखोपरि केन्द्र स्थान में जो लम्ब रेखा होगी उससे पूर्व छिन्न बिन्दु पूर्व एवं पश्चिम व दक्षिणोत्तर ज्ञान सुलभ होगा।

वृत्ते समभूगते तु केन्द्र–
स्थितशंकोः क्रमशो विशत्यपैति।
छायाग्रमिहापरा च पूर्वा
ताभ्यां सिद्धिति मेरुदक् च याम्या।।

दिक् साधन के विषय में और भी मत मतान्तर है यथा–

अवलम्ब ध्रुवाभिमुख स्थापित शुल्वसूत्र रूप रेखोपरि मत्स्य बनाएँ। उस मत्स्य के मुख –पुच्छगत रेखा होगी व मत्स्य के मुख–पुच्छगत रेखा के मध्यबिन्दु में कृत लम्ब रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होगी। यथा–

ध्रुवलम्बकरेखायां रेखान्ते सौम्ययाम्यहरितौ स्तः।
तन्मत्स्यपुच्छमुखतः पश्चिमपूर्वाभिधे विद्यात्।।

नक्षत्र के अनुसार दिक् साध्न– उज्जयिनी से दक्षिण देशवासियों के चित्रा और स्वाती के अन्तर से पूर्वापर दिशा का ज्ञान करना चाहिए। अर्थात् स्थिर करके पहले नलिका यन्त्र द्वारा चित्रा नक्षत्रा का वेध करके नलिकाग्र से दूसरा लम्ब जमीन पर गिरना चाहिए। इन दोनों लम्बों के मूल भाग में सूत्रा बाँधना यही पूर्वा परा दिशा हो जाएगी। एवं उज्जयिनी से उत्तर भाग के निवासियों को कृत्तिका नक्षत्रा के वेध से प्राची दिशा का ज्ञान करना चाहिए। अर्थात् कृत्तिका नक्षत्रा का वेध करे नलिका के अग्र और मूल दोनों छोरों से दो लम्ब समतल भूमि पर गिरावे। इन दोनों लम्ब मूलों में सूत्रा लगा देवें तो वही ठीक पूर्वापरा हो जाएगी। इन नक्षत्राों का वेध युग मात्र छियासी अंगुल उपर नक्षत्रों के आ जाने पर करना चाहिए। यथा–

चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणादक्षिणापथवासिनाम्।
प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम्।।

तथापि निम्न मतानुसार नक्षत्राों से स्पष्ट किया जा सकता है। यथा 1– कृत्तिका, पुष्य, श्रवण और चित्रा, स्वाती का अन्तर यही प्राची दिशा का रूप है। अर्थात् कृत्तिका वेध के समान पुष्य और श्रवण को भी वेध करके प्राची दिशा का ज्ञान करना चाहिए। शेष का अर्थ पूर्व श्लोक में गतार्थ है। युग मात्रा 86 अंगुल नक्षत्र के उपर चढ़ जाने पर यह वेध करना चाहिए। यथा–

कृत्तिका श्रवणं पुष्यं चित्राास्वात्योर्यदन्तरम्।

एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्राोदिते पुरे।।

मार्कटिका और ध्रुव तारा द्वारा दिक् साधन–

तारेमार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेवलम्बे नते
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।
शंकोर्नेत्रागुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो–
र्जाता यत्रा युतिस्तु शंकुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्पुफटे।।

सप्तर्षि ताराओं में से पहले के दो ताराओं को मार्कटिका कहते हैं। मार्कटिका और ध्रुव ये तीनों ताराएँ जब एक सीध में हों जाएँ तब दीपशिखा के साथ एक सीध में करने पर उत्तर दिशा का ज्ञान होता है। अर्थात् जब उपर्युक्त तीनों ताराएँ एक बराबर सीध में दिखाई पड़े तब एक शंकु समधरातल पर लम्बरूप स्थापित करें और उस शंकु के दक्षिण भाग में एक दीपक स्थापित करें और इस प्रकार से दीपक रखा होना चाहिए कि दीपशिखा, शंकु और ध्रुव तीनों एक सीध में दिखाई देने लगे तो शंकु मूल और दीपशिखा मूल में एक सीध में दिखाई देने लगे और शंकु मूल, दीपशिखा मूल में एक सूत्रा बाँधे और यह निश्चित करें कि बंध हुआ सूत्रा दक्षिणोत्तर दिशा होगी। अथवा 32 अंगुल के वृत्त के व्यासार्ध के केन्द्र में 12 अंगुल का शंकु रखने से जहाँ वृत्त से शंकु की छाया निकले वहाँ पूर्व दिशा और जहाँ छाया पड़े या दिखाई दे वह पश्चिम दिशा होगी। विशेष दिशा साधन के ये प्रकार स्थूल हैं। क्योंकि अयनांश के कारण ठीक उत्तर दिशा में ध्रुव की तारा नहीं हैं। परन्तु समाज में दूसरे प्रकार से दिशा साध्न करने हेतु सूर्यक्रान्ति वश चलाचल होने के फलस्वरूप स्थूल है।

अभ्यास प्रश्न

1. धर्म–अर्थ–काम की प्राप्ति कैसे सम्भव है।
2. विश्वकर्मा द्वारा सर्वप्रथम किस कार्य हेतु आदेशित किया।
3. दिशा साधन क्यों आवश्यक है।
4. दिशा साधन न करने पर क्या प्रभाव रहेगा।
5. कौन–2 से कार्यों हेतु दिशा साधन आवश्यक है।

5.3.2 उपखण्ड दो– विदिशा विचार

पूर्व की इकाईयों में हम दिशा साध्न एवं उसकी आवश्यकता क्यों है इस विषय में अध्ययन कर चुके हैं। दिशा साधन के उपरान्त विषय यह आता है कि पूर्व और दक्षिण का भाग, दक्षिण और पश्चिम का भाग, अथवा पश्चिम और उत्तर दिशा का मध्य भाग, या फिर उत्तर या पूर्व दिशा के मध्य भू भाग को क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर नाम देंगे अथवा दोनों दिशाओं के मध्य स्थित भाग को अलग कर देंगे।

वस्तुतः वास्तु शास्त्र में अनेकों जगह दिशा, विदिशा या उपदिशा के विषय में चर्चा हो चुकी हैं तथापि विदिशा या उपदिशा के नामकरण के पीछे भी भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि से

वास्तु शास्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप ही आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशानादि नामकरण किया गया है। यह आप सभी इस विषय से अवगत होंगे कि भारतीय वास्तुशास्त्र की संरचना शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विधिपूर्वक सम्पन्न हुई है। तथापि वास्तुशास्त्र की संरचना कर मूल आधार सूर्य की परिक्रमा करना पृथ्वी की आधार भूत सिद्धान्त पर निर्धारित है। इसी सिद्धान्त को आधर मानकर पूर्व, पश्चिमादि दिशाओं का भी निर्धरण किया गया है। शास्त्रीय पक्ष वास्तुशास्त्र के अनुसार कुछ भिन्न है। वस्तुतः भारतीय मनीषियों के अनुसार **'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** की कल्पना के अनुसार प्रत्येक जड़ अथवा चेतन में ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। भाग्यदर्शन प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास और आत्मा में परमात्मा के दर्शन का सिद्धान्त पर कार्य करता है। इसी क्रम में वास्तु शास्त्रा का सिद्धान्त भी कार्य करता है। इस विषय में सूक्ष्म रूप से ज्ञान ग्रहण हेतु आवश्यक होगा कि वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति के विषय को जान लेना। वास्तुशास्त्र के विषय में प्रामाणिक ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है कि प्राचीन काल में कोई अज्ञात प्राणी इस धरा पर उत्पन्न हुआ वह अपने विशालकाय शरीर से सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त किए हुए थे। आश्चर्य चकित होकर समस्त देवताओं ने उसे अधेमुख करके औंधे मुँह लिटा दिया। उसके शरीर को जिस भाग से जिस देवता ने पकड़ा था उस अंग का वही देवता मान लिया गया।

अतः ब्रह्मा जी के द्वारा उस पुरुष की कल्पना वास्तु पुरुष के रूप में की गई। वास्तु पुरुष विषयक यह कथा बृहस्पति जी द्वारा भी कुछ इस प्रकार से कही गई है। यथा–

पुराकृतयुगे ह्यासीत् महद्भूतं समुपस्थितम्।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।।
तद् दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्राः भयावृताः।
ततस्तैः क्रोध्सन्तप्तैर्गृहीत्वा तमथासुरम्।।
विनिक्षिप्तमधेवक्त्रां स्थितास्तत्रौव ते सुराः।
तमेव वास्तुपुरुषं ब्रह्मा समभिकल्पयत्।

उपर्युक्त श्लोकों को आधर मानकर वास्तुपुरुष को औंधे मुख स्थापित करने वाले देवताओं के कारण वश जिस दिशा में जो देवता स्थित था वही देवता उस दिशा का स्वामी हो गया। यथा पूर्व में सूर्य प्रधन देवता, आग्नेय, पूर्व और दक्षिण के मध्य में अग्निदेव, दक्षिण में यमराज, दक्षिण और पश्चिम के मध्य में र्निति, पश्चिम में वरुणदेव, उत्तर में कुबेर, ईशान में भगवान शिव का वास होने के कारण वहाँ देवस्थान, आग्नेय में रसोई घर इत्यादि इसी क्रम में गृह निर्माण करना चाहिए। इसी के साथ इसका वैज्ञानिक आधर भी है। अतः यदि गृह निर्माण में वास्तुसम्मत नियमानुसार गृह के मध्य में यदि साज–सज्जा करेंगे तो निश्चित रूप से परिणाम सकारात्मक होंगे तथा जीवन में सकारात्मकता बनी रहेगी। इसी सकारात्मकता के कारण आप अपने जीवन में आरोग्य रहते हुए दीर्घायु होंगे।

पूर्व की इकाईयों में आपने दिक् साध्न के विषय में अध्ययन किया होगा। इसी दिक् साध्न के आधर पर हमें विदिशाओं के विषय में विचार करना चाहिए। विदिशा विचार हेतु सबसे सरल एवं सुलभ आधर है कि हम पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तो

निश्चित हो जाएगा कि एक सामान्य बात है कि सूर्योदय का सूर्य सम्मुखस्थ दिशा पूर्व कहलाएगी और उसी क्रम अन्य प्रधन दिशाओं का निर्धारण भी सम्भव होगा।

अतः पूर्व और दक्षिण के मध्य भाग को आग्नेय, दक्षिण और पश्चिम के मध्य भाग को नैर्ऋत्य, पश्चिम और उत्तर के मध्य भाग को वायव्य कहेंगे तथा उत्तर और पूर्व के मध्य भाग को ऐशान्य उपदिशा कहेंगे। उपदिशा, विदिशा पर्यायवाची शब्द हैं। वस्तुतः वास्तुशास्त्र में सामान्य दिशाओं का निर्धारण तो सामान्य है परन्तु विदिशाओं का निर्धरण करना एवं तथा भूखण्ड के अन्दर वास्तुसम्मत कक्षों का निर्धरण करना अहम विषय है। अतः प्रत्येक वास्तुशास्त्री को सर्वप्रथम गृह निर्माण से पूर्व दिशा और उपदिशाओं के विषय में सूक्ष्म रूप से ज्ञान ग्रहण करने के उपरान्त गृहनिर्माण करना चाहिए।

पूर्व में भी हम आपको प्लवत्व या ढलान के विषय में बता चुके हैं तथापि विदिशाओं के विषय में और भी अध्कि सूक्ष्मता पूर्वक ज्ञान ग्रहण करने के हेतु से यहाँ पुनः हम पूर्वादि मध्यभागस्थ उपदिशाओं के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा करेंगे। यथा यदि भूखण्ड के पूर्व और दक्षिण के मध्य भाग को आग्नेय कोण और यदि भूमि ढलान आग्नेय कोण में रहेगा तो ऐसे भवन में निवास करने पर शरीर दाह, आगजनी आदि घटनाओं की सम्भावनाएँ अध्कि रहेंगी। इसी क्रम में दक्षिण और पश्चिम के मध्य नैर्ऋत्य में भूमि का ढलान होने से गृह निर्माण करने पर गृहपति को धनहानि, आकस्मिक दुर्घटना, दुर्व्यसन, दीर्घकालीन रोगों का सामना करना पड़ता है। जिस भवन का ढलान पश्चिम और उत्तर अर्थात् वायव्य कोण में हो तो ऐसे भवन पर निवास करने पर धन–धान्य हानि, वाद–विवाद, अकाल मृत्यु का भय बना रहता है। जिस भूखण्ड का ढलान उत्तर और पूर्व के मध्य अर्थात् ईशान कोण में रहेगा तो उसमें निवास करने वाले लक्ष्मी प्राप्ति, ज्ञान, सुख–सम्पत्ति, आरोग्य तथा ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होता है। भवन का निर्माण सदैव पूर्व, ईशान तथा उत्तर की ओर झुकी हुई है भूमि पर करना ही श्रेयष्कर होता है। जो वास्तु भूमि पूर्व उत्तर या ईशान की ओर झुकाव वाली हो उस पर भवन निर्माण कर व्यक्ति जीवन में सुविध, सुरक्षा एवं सर्वविध सम्पन्नता प्राप्त करता है। इसलिए भूमि के ढलान के अनुसार भूखण्ड के चयन के साथ–साथ भवन के निर्माण में भी वास्तुशास्त्र के उक्त निर्देशों का भी ध्यान रखना चाहिए। भूमि के ढलान का शुभाशुभत्व पफल निम्नलिखित तालिका से सरलता से समझा जा सकता है।

भूमि के प्लवत्व ;ढलानद्ध का पफल

वास्तुभूमि के झुकाव की दिशा–उपदिशा	पफल
पूर्व	श्री तथा सुख सम्पत्ति की प्राप्ति
आग्नेय	दाह और आगजनी
दक्षिण	व्याधि, भय और मरण
नैर्ऋत्य	दुर्व्यसन, रोग
पश्चिम	अर्थक्षय, व्याधि

वायव्य	अस्थिरता, प्रवास
उत्तर	लक्ष्मी की प्राप्ति
ईशान	विद्यालाभ, ईश्वर की कृपा प्राप्ति।

भवन निर्माण के लिए भूखण्ड या प्लाट का चयन करते समय उपरोक्त बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि भूमि प्लवत्व से सम्बन्धित विभिन्न दिशाओं और उपदिशाओं में उसके ढलान के अनुसार उस वास्तु भूमि में बने भवन के निवासियों की मनः स्थिति प्रभावित होती हैं। मनः स्थिति के प्रभावित होने से जीवन का विकास प्रभावित होना स्वाभाविक है। अतः प्रस्तावित वास्तु भूमि के ढलान का सम्यक् विचार करके ही भवन निर्माण में प्रवृत्त होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न–1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो लाईन में दीजिए।

1 विदिशा किसे कहते हैं?

2 उत्तर–पश्चिम भूमि को क्या कहेंगे?

3 ईशान दिशा में प्लवत्व वाली भूमि का पफल क्या है?

4 व्याधि, भय, मरण कौन सी दिशा में निवास करने पर होता है?

5 पश्चिम प्लवत्व युक्त भूमि का पफल क्या है?

प्रश्न–2 निम्नलिखित प्रश्नों के समक्ष सत्य/असत्य का चयन करें!

1 पूर्व प्लवत्व वाली भूमि वास योग्य नहीं है। सत्य/असत्य

2 दक्षिण प्लवत्व युक्त भूखण्ड उत्तम होता है। सत्य/असत्य

3 उत्तर में निवास करने पर ध्न प्राप्ति होती है। सत्य/असत्य

4 नैर्ऋत्य में निवास करना श्रेयष्कर होता है। सत्य/असत्य

5 आग्नेय में रहने पर दाह, आगजनी घटनाएँ होती हैं। सत्य/असत्य

5.3.3–वीथि विचार

वास्तुशास्त्रा में भूखण्ड के उँचाई–नीचाई के आधार पर तथा दिशाओं, उपदिशाओं में उँचाई–नीचाई तथा क्षेत्रानुसार भौगोलिक स्थिति के अनुरूप आठ प्रकार की वीथियों की परिकल्पना करके उनके शुभाशुभत्व का विचार किया गया है। आप पूर्व की इकाईयों के माध्यम से भूखण्ड चयन को लेकर भूखण्ड निर्माण पूर्व तक बार–बार दिशाओं विदिशाओं के विषय में अध्ययन करते आ रहे हैं। वस्तुतः भूखण्ड की उपदिशाओं की उँचाई नीचाई को आधर मानकर वीथियों की परिकल्पना की गई है। जिस प्रकार से आपने पूर्व में अध्ययन किया कि पश्चिम में उठा हुआ भूखण्ड और पूर्व में ढलानवाला अति उत्तम श्रेणी का होता है। तथा इसके विपरीत पूर्व में उठा हुआ और दक्षिण में झुका हुआ ढलान वाला भूखण्ड

निम्न श्रेणी तथा कष्टकर होता है। इसी प्रकार से आपने पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के विषय में भी अध्ययन किया होगा तथा उसमें निवास करने पर होने वाले सुख, दुःख, लाभ–हानि, शरीरिक–मानसिक कष्ट के विषय में सूक्ष्मता से विचार किया गया होगा तथा ज्ञान भी ग्रहण किया होगा। इसी क्रम में आज हम यहाँ पर भूखण्ड की उँचाई–नीचाई के आधार पर भवन की उपदिशाओं के मध्य निवास करने वाले भूखण्डवासियों पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में सूक्ष्मता से अध्ययन करेंगे।

1. जो वास्तु भूमि आग्नेय दिशा में उठी हुई हो तथा ठीक इसके विपरीत या पृष्ठभाग वायव्यकोण 180° अंश की डिग्री पर झुकी हो उसे नागवीथी की संज्ञा दी गई है। अतः भारतीय अध्ययन प्रणाली में प्रायः बार–बार इस प्रकार से उल्लेख प्राप्त होता है कि नाम के अनुरूप ही गुण अथवा दोषों का समावेश होता है। अतः यहाँ पर यह जानना परम आवश्यक होगा कि यदि नागवीथि नामक भूमि पर निवास करेंगे तो निश्चित रूप से जैसे नाग काल का सूचक है। प्रायः स्थिर रहने वाला जीवन नहीं प्रायः वक्राकार में अधिक दृग्गोचर होता है।

अतः इस प्रकार के भूखण्ड पर निवास करने पर सर्वसम्पन्न होते हुए भी जीवन में अशान्ति, अस्थिरता के साथ–साथ समस्त अशुभ पफलों की भी प्राप्ति होती है। अर्थात् ऐसे भूखण्ड पर निवास करने वाले को यदि प्रतिदिन एक लाख रूपये की आय होती है तो जाने की चिन्ता, शारीरिक, मानसिक कष्ट, प्रायः हमेशा उद्विघ्न, चिन्तित किसी भी कार्य में मन न लगा पाना पारिवारिक समस्त कष्टों का अम्बार लगा रहता है। परन्तु वास्तु सम्मत भौगोलिकता के आधर पर प्रकृति द्वारा कुछ ऐसे समाधन भी दिए गए है जिसके आधर पर ऐसे भूखण्ड पर प्राप्त होने वाला नकारात्मकता वाला प्रभाव सकारात्मकता में परिवर्तित हो जाता है। यथा यदि नागवीथि भूमि पर कदाचित् वास करना पड़े तो ऐसी भूमि ईशान कोण से उठी हुई हो तो शुभ पफल को देने वाली होती है। अतः वास्तुशास्त्र का यह नियम है कि दिशा बदलो दशा सुधरेगी।

2. इसी क्रम में हमने उपर आग्नेय और वायव्य दोनों कोणों के विषय में ज्ञान ग्रहण किया अब हम ईशान और नैर्ऋत्य कोण के मध्य स्थित भूखण्ड के विषय में ज्ञान सकेंगे। उत्तर और पूर्व के मध्य स्थित भूखण्ड को ईशान तथा पश्चिम और दक्षिण के मध्य स्थित भूखण्ड को नैर्ऋत्य कोण कहते हैं। ठीक पूर्व की भाँति दोनों कोणों के मध्य 180° अंश की दूरी है। यदि इस प्रकार का भूखण्ड किसी के पास है और उसका ईशानवाला भाग उठा हुआ और नैर्ऋत्य वाला भाग झुका हुआ हो तो ऐसे भूखण्ड को वास्तुशास्त्रीयों ने भूतवीथि कहा गया है। अतः ऐसे भूखण्ड पर निवास करने वाले को भयंकर आपत्तियों का सामना तथा धन–हानि जैसा अशुभ फल भोगना पड़ता है।

3. जो वास्तु भूमि वायव्यकोण में उँची और अग्निकोण में झुकाव वाली हो उसे वैश्वानरी भूमि कहा गया है। हमने इसी प्रकरण के न0 एक में आग्नेय में उठी हुई और वायव्य कोण में झुकी हुई के विषय में अध्ययन किया था अब यहाँ पर हम ठीक इसके विपरीत वायव्य में उठी हुई और आग्नेय में झुकी हुई के विषय में जान सकेंगे यहाँ पर भी दोनों कोणों के

मध्य 180 ° अंश का अन्तर है। और पूर्व दक्षिण के मध्य भूभाग को आग्नेय तथा उत्तर–पश्चिम स्थित भूभाग को वायव्य कहते है। अतः ऐसे भूखण्ड को वैश्वानरी वीथि कहा गया है। इस प्रकार की भूमि पर वास करने वाले भूखण्ड स्वामी सदा सुखी, समृद्धि, ध्न–धन्य से पूर्ण तथा सर्वसम्पन्नता युक्त होता हुआ जीवनयापन करता है।

4. जो वास्तु भूमि नैर्ऋत्य में उँची और ईशान कोण में झुकी हुई हो तो उसे धन वीथि कहा जाता है। दक्षिण और पश्चिम भूभाग को नैर्ऋत्य तथा पूर्व और उत्तर के मध्य भूभाग को ईशान कोण कहते है। अतः ऐसी भूमि पर निवास करने पर भूमिपति को धन–धान्य की प्राप्ति के साथ–साथ सुख–शान्ति की भी प्राप्ति होती है तथा उत्तरोत्तर अभ्युदय होता है।

5. जो वास्तु भूमि पश्चिम दिशा में उँची और पूर्व में नीची हो उस गोवीथि कहते है। वस्तुतः भौगोलिक स्थिति के अनुसार यदि पश्चिम भाग भूखण्ड का उठा हुआ होगा और पूर्वभाग झुका होगा और इसके साथ वेध और बाध रहित होगा तो निश्चित रूप से सूर्य का प्रकाश ऐसे भूखण्ड पर सतत् बना रहेगा। क्योंकि सूर्य का प्रकाश ही भूखण्डवासियों को नित् नई उफर्जा का और नव स्पूफर्ति का संचार शरीर और मन को देकर प्रभावित करता है। अतः ऐसे भूखण्ड पर वास करने पर गृहपति धन–धान्य से समृ(होकर सुख एवं शान्ति को प्राप्त करता है। लोक में यश की प्राप्ति करता है। चूँकि प्रत्यक्ष शास्त्रा ज्योतिष के अनुसार सूर्य साक्षात् नारायण है। वैदिक मन्त्र कहता है कि – **आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यच हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्न।**

अर्थात् असत्य से सत्य का, अज्ञान से ज्ञान का, अंधकार से प्रकाश का द्योतक सूर्य है। अतः पूर्व में झुकाव वाली भूमि तथा पश्चिम में उठी हुई भूमि सदा सर्वदा सुख–समृद्धि एवं भाग्य की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि को करने वाली होती है।

6. इसी क्रम में जिस वास्तु भूखण्ड का पूर्वी भाग उठा हुआ हो और पश्चिम भाग झुका हुआ हो उसे जलवीथि कहते हैं। ऐसे भूखण्ड पर निवास करने पर समस्त अशुभ पफलों की प्राप्ति होती है। अतः ऐसे भूखण्ड पर कभी भी वास करने का विचार नहीं करना चाहिए। प्रायः जीवन में ऐसे भूखण्ड पर निवास करने वाले अप्रसन्न दुःखी और चिन्तित रहते हैं।

7. जो वास्तु भूमि उत्तर दिशा में उफँची और दक्षिण दिशा में नीची हो ऐसे भूखण्ड पर निवास नहीं करना चाहिए। चूँकि भूमि के मात्रा दो ध्रुव है उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। अतः उत्तर की झुकाव वाली भूमि को उत्तम श्रेणी का कहा गया है ठीक उसके विपरीत यदि भूखण्ड उत्तर की ओर उचा और दक्षिण की ओर नीच हो तो अशुभफल को देने वाला होता है। ऐसे भूखण्ड को यमवीथि कहते हैं। ऐसे भूखण्ड पर मकान बनाकर रहने वाले को दारिद्रय एवं कष्टजन्य पफल प्राप्त होते हैं।

8. जिस भूखण्ड का दक्षिणी भाग उठा हुआ हो और उत्तरी भाग झुका हुआ हो उसे गजवीथि कहा गया है। ऐसा भूखण्ड श्रेष्ठ श्रेणी का होता है। अतः ऐसे भूखण्ड पर निवास करने पर धन–धान्य की प्राप्ति तथा सुख–समृद्धि और भाग्य की अभिवृद्धि उत्तरोत्तर होती रहती है।

उपर्युक्त आठों वीथियों के शुभाशुभ का पफल निम्नलिखित तालिका के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

वीथि फल बोधक तालिका

क्र.	वीथि नाम	दिशा वास्तु भूमि जिस दिशा में उफँची है	दिशा वास्तु भूमि जिसमें नीची है।	पफल
1.	नागवीथि	अग्निकोण	वायव्य कोण	अशान्ति अस्थिरता
2.	भूतवीथि	ईशानकोण	नैर्ऋत्यकोण	चिन्ता तथा धन हानि
3.	वैश्वानरी	वायव्यकोण	अग्निकोण	मध्यम
4.	धनवीथि	नैर्ऋत्यकोण	ईशानकोण	सुख–शान्ति, समृद्धि
5.	गोवीथि	पश्चिम	पूर्व	धन–धन्य एवं यश वृद्धि
6.	जलवीथि	पूर्व	पश्चिम	सन्तान हानि
7.	यमवीथि	उत्तर	दक्षिण	दारिद्रय एवं कष्ट
8.	गजवीथि	दक्षिण	उत्तर	धनवृद्धि, यश अभिवृद्धि।

अभ्यास प्रश्न–1

प्रश्न–1 निम्नप्रश्नों का उत्तर संक्षिप्त में दें।

1 वीथि किसे कहते हैं?

2 वीथियाँ कितने प्रकार की हैं और कौन–कौन सी हैं?

3 वीथियों का विचार वास्तुशास्त्र में क्यों आवश्यक है?

4 यमवीथि वास्तु पर वास्तु करने का क्या पफल है?

5 गजवीथि भूमि किसे कहते हैं?

5.4 सारांश–

इस इकाई के माध्यम से आपने सर्वप्रथम शास्त्रीय दृष्टि से परम्परागत भारतीय प्राचीन दिशा निर्देशों के आधार पर दिशाओं का साधन करना उनके विषय में वैज्ञानिक ढंग से उपदिशाओं का निर्धारण करना प्रामाणिक तथ्यों एवं प्रमाण सहित शास्त्रोक्त युक्ति युक्त तथ्यों के विषय में विचार किया गया है। चूँकि वर्तमान में आधुनिक यन्त्रों का उपयोग करके दिशा एवं उपदिशा का निर्धरण करना सरल है परन्तु पूर्व काल में शास्त्रीय विधि से वैज्ञानिकता के साथ दिशा निर्धारण वास्तुशास्त्रियों के द्वारा किया जाता रहा है। विदिशाओं का निर्धरण करना आज भी आधुनिक यन्त्र कम्पास इत्यादि से स्थूल रूप से तो किया जा सकता है परन्तु सूक्ष्मता पूर्वक यदि इस विषय में विचार किया जाए तो प्राचीन भारतीय पद्धति कहीं आज भी अधिक कारगर सिद्ध हो रही है। इस इकाई के अन्तिम भाग में भूखण्ड के चारों दिशाओं एव उपदिशाओं के विषय में चर्चा की गई है। प्रायः सामान्य

भूखण्ड में पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण, के विषय में स्थूल विचार किया जाता है। परन्तु यहाँ पर हम चारों प्रधान दिशाओं के साथ–साथ चारों उपदिशाओं के विषय में भी सूक्ष्मता पूर्वक उसके ढलान के विषय में, उसने द्वारा प्राप्त होने वाले प्रतिफल के विषय में मिलने वाले सकारात्मक तथा नकारात्मक गति स्थिति वशात् प्राप्त होने वाले पफल के विषय में सरलता एवं सूक्ष्मता पूर्वक विचार किया गया है। उपर्युक्त इकाई वास्तु ज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मनोयोग से अध्ययन करने पर विद्यार्थीगण निश्चित रूप से लाभान्वित होगें।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली–

आग्नेयकोण	पूर्व और दक्षिण के मध्य भाग
नैर्ऋत्यकोण	दक्षिण–पश्चिम मध्यभाग
वायव्यकोण	पश्चिम–उत्तर मध्यभाग
ऐशान्यकोण	पूर्व–उत्तर मध्यभाग
भूतवीथि	ईशान में उँची, नैर्ऋत्य में झुकी
जलवीथि	पूर्व उँचा, पश्चिम नीचा
वैश्वानरी	वायव्य उँचा, आग्नेय नीचा
नागवीथि	आग्नेय उँचा, वायव्य नीचा
धनवीथि	नैर्ऋत्य में उँचा, ईशान में नीचा
गोवीथि	पश्चिम में उँची, पूर्व में नीची
यमवीथि	उत्तर में उँची, दक्षिण में नीची
गजवीथि	दक्षिणी उॅचा, उत्तरी नीचा
आकृष्णेन	नहीं है कृष्ण अर्थात् स्वच्छ धवल
मृतं	मृत
सविता	सूर्य देव
भुवनानि	भूः, भुवः, स्वः आदि लोक
पश्यन्न	दृष्टिपात करते हुए।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

5.3.1 के प्रश्नोत्तर–

1 गृह निर्माण द्वारा 2 गृह निर्माण ;3द्ध दिशा ज्ञान हेतु

4 कुलनाश 5 प्रासाद, गृह, अलिन्द और कुण्ड में

5.3.2 खण्ड के प्रश्नोत्तर–

प्र. 1 पूर्व दक्षिण के मध्य तथा दक्षिण पश्चिम मध्य और पश्चिम उत्तर एवं उत्तर पूर्व के मध्य भूभाग पर 45° अंश पर बनने वाले भूखण्ड को विदिशा कहते हैं। क्रमशः आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ऐशान्य है।

2 उत्तर–पश्चिम स्थित भूखण्ड को वायव्य कोण कहते हैं।

3 ईशान दिशा प्लवत्व वाली भूमि का पफल सुख–शान्ति, समृद्धि एवं भाग्य की अभिवृद्धि को देने वाली होती है।

4 ईशान में उँची और नैर्ऋत्य नीची भूमि में वास करने पर व्याधि, भय, मरण जैसी स्थिति अधिकतर बनी रहती है।

5 पश्चिम प्लवत्व युक्त भूमि पर निवास करने पर दाह, आगजनी एवं दुर्घटना का भय बना रहता है।

5.3.2 उपखण्ड प्रश्न संख्या 02 के प्रश्नोत्तर–

1 असत्य 2 असत्य 3 सत्य

4 असत्य 5 सत्य

5.3.3 उपखण्ड के प्रश्नोत्तर–

1 पूर्व में उफँची पश्चिम में नीची, आग्नेय में उँची वायव्य में नीची, दक्षिण में उँची, उत्तर में नीची, नैर्ऋत्य में उँची, ईशान में नीची, पश्चिम में उँची, पूर्व में नीची, वायव्य में उँची, आग्नेय में नीची, उत्तर में उँची और दक्षिण में नीची तथा ईशान में उची और नैर्ऋत्य में नीची भूमि को उँचाई–नीचाई के आधर पर वीथि कहते हैं।

2 वीथियाँ आठ प्रकार की होती हैं जैसे 1. नागवीथि, 2. भूतवीथि, 3. वैश्वानरी, 4. धनवीथि, 5. गोवीथि, 6. जलवीथि, 7. यमवीथि, 8. गजवीथि

3 वीथियों का विचार वास्तु शास्त्र में अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इसका आधार सूर्य और पृथ्वी है। अतः सूर्य प्रकाश में बाधक एवं सूर्य प्रकाश का होना तथा उँचाई की स्थिति वास्तुभवन को प्रभावित करती है। अतः वीथियों का विचार इस आधर पर परमावश्यक है।

4 यमविधि वास्तु भाग के उफपर वास करने पर प्रतिपफल दारिद्रता एवं कष्ट की प्राप्ति करना है।

5 गजवीथि भूमि दक्षिण भाग उँचा उठा हुआ और उत्तर भाग नीचा हो तो भूखण्ड को गजवीथि कहते हैं। ऐसे भूखण्ड पर वास करने पर धन, यश, की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. वास्तुसारः, डॉ. देवी प्रसाद त्रिपाठी कृत, 2006, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली।
2. वास्तु प्रबोधिनी, डॉ. अशोक थपलियाल कृत, 2011, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. वास्तुशास्त्राविमर्शः, हरिप्रसाद पाण्डेय कृत, 2012, न्यू भारत बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली।
4. बृहत्वास्तुमाला, पं रामनिहोर द्विवेदी, 2010, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. वास्तुरत्नावली, पं. अच्युतानन्द झा., 1993, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
7. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. वास्तुशास्त्रम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
9. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

10. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, ;1997द्ध चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

13. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

14. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

15. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

16. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी, अनुवादक जुगनु,2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

17. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

18. भारतीय वास्तु विद्या के वैज्ञानिक आधर, प्रो. बिहारी लाल शर्मा, प्रथम संस्करण 2004, मान्यता प्रकाशन मायापुरी नई दिल्ली, 110064

19. भारतीय वास्तु शास्त्रा, प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण 2004, श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रकाशन नई दिल्ली 110016

5.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. शिल्पशास्त्रम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

प्र.1 शास्त्रोक्त विधि से दिशा निर्धारण करें।
प्र.2 विदिशाओं का निर्धरण करके उनकी उपयोगिता सिद्ध करें।
प्र.3 वीथि किसे कहते है? विस्तृत रूप से स्पष्ट करें।
प्र.4 वीथियाँ कितने प्रकार की हैं? स्पष्ट करें।
प्र.5 वास्तु शास्त्र में वीथियों की क्या उपयोगिता है? वैज्ञानिकता के आधार पर सिद्ध करें।

इकाई – 6 प्रशस्त एवं निषिद्ध भूमि लक्षण

इकाई की रूपरेखा–

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मुख्य भाग खण्ड एक

- 6.6.1 भूमि विचार प्रशस्त निषिद्ध आशय
- 6.6.2 प्रशस्त भूमि विचार
- 6.6.3 निषिद्ध भूमि विचार
- 6.6.4 प्लवत्व विचार भू परीक्षण

6.4 सारांश

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

6.8 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पाषाण युग के आदि कालीन मानवों के मस्तिष्क रूपी भूमि पर सर्वप्रथम जो जिज्ञासा रूपी बीज अंकुरित हुए, उन बीजों से उत्पन्न होने वाले विभिन्न ज्ञान–विज्ञान शास्त्रों में 'वास्तुशास्त्र'' भी एक प्रमुख शास्त्र है। व्याकरणगत दृष्टि से वास्तु शब्द की व्युत्पत्ति 'वस् निवासे' धतु में 'तृण् प्रत्यय' के योग से हुई है। वास्तु शब्द का शाब्दिक अर्थ निवास योग्य भूमि है। ऐसा स्थान जहाँ मनुष्य निवास करते हैं। उसे वास्तु कहते हैं। वास्तु शास्त्र का सम्बन्ध भूमि से है। वास्तु में देश–काल परिस्थिति वशात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश रूपी पंचतत्त्वों तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों से सामांजस्य स्थापित करके स्थान विशेष में रहने वाले मानव मात्रा को शारीरिक–मानसिक रूप से स्वस्थ रखने का विचार किया जाता है। किसी भी प्रकार के निर्माण के लिए सर्वप्रथम भूमि का चयन किया जाता है।

इस इकाई में हम आपको प्रस्तावित करने जा रहे हैं कि प्रशस्त एवं निषिद्ध भूमि परीक्षण की आवश्यकता क्यों हैं?

आवासीय भवन निर्माण से पूर्व प्रशस्त एवं निषिद्ध भूमि का विचार किस प्रकार से किया जाए?

- ❖ भूमि चयन में किन प्रमुख बातों का ध्यान रखा जाए।
- ❖ इस सम्बन्ध में हमारे शास्त्रीय प्रमाण क्या कहते हैं?
- ❖ उपरोक्त तत्त्वों के विषय में आप इस इकाई के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

6.2 उद्देश्य

अधोलिखित बिन्दुओं से पूर्णतया परिचित होना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है–

- ❖ प्रशस्त भूमि का आशय।
- ❖ निषिद्ध भूमि का आशय।
- ❖ निर्माण हेतु वास्तु सम्मत भूमि का चयन।
- ❖ वास्तु अनुसार निषिद्ध भूमि के लक्षणों का विचार।
- ❖ भूमि के प्लवत्व ढाल के अनुसार शुभाशुभत्व विचार।
- ❖ भूखण्ड की आकृति के अनुसार शुभाशुभत्व विचार।
- ❖ भूखण्ड परीक्षण से शुभाशुभत्व विचार।
- ❖ ब्राह्मणादि वर्णों हेतु प्रशस्त भूमि विचार।

6.3 उपखण्ड एक– भूमि विचार प्रशस्त निषिद्ध आशय

यहाँ भूमि का तात्पर्य पृथ्वी की उफपरी सतह से है जहाँ मनुष्य वास करता है। यह पृथ्वी

की ठोस सतह है जिसके उपर पानी स्थायी रूप से नहीं रहता। यह भूमि निवास–व्यवसाय कृषि के लिए प्रयुक्त होती है।
भारतीय षड् आस्तिक दर्शनों में भी पंच महाभूतों में भूमि तत्त्व समाहित हैं। भूमि पंचगुणों से युक्त है।
यथा– अन्नमभट्ट कृत तर्कसंग्रह के अनुसार–
तत्रा गन्धवती पृथिवी। सा द्विविधा। नित्याऽनित्या च। नित्या परमाणुरूपा। अनित्या कार्यरूपा। पुनस्त्रिाविध– शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमस्मदादीनाम्। इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ती। विषयो मृत्पाषाणादि।
वेदान्त पंचदशी के अनुसार–

ब्रह्माण्डमध्ये तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
भुवनेषु वसन्त्येषु प्राणिदेहा यथायथम्।।

कर्मकाण्ड में भी पूजन के प्रारम्भ में भूमि पूजन भूमि शोधन किया जाता है। यथा–

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञमिमिक्षताम् पिपृतान्नो भरीमभिः।।

सनातनीय ज्ञान परम्परा में ''**यत्पिण्डं–तत्ब्रह्माण्डं**'' की अवधरणा के अनुसार पंचतत्त्वों की ब्रह्माण्डीय स्थिति के अनुपात में ही मानव शरीर में भी स्वीकृत की गई है।
गृह निर्माण के सम्बन्ध में प्रशस्त भूमि का आशय उस भूमि से है जो गृह निवासियों हेतु अनुकूल हो। गृह में रहने वाले व्यक्ति शारीरिक–मानसिक रूप से सुदृढ़ हो सके। भूमि के उपर गृह स्थिरता को प्राप्त कर सके। यथा ऋग्वेद की ऋचाओं में वर्णित है–

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

हे भूमाधिपति वास्तोष्पदे! तुम हम सबको समझो। तुम हमारे घर को आरोग्यता प्रदान करने वाले हो। जो धन हम तुम्हारे पास से माँगें, हमें प्राप्त हो। हमारे सभी द्विपद और चतुष्पदों के लिए तुम कल्याणकारी हो।

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्पफानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सव्ये स्याम पितेव पुत्राान् प्रति नो जुषस्व।।

हे भूमाधिपति वास्तोष्पते! तुम हमारे तारक हो और धन के विस्तारक हो। हे सोम! गावों तथा अश्वों से युक्त होकर हम जरा रहित हो। तेरी मित्राता में हम रहें। पिता जैसे पुत्रों का पालन करता है वैसे ही आप हमारा भी पालन करें।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते समीमदि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न।।

हे भू स्वामी वास्तोष्पते! सुखदायक और रमणीय प्रगतिशील, तुम्हारी सभा को हम प्राप्त हों। ऐसा स्थान हमें मिले। हम ऐसे सभा स्थान के सदस्य बनें। प्राप्त धन को तथा अप्राप्त धन की प्राप्ति में हमारे श्रेष्ठ धन को सुरक्षित रखो। ये सब फल प्राप्ति तब ही सम्भव है जब भूमि प्रशस्त हो, योग्य हो।
निषिद्ध भूमि से तात्पर्य उस भूमि से है जहाँ वास्तु की दृष्टि से निवास करना शुभ न हो।

सामान्य व्यवहार में शमशान तथा उसके निकटवर्ती, दलदलीय तथा उसर भूमि को भी निषिद्ध समझा जाता है। वास्तु अनुसार भूमि परीक्षण की कुछ विधियाँ दी गई जिनके आधार पर निषिद्ध भूमि का निर्धरण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरीय प्रश्न–

क पृथ्वी तत्त्व में कितने गुण हैं?

ख पृथ्वी का विशेष गुण कौन सा है?

ग भूमि के अधिष्ठाता देव कौन है?

घ उसर भूमि किस प्रकार की कही गई है? ;

6.3.2 उपखण्ड दो– प्रशस्त भूमि विचार

प्रशस्त भूमि का विचार वास्तु आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से किया है। भूमि की उर्वरकता के अनुसार वर्णन किया गया है कि–

उत्तम औषध्यिों से युक्त, विभिन्न वृक्षोत्पादन में समर्थ, विभिन्न लताओं से पल्लवित, समतल, ढालरहित थके हुए व्यक्तियों को बैठने से जहाँ शान्ति मिले। ऐसी भूमि भवन निर्माण हेतु उपयुक्त होती है।

यथा दैवज्ञवराहमिहिर के मतानुसार–

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्ध,
स्निग्ध समानसुखदा च महीं नराणाम्।
अव्यध्वनि श्रमविनोदनमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।

ब्राह्मणों के लिए श्वेतवर्ण वाली भूमि, क्षत्रियों के लिए रक्तवर्ण वाली भूमि, वैश्यों के लिए पीतवर्ण वाली भूमि, शूद्रों के लिए कृष्णवर्ण वाली भूमि तथा अन्य वर्णों वर्णसंकरादि हेतु मिश्रित वर्ण वाली भूमि प्रशस्त है।

यथा–

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम्।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां च मिश्रिता।।

भू–गन्धानुसार प्रशस्त भूमि–

मध्ुर, कषाय, अन्न, रुध्रिगन्ध, मध्ुर, कटु, तिक्त, कषाय स्वाद वाली श्वेत, रक्त, पीत, काली भूमि क्रमशः ब्राह्मणादि वर्णों के लिए शुभ है। शेष जाति के लिए मिश्रित वर्ण वाली भूमि प्रशस्त होती है।

यथा–

मध्ु पेशन्नपिशितगन्ध वर्णानुपूर्वकाः।
मध्ुरं कटुकं तिक्तं कषायं च रसाः क्रमात्।।

महर्षि गर्ग के अनुसार ब्राह्मणादि वर्ण हेतु प्रशस्त भूमि विचार–

ब्राह्मण– मधुर, दर्भयुक्त, घृतगन्धवाली, उत्तर की ओर ढलान युक्त एवं श्वेत वर्ण वाली भूमि ब्राह्मणों के लिए प्रशस्त मानी गयी है।

यथा–

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्ध च यामही।
उत्तर प्रवण ज्ञेया ब्राह्मणानां च सा शुभा।।

क्षत्रिय– रक्त गन्धवती, कषाय रस से युक्त, रक्त वर्ण वाली एवं पूर्व दिशा में ढलान युक्त भूमि क्षत्रियों के लिए प्रशस्त मानी गई है।

यथा–

रक्त गन्धकषाया च शखीरेण संयुता।
रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणां च सा मही।।

वैश्य– अन्नगन्ध्वती, अम्ल दूर्वा युक्त, दक्षिण की ओर ढलान वाली एवं पीले वर्ण वाली भूमि वैश्य वर्ण के लिए प्रशस्त मानी गई है।

यथा–

दक्षिणप्रवणा भूमिर्या{म्ला दूर्वाभिरन्विता।
अन्नगन्ध च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते।।

शूद्र– कृष्ण, कटुकरसयुक्ता, महागन्ध वाली, कांस से युक्त, पश्चिम की ओर ढाल वाली भूमि शूद्रों के लिए प्रशस्त है।

यथा–

पश्चिम प्रवणा कृष्णा विकुण्ठा कांशसंयुता।
महागन्ध मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा।।

स्पष्टार्थ चक्र

क्र.सं.	वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिाय	वैश्य	शूद्र
1.	वर्ण	श्वेतवर्णा	रक्तवर्णा	पीतवर्णा	कृष्णवर्णा
2.	प्लवत्व	उत्तरप्लव	पूर्वप्लव	दक्षिणप्लव	पश्चिमप्लव
3.	रस	मधुर	कषाय	अम्ल	कटु
4.	गन्ध	घृतगन्ध	रक्तगन्ध	अन्नगन्ध	महागन्ध
5.	संयुक्ति	दर्भयुक्ता	शरपतयुक्ता	दूर्वायुक्ता	काशयुक्ता

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरीय प्रश्न–

क– ब्राह्मणादि वर्णों के लिए कौन कौन से वर्ण वाली भूमि प्रशस्त मानी गई है?

ख– ब्राह्मण हेतु प्रशस्त भूमि के लक्षण बतलाइए?

ग– क्षत्रिाय हेतु प्रशस्त भूमि के लक्षण बताइए?
घ– वैश्य हेतु प्रशस्त भूमि के लक्षण बताइए?
घ– शूद्र हेतु प्रशस्त भूमि के लक्षण बताइए?

6.3.3 निषिद्ध भूमि विचार

वास्तु शास्त्र के अनुसार निषिद्ध भूमि पर भवन निर्माण अशुभ फलदायक माना जाता है। ऐसे स्थान पर निवास करने वाले मानव शारीरिक, मानसिक रूप से अस्वस्थता को प्राप्त करते हैं। ऐसी भूमि पर रहने वाले लोग अनावश्यक रूप से तनाव इत्यादि व्याधियों से पीड़ित रहते हैं।

फटी हुई दरार युक्त भूमि, जिसके अन्दर हड्डियाँ हों, दीमक से युक्त, श्मशान या कब्रिस्तान, उफबड़–खाबड़, भूमि का त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि वह कर्त्ता की आयु और धनहरण करने वाली होती है।

यथा–

स्फुटिता च सशल्या च वल्मिका रोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्येयं कर्तुरायुर्ध्नापहा।।

फटी हुई भूमि में रहने पर मरण, उसर भूमि में धन नाश, शल्ययुक्त भूमि में सदा क्लेश, उँची–नीची से शत्रुओं की वृद्धि होती है।

यथा–

स्पुफटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्राुवर्द्धिनी।।

चैत्याकार भूमि में निवास से भय, टीलों वाली भूमि में निवास से अपने कुल में विपत्ति, गड्ढे वाली भूमि में नाश, कूर्माकार भूमि में वास करने से ध्न का नाश होता है।

यथा–

चैत्ये भयं गृहकृतं वल्मीके श्वभ्रसघ्कुले विपदः।
गर्तायां तु विनाशः कूर्माकारे धनक्षयः।।

भूमि की आकृति के अनुसार निषिद्ध भूमि विचार–

चक्राकृति भूमि– चक्राकार भूमि निवास हेतु निषिद्ध कही गई है। ऐसी भूमि पर निवास करने से दरिद्रता आती है।

विषमभूमि– विषमाकार भूमि में वास का पफल शोक होने से निषिद्ध है।

त्रिाकोणाकार भूमि– त्रिकोणाकार भूमि गृह निर्माण हेतु निषिद्ध है जिसका फल राजभय माना गया है।

शकटाकार भूमि– गाडी के आकार की भूमि में वास ध्न का क्षय करने वाला होता है अतः यह निषिद्ध भूमि मानी जाती है।

दण्डाकार भूमि– दण्डाकार भूमि का पफल पशुक्षय होने के कारण निवास हेतु निषिद्ध माना गया है।

सूपाकार भूमि– सूपाकार की भूमि निवास हेतु निषिद्ध कही गई है। सूपाकार भूमि में वास करने से गोधन का क्षय माना जाता है।

कूर्माकार भूमि– कूर्माकार भूमि में वास करने वाले बन्धन पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। अतः कूर्माकार भूमि को निषिद्ध माना गया है।

धनुषाकार भूमि– धनुषाकार भूमि का फल महान भय होने से निवास हेतु निषिद्ध माना गया है।

यथा–

दण्डे पशुभयं प्राहुः श्वर्पे वासे गवां क्षयम्।
कूर्मे तु बन्धनं पीडाः धनुः क्षेत्रो भयं महत्।।

कुम्भाकार भूमि– कुम्भाकार भूमि को वास स्थान हेतु निषिद्ध माना गया है। कुम्भाकार भूमि में वास करने का फल कुष्ठरोग को प्राप्त होना माना गया है।

पवनाकार भूमि– पवनाकार भूमि में वास करने का फल नेत्ररोग प्राप्त होना अथवा धन का क्षय माना गया है। अतः पवनाकार भूमि निवास हेतु निषिद्ध है।

मुरजाकार भूमि– मुरजाकार भूमि निवास हेतु निषिऋ मानी गई है। ऐसी भूमि में वास का फल बान्धवों का क्षय माना गया है।

यथा–

कुम्भाकारे कुष्ठरोगी भवत्येव न संशयः।
पवने नश्यति नेत्रां धनं च बन्धुक्षयो मुरजे।।

भूखण्ड आकृति वशात् फल–निर्धारण चक्र

क्र.	भूखण्ड–आकृति	विशेषता	पफल
1.	वर्गाकार	चारों भुजाओं की लम्बाई व कोण समान हो	ध्नागम
2.	आयताकार	सामने की भुजाओं की लम्बाई समान, चारों कोण समकोण, लम्बाई–चौड़ाई का अनुपात	सर्वसिद्धि
3.	वृत्ताकार	वृत्ताकार भूमि में वृत्ताकार भवन शुभ पफल	बुद्धिवृद्धि
4.	भद्रासन	वर्गाकार भूमि के बीच में समतल भाग मतान्तर से अष्टदलकमल	शुभकल्याण
5.	चक्राकार	अनेक कोणों व भुजाओं वाला चक्र के अनुसार	दरिद्रता
6.	विषमाकार	असमान भुजाएँ विषम भूमि	शोक
7.	त्रिकोणाकार	त्रिभुज की आकृति	राजकीयभय
8.	शकटाकार	बैलगाडी या रथ की आकृति	धनक्षय
9.	दण्डाकार	दण्ड की आकृति	पशुक्षय
10	सूपाकार	मार्ग की ओर सूप पीछे की ओर अर्ध्चन्द्रकार	गोधनक्षय

11	कूर्माकार	कछुए के पीठ जैसी आकृति	बन्धनपीडा
12	धनुषाकार	धनुष जैसी अर्धचन्द्राकार आकृति	भय
13	कुम्भकार	घड़े या कलश जैसी आकृति	कुष्ठरोग
14	पवनाकार	हाथ से झलने वाले पंख जैसी आकृति	नेत्र कष्ट धन नाश
15	मुरजाकार	ढोलक या मृदंग जैसी आकृति	बान्धवक्षय

अभ्यास प्रश्न

3. उचित मिलान करें–

क चक्राकार भूमि — क पशुक्षय
ख त्रिाकोणाकार भूमि — ख धनक्षय
ग दण्डाकार भूमि — ग दरिद्रता
घ शकटकार भूमि — घ बान्धवक्षय
घ मुरजाकार भूमि — घ राजभय

6.3.4 प्लवत्व विचार एवं भू परीक्षण

प्लव का अर्थ है ढलान अर्थात् भूमि की ढलान के अनुसार शुभाशुभत्व का विचार करना। आठों दिशाओं में भूमि के प्लवत्व का विचार बृहत्वास्तु माला में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है।

पूर्व–पूर्व दिशा दिशा ज्ञान का सरलतम साधन है। यन्त्राों के अभाव में भी पूर्व दिशा के ज्ञान द्वारा सभी दिशाओं का निर्धरण किया जाता था। प्रातः सूर्य पूर्व दिशा से उदित होता है तो प्रातः सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख करके जो दिशा सम्मुख दिखाई देती है। वह पूर्व दिशा होती हैं

प्लवत्व पफल– पूर्व दिशा में भूमि का प्लवत्व माना गया है। पूर्व दिशा में भू प्लवत्व का पफल श्री अर्थात् धन की वृद्धि तथा मतान्तर से वृद्धि कारक माना जाता है।

2. दक्षिण– पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होने पर व्यक्ति के दाहिने हाथ की ओर की दिशा दक्षिण दिशा कहलाती है।

प्लवत्व– जो भूमि दक्षिण दिशा की ओर ढालदार हो वह निवास हेतु निषिद्ध मानी गई है। दक्षिण दिशा में प्लवत्व का पफल मरण तथा मतान्तर से गृहक्षय माना जाता है।

3. आग्नेय– पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशा के मध्यवर्ती कोण को आग्नेय कोण या आग्नेय दिशा कही जाती है।

प्लवत्व फल– आग्नेय कोण में प्लवत्व युक्त भूमि निवास हेतु निषिद्ध मानी गई है। आग्नेय कोण में प्लवत्व का पफल दाह तथा मतान्तर से मृत्यु शोक माना जाता है।

4. पश्चिम– पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होने से ठीक पीठ के पीछे की दिशा पश्चिम दिशा होती है।

प्लवत्व विचार– पश्चिम दिशा की ओर प्लवत्व युक्त भूमि निवास हेतु निषिद्ध मानी गई है। पश्चिम दिशा में भूप्लवत्व का पफल पुत्राक्षय तथा प्रकारान्तर से कीर्ति नाश माना गया है।

5. नैर्ऋत्य– पश्चिम दिशा तथा दक्षिण दिशा में मध्यवर्ती कोण को नैर्ऋत्य दिशा अथवा नैर्ऋत्य कोण कहा जाता है।

प्लवत्व पफल– नैर्ऋत्य कोण में प्लवत्व युक्त भूमि निवास हेतु त्याज्य मानी जाती है। नैर्ऋत्य प्लवत्व युक्त भूमि का फल धन हानि का कहा गया है।

6. उत्तरदिशा– सूर्योदय में पूर्व दिशा में खड़े होकर व्यक्ति के बांयें हाथ की ओर की दिशा उत्तर दिशा होती है। दिशा मापक यन्त्रों के अभाव में रात्रि काल में दिशा निर्धारण उत्तर दिशा में स्थित ध्रुवतारे की स्थिति के अनुसार किया जाता था।

प्लवत्व पफल– उत्तर दिशा में भूमि का प्लवत्व शुभ माना जाता है। उत्तर दिशा में प्लवत्व का पफल धन लाभ माना गया है।

7. वायव्य– उत्तर दिशा तथा पश्चिम दिशा के मध्यवर्ती कोण को वायव्य दिशा या वायव्य कोण कहा जाता है।

प्लवत्व पफल– वायव्य कोण में प्लवत्व का मिश्रित फल कहा जाता है। बृहत् वास्तु मालाकार के अनुसार वायव्य कोण में प्लवत्व का फल परदेश में प्रवास तथा मतान्तर

8. ईशान–उत्तर दिशा तथा पूर्व दिशा के मध्यवर्ती कोण को ईशान कोण या ईशान दिशा कहा जाता है।

प्लवत्व फल– ईशान कोण में प्लवत्व युक्त भूमि निवास हेतु प्रशस्त मानी गई है। ईशान कोण में प्लवत्व का पफल विद्यालाभ तथा मतान्तर से श्रीसुख कहा गया है।

यथा वृहद्वास्तुमाला वर्णित अष्टदिक्प्लवत्व विचार–

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्,
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च।
विद्ध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो न हि,
मध्यप्लवा न हि नेष्टा न शुभा प्लवत्परा।।

तथा मतान्तर विचार–

शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्रीसुखदायिनी।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तृप्तरप्लवा।।
मृत्यु शोक प्रदा नित्यामाग्नेयी दक्षिणप्लव।
गृहक्षयंकरी सा च भूमिर्यानिर्तप्लवा।।
धन हानिकरी चैव कीर्तिदा वरुणप्लवा।
वायु प्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी।।

विशेष– भूमि के ब्रह्म स्थान अर्थात् बीच में गड्ढा हो तो भूमि का फल कष्टकारक माना जाता है।

स्पष्टार्थ चक्र

क्र.	प्लव दिशा	बृ. वास्तु माला फल	फल
1.	पूर्व	वृद्धि	श्रीवृद्धि
2.	आग्नेय	मृत्यु–शोक	दाह
3.	दक्षिण	गृहक्षय	मरण
4.	नैर्ऋत्य	धनहानि	धनहानि
5.	पश्चिम	कीर्ति नाश	पुत्रक्षय
6.	वायव्य	उद्वेग	प्रवास
7.	उत्तर	धनदा	धनलाभ
8.	ईशान	श्री–सुख	विद्यालाभ
9.	मध्य	कष्ट	कष्ट

उपरोक्त क्रम में भूमि के प्लवत्व के अनुसार शुभाशुभत्व का निर्धरण भारतीय वास्तु शास्त्रों में वर्णित हैं। जो व्यावहारिक रूप से भी दृष्टि गोचर होता है।

भूमि परीक्षण

गृह निर्माण से पूर्व भूमि का परीक्षण करना आवश्यक बताया गया है। जिससे भूमि के दोष गुणों का ज्ञान किया जा सके। पौराणिक वांगमय में भी वास्तु विद्या सम्बन्धी तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। मत्स्य पुराण में तथा अग्नि पुराण के अनुसार भूमि परीक्षण के चार प्रकार बताए गए हैं।

क्षेत्रामादौ परीक्ष्येद् गन्ध्वर्णं रस–प्लवैः।।

1. गन्ध परीक्षण– भूमि की गन्ध के अनुसार।
2. वर्ण परीक्षण– भूमि के रंग के अनुसार।
3. रस परीक्षण– भूमि के रस के अनुसार।
4. प्लव परीक्षण– भूमि की ढाल के अनुसार।

उपरोक्त का वर्णन इकाई में वर्णित किया जा चुका है।

मत्स्य पुराण तथा अन्य ज्योतिष वास्तु सम्बन्धी ग्रन्थों में भूमि परीक्षण के विविध उपायों का वर्णन प्राप्त होता है।

विधन वशेन भूमि परीक्षण दैवज्ञ वराहमिहिर के अनुसार–

गृहमध्ये हस्तपरिमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम।
यद्यूनमनिष्टं तत् समे समं ध्न्यमध्किं यत्।।

गृह निर्माण हेतु चयनित भूमि के मध्यभाग में गृह स्वामी के हाथ की माप से 1×1×1 हाथ के गड्ढे को निकली हुई मिट्टी से भर लें। यदि मिट्टी कम पड़ जाए तो अनिष्टकारक,

पूर्ण हो जाए तो मध्यमपफलदायक न शुभ न अशुभ तथा मिट्टी शेष बच जाए तो बहुत शुभ होती है।
मतान्तर से भूमि परीक्षण–

श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम्।
तद्वयं यच्च भवेत् पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः।।

पूर्वोक्तानुसार भूमि के मध्यभाग में 1×1×1 के गड्ढे में पूर्ण रूप से जल भर दें। जल भरते ही उस स्थान से 100 पद दूर जाकर वापस लौट कर पुनः गड्ढे के सम्मुख आएँ। यदि गड्ढा पूरा भरा मिले तो बहुत शुभ होता है अथवा कापफी पानी मिले तो भी शुभ होता है। यदि अल्प पानी बचे अथवा पूरा पानी सूख जाए तो अशुभ होता है।
इसी प्रकार खोदी गई मिट्टी से गड्ढा भरने के बाद 64 पल मिट्टी बचने से आनुपातिक रूप से शुभता रहती है। मिट्टी पूरी हो तो सबसे कम शुभता तथा खोदी गई मिट्टी के 75 प्रतिशत से ही गड्ढा भर जाए तो पूर्ण शुभता रहती है। मध्यम में आनुपातिक समझना चाहिए।
नारद मतानुसार भू परीक्षण–

खातं निशादाषुत्खन्य हस्तं पूर्य जलेन तत्।
प्रातदृष्टजले वृद्धिः समं पघ्के व्रणे क्षण।।

निर्माण हेतु चयनित भूमि पर सांयकाल में एक हाथ घन हस्त खाते में जल पूर्ण कर दें। प्रातः काल परीक्षण करने पर यदि जल शेष है तो भूमि उत्तम, कीचड़ में मध्यम तथा शुष्क भग्न होने प्र हानि होती है।
वास्तु प्रदीप मतानुसार–

स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य,
स्याद्दक्षिणावर्त जलेन सौख्यम्।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो
मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः।।

पूर्वोक्तानुसार एक हाथ घन हस्त खाते में जल पूर्णतया भरने पर यदि खाते का जल स्थिर है तो घर में स्थिरता बनी रहेगी। दक्षिण वृत्त भ्रमण करने से सुख तथा वाम वृत्त भ्रमण से शीघ्र शोषण से मृत्यु भय कहा जाता है।
वराहमिहिर के अनुसार अन्य भू परीक्षण विध्–

आम्रे वा मृत्पात्रो श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यध्किम्।
ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य।।

पूर्व वर्णित एक हाथ घनहस्त खाते में मिट्टी के चार कच्चे बर्तनों में दीपक जलाकर चारों दिशाओं में रख दें। जिस दिशा की बत्ती अधिक स्वच्छ लौ वाली रहे तथा देर तक जले उसी दिशा के वर्ण के लिए वह शुभ होती है।
उत्तर दिशा में दीपक देर तक जले तो ब्राह्मण के लिए, पूर्व दिशा से क्षत्रिाय के लिए,

दक्षिण दिशा वाले से वैश्य के लिए और पश्चिम दिशा वाले से शूद्र के लिए भूमि प्रशस्त समझनी चाहिए।

मतान्तर में भू–परीक्षण–

श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेनुवर्णसमम्।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन् मनो रमते।।

पूर्वोक्तानुसार सांयकाल भूमि में एक घनहस्त नाप का गड्ढा खोदकर उसमें क्रमशः सपेफद, लाल, पीला तथा काला पुष्प उत्तरादि दिशाओं में रखें। अथवा एक ही रंग का पुष्प विशेष चिह्न लगाकर चारों दिशाओं में रख दें। अगले दिन सुबह जिस दिशा का पुष्प सबसे कम मुरझाया हो उसी वर्ण के लिए भूमि प्रशस्त होती है।

अभ्यास प्रश्न

सत्य / असत्य बताईए–

क–उत्तर दिशा में दीपक क्षत्रिय हेतु प्रशस्तता बताता है। सत्य/असत्य

ख– दक्षिण दिशा में दीपक की शुभता वैश्य माना जाता है। सत्य/असत्य

ग– खात विधन में जल का दक्षिणावृत्त भ्रमण सुख प्रदान करता है। सत्य/असत्य

घ– पुराणों में भू परीक्षण के प्रकार बतलाए गए हैं। सत्य/असत्य

घ– खात विधन में जिस दिशा का फूल सबसे कम मुरझाया हो वह उस वर्ण के लिए शुभ होती है। सत्य/असत्य

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

क भूमि का मध्य भाग...................कहलाता है।

ख दक्षिण पूर्व दिशा ....कोण कहलाती हैं

ग ब्रह्म स्थान में प्लवत्व ....प्रदायक होता है।

घ प्लव का शाब्दिक अर्थ................होता है।

घ आग्नेय प्लवत्व युक्त भूमि निवास हेतु ....है।

6.4 सारांश

इस इकाई में आपने गृह निर्माण हेतु भूमि चयन से सम्बन्धित बातों का अध्ययन किया। गृह निर्माण से पूर्व भूमि चयन हेतु कि भूमि परीक्षण की आवश्यकता, भूमि चयन की शास्त्रोक्त विधियाँ, वास्तु सम्मत भूमि का वर्णन किया गया है।

प्रशस्त भूमि का विचार, भूमि का वर्ण–गन्ध–रस के अनुसार ब्राह्मणदि वर्ण हेतु शुभाशुभता का वर्णन वास्तु शास्त्रा के ग्रन्थों के आधर पर इकाई में किया गया है। इकाई में निर्माण हेतु निषिद्ध भूमि के लक्षण दोष का विस्तार से वर्णन शास्त्रीय प्रमाणों के साथ किया गया

है। भूमि चयन के परीक्षण द्वारा विचार करने के लिए विभिन्न शास्त्रीय विधियों का सप्रमाण वर्णन आपको इस इकाई के माध्यम से प्राप्त होता है।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	शाब्दिक अर्थ
प्रशस्त	उत्तम प्रशंसा योग्य
निषिद्ध	निषेध किया गया
शोधन	शुद्ध करना
तारक	तारने वाला
उफसर भूमि	अनुपजाउ भूमि
कषाय	कसैला
तिक्त	तीखा
प्लव	ढाल
ईशान	उत्तर पूर्व दिशा
वायव्य	उत्तर पश्चिम दिशा
आग्नेय	दक्षिण पूर्व दिशा
नैर्ऋत्य	दक्षिण पश्चिम दिशा
घनहस्त	1×1×1 वर्ग हाथ प्रमाण का घनाकार
वामवृत्त	बांई ओर से जाने वाला
दक्षिणवृत्त	दाहिनी ओर से जाने वाला

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अति लघूत्तरीय प्रश्न–

क– पाँच

ख– गन्ध

ग– वास्तोष्पति

घ– निषिद्ध

2. लघूत्तरीय प्रश्न–

क– ब्राह्मणादि वर्णों के लिए क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण वर्ण की भूमि प्रशस्त है।

ख– ब्राह्मण हेतु श्वेतवर्णा, उत्तरप्लव, मधुररस, घृतगन्ध, दर्भयुक्त भूमि प्रशस्त है।

ग– क्षत्रिाय हेतु रक्तवर्णा, पूर्वप्लव, कषायरस, रक्तगन्ध, शरपतयुता भूमि प्रशस्त है।

घ– वैश्य हेतु पीतवर्णा, दक्षिणप्लव, अम्लरस, अन्नगन्ध, दूर्वायुक्ता भूमि प्रशस्त है।

घ– शूद्र हेतु कृष्णवर्णा, पश्चिमप्लव, कटुरस, महागन्ध, कांसयुक्त भूमि प्रशस्त है।

3. मिलान करें–

क	ग
ख	घ
ग	क
घ	ख
घ	घ

4. सत्य/असत्य बताइए–

क– असत्य
ख– सत्य
ग– सत्य
घ– सत्य
घ– सत्य

4. रिक्त स्थान भरें–

क– ब्रह्मस्थान
ख– आग्नेय
ग– कष्ट
घ– ढलान
घ– निषिद्ध

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. वास्तुसारः, डॉ. देवी प्रसाद त्रिपाठी कृत, 2006, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली।
2. वास्तु प्रबोध्नी, डॉ. अशोक थपलियाल कृत, 2011, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, दिल्ली।
3. वास्तुशास्त्राविमर्शः, हरिप्रसाद पाण्डेय कृत, 2012, न्यू भारत बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली।
4. बृहत्वास्तुमाला, पं रामनिहोर द्विवेदी, 2010, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. वास्तुरत्नावली, पं. अच्युतानन्द झा., 1993, चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, ;2017द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. समराघैंणसूत्राधर, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्राी, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

6.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. वास्तुशास्त्राम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, ;2009द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

5. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी, 2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

6. वशिष्ठसंहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7. वास्तु प्रदीप, वासुदेव दैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, ;2007द्ध चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्राी, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. शिल्पशास्त्राम्, विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक जुगनु, 2017 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमसूत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशस्त भूमि के लक्षणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. निषिद्ध भूमि के लक्षणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. अष्टविध प्लवत्व भूमि की विवेचना कीजिए।
4. ब्राह्मणादि वर्णों हेतु प्रशस्त निषिद्ध भूमि का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. भू–परीक्षण की विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई – 7 भूशयन विचार

इकाई की रूपरेखा -

7.1 प्रस्तावना -

प्राचीन ऋषियों के अनुभवों एवं प्रयोगों पर आधरित वास्तु एक ऐसी विद्या है, जिसका सीध सम्बन्ध मनुष्य के जीवन शैली के साथ जुड़ा है। यह मनुष्य को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होता है। वास्तु कर्म में प्रवृत्त होने से पूर्व गृहनिर्माणार्थ भुखण्ड की आवश्यक्ता होती है। ग्राम अथवा नगर में कौन सी दिशा में निर्माणकर्ता के लिए गृहनिर्माण शुभ होगा है? यह यथाशास्त्रा विचार कर भूखण्ड का चयन किया जाता है। भूखण्ड के चयन के पश्चात रस, गन्ध्, वर्ण आकारादि के आधर पर गृहकर्ता के लिए भमि के शुभाशुभत्व का विचार किया जाता है। भूमि के शुभ होने पर भूमि की मिटटी का परीक्षण किया जाता है अर्थात भूमि कठोर है अथवा कोमल। कठोर भूमि पर निर्मित घर की आयु अध्कि होती है तथा अतिविृष्टि भूकम्पादि प्रकृतिक आपदाओं का घर पर को प्रभाव नही होता। गृहकर्ता के लिए भूमि के शुभाशुभत्व ज्ञान हेतु वास्तुशास्त्रा में खात विचार किया जाता है। उक्त सभी प्रकार के परीक्षणों के लिए भूमि को खोदने अथवा गृहनिर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए भूमि को खादने के लिए भूमि का शयन विचार किया जाता है। जागृत अथवा जीवित अवस्था में ही भूमि को खोदना शुभ होता है। अतः पृथ्वी कब शयन करती है तथा कैसी भूमि जीवित होती है, इसका विचार वास्तुशास्त्रा में किया गया है।

7.2 उद्देश्य -

1. इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है, पंचतत्वों में भूमितत्त्व का क्या महत्व है। वेदों तथा वैदिक वांगमय में वास्तु के सन्दर्भ में भूमि का स्वरूप तथा महत्त्व है, इस इकाई में वर्णन किया गया है।

2. वास्तुशास्त्र में भूमि के अनेक प्रकार बताए गए है। रूप, रस, गन्ध आदि के आधार पर भूमि का चयन गृहनिर्माणार्थ किया जाता है। ब्राह्मणादि वर्णो में किस वर्ण कि लिए कौन सी भूमि शुभ है, इस इकाई में बताया गया है।

3. शुभ भूमि का चयन करने के पश्चात भूमि का परीक्षण आवश्यक होता है। वास्तुशास्त्र में भूमि परीक्षण की अनेक विधियाँ बताई गई है जिसमें खात विधि सर्वप्रमुख है। भूमि परीक्षण तथा भूमि चयन की विधियों का वर्णन इस इस ईकाई के माध्यम से करवाने का प्रयत्न किया गया है।

4. भूमि परीक्षण के लिए खात गढ्ढा खोदने के समय तथा गृहारम्भ करते समय भूमि खोदते समय भूमि का शयन विचार किया जाता है। शयनावस्था में भूमि खोदना वास्तुशास्त्र के अनुसार निषिद्ध है। भूमि कब शयन करती है यह ज्ञान करवाना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है।

7.3 वास्तु के सन्दर्भ में भूमि-

वास्तु का पंचतत्वों पर आधरित होने के कारण वास्तु नियमों में पृथ्वी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसे पंचतत्वों का प्रमुख घटक माना जाता है। वास्तुशास्त्र में पृथ्वी को महत्वपूर्ण उर्जा का स्रोत मानते हुए व्यक्ति के विकास के लिए अनुकूल रहना आवश्यक माना गया है। इसका उल्लेख हमारे वेद ग्रंथों में मिलता है। ऋग्वेद में एक उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि पृथ्वी को मनुष्य के निवास के लिए देने की इच्छा करके इन विष्णु ने पृथ्वी को पदक्रमण किया था। सुजन्मा विष्णु ने विस्तृत निवास स्थान बनाया था। वही अथर्ववेद के एक उद्धरण में पृथ्वी को सभी का निवास स्थान बताया गया है। इसी प्रकार एक दूसरे उद्धरण में भूमि की प्रकृति के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि वरूण के भीतर तीन उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार की भूमियाँ हैं। इस विवरण को वास्तु नियमों में प्रयोग किया जाता है।

ऋग्वेद के एक उद्धरण में आया है कि विष्णु देव, जो पृथ्वी में हो चुके हैं और जो जन्म लेगें, उनमें से कोई भी तुम्हारी महिमा का अंत नही पा सकता। दर्शनीय और विराट द्युलोक को तुमने उपर धरण कर है। तुमने पाणिनी की पूर्व दिशा को धारण कर रहा है। यह विवरण भूभाग में पूर्व दिशा की महत्ता को प्रदर्शित कर रहा है। इसी प्रकार एक अन्य उद्धरण में कहा गया है कि विद्वान और मेधवी वरूण ने योग्य अन्तेवासी छात्र को उत्तम स्थान में उपदेश दिया और सारी गोपनीय बातों को बताया। यह उद्धरण स्थान की श्रेष्ठता को बताता है। जिसे ज्ञानार्जन के लिए आवश्यक माना जाता है। ऋग्वेद में आया है कि वरूण इन सब नित्य भूमियों में निवास करते हुए तुम्हारा स्रोत करते हैं। हमारा बंध्न छुड़ाएं। हम अण्डनीय पृथ्वी के पास से वरूण की रक्षा का भोग करें। यह उद्धरण भी श्रेष्ठ भूमि में निवास को उपर्युक्त बताता है। यजुर्वेद में उल्लेख है कि सम्पूर्ण पृथ्वी में श्रेष्ठ स्वरूप देवों के यजन स्थान में है वाक् देवी आपको घृताहुति प्रदान करते हैं। आप पृथ्वी की अधिष्ठाता देवी हो। हमारी इस घृताहुति से आप संतुष्ट हो। आप ऐश्वर्यवान हैं, हमें अपना बंधु बनाकर धन-धान्य से पुष्ट करें। हमें इससे वंचित न करे। यजुर्वेद के दूसरे श्लोक में उल्लेख है कि हे भूमें! यज्ञानुष्ठानों के परिणामस्वरूप होने वाली प्राण-पर्जन्य-वर्षा के साथ आप हमारे लिए अनुकूल बने। यथा -

'अम्याक्रतस्व पृथिवी यज्ञेन पपसा सह'

ऐसे ही भूमि को देवी के रूप में स्थान देकर उनसे दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है।

यजुर्वेद में पृथ्वी के सम्बंध् में आया है कि हे बलशाली! आपको सत्य निमित्त, सज्जनता के निमित्त एवं श्रेष्ठ भूमि के निमित्त प्रयुत्त किया जाता है। ऐसे ही एक वर्णन है कि जिस यज्ञस्थल पर सभी

देवगण आनंदित होते हैं, उस उत्कृष्ट भूमि पर हम यजमानगण एकत्रित हुए हैं। यजुर्वेद के एक अन्य श्लोक में पृथ्वी को प्रदुषित न करने का संकेत मिलता है। जिसमें कहा गया है कि पृथ्वी पर प्राणशत्तिफ प्रदायनी उर्जा वायु के कारण पृथ्वी कल्याणप्रद है। ऐसे ही एक उल्लेख मिलता है जिसमें दृढ़ सघन भूमि को सुख और आनन्द देने वाला बताया गया है। इस कथन को पूर्णरूप से वास्तुशास्त्रा स्वीकार करता है तथा सघन भूमि को गृह बनाने के लिए महत्वपूर्ण बताता है। यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है हे पृथ्वी देवी! आप हमारे लिए सुखप्रद, संकटों एवं कष्टों से रहित और निवास योग्य हो। आप सम्यक् रूप से विस्तीर्ण होकर हमें सुख एवं शरण प्रदान करें। आप हमारे पापों को भस्मीभूत करके दूर करें। यजुर्वेद के दूसरे उद्धरण में कहा गया है कि देवों का यजन करने वाली हे पृथ्वी! आपके देवयाग योग्य पृष्ठभाग पर आहुत अन्न के भक्षक गार्हपत्याग्नि को मैं स्थापित करता हूँ ताकि योग्य अन्न की सिद्धि हो सके या अन्न का समुचित भक्षण हो सके। जिसके पृष्ठ भाग पर अग्नि का आधन करके मैं द्युलोक के समान हो सकूँ। अर्थात पुत्र-पशु आदि से बहुरूप बन जाऊँ तथा पृथ्वी के समान ही सारे प्राणियों का आश्रयरूप होकर श्रेष्ठ बन जाऊँ। मैं अपने संतानों के साथ विकसित हो जाऊँ और जीवधरियों की शरण बन जाऊँ। इस उद्धरण में श्रेष्ठता को प्राप्त करने का उल्लेख है, साथ ही पृथ्वी के समान ही बनने का बोध किया गया है। यजुर्वेद के ही उद्धरण में पृथ्वी को पोषण प्रदायिनी मानते हुए 'महान गौ' कहकर संबोधित किया गया है।

यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि पृथ्वी आप हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करे। इसी प्रकार के विवरण अथर्ववेद से भी प्राप्त होता है। अथर्ववेद में एक उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि हे पृथ्वी देवी! आप इसके निमित्त सुखकारिण, दुःख कष्टों से रहित, प्रवेश करने योग्य और विस्तारयुत्तफ होकर शांति प्रदान करने वाली हो वहीं दूसरे श्लोक में कहा गया है कि यह विस्तृत देवी स्वरूपा पृथ्वी शुभ-संकल्पों से युत्तफ होकर, चर्मरूपी त्वचारूपी ढाल अपने संरक्षण के लिए धरण करें, जिससे हम पुण्यलोक को प्राप्त करें। इसका भावार्थ है कि यज्ञीय प्रक्रिया से पृथ्वी का एक रक्षा कवच पुष्ट होता है इससे हमें पुण्य, हितकारी, वातावरण युत्त लोक क्षेत्र प्राप्त होता है। इसी तरह की भूमि की अपेक्षा वास्तुशास्त्र में किया जाता है।

अथर्ववेद के एक अन्य उद्धरण में पृथ्वी के महत्व को रेखांकित करते हुए तथा उसके अक्षुण्णता को ध्यान में रखकर पृथ्वी का संतुलन बिगाड़ने वाले को नष्ट करने की बात कही गई है। ऐसे ही दूसरे श्लोक में कहा गया है कि हे ज्ञान सम्पन्न ओदन! आप इस भूमि को प्राप्त हो, देवताओं सहित इसके साथ मिल जाएँ। आपको शाम न लगे और बाधक अभिचार प्रभावित न करे। आप अपने निवास

क्षेत्रा में निरोग रहकर प्रकाशित हो, अर्थात अपने समग्रता को प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार पृथ्वी के अधिष्ठाता देवता के लिए हवि समर्पित करने का उल्लेख मिलता है। यह उद्धरण पृथ्वी की आध्यात्मिक शत्ति प्राप्त करने की ओर भी संकेत करता है। पृथ्वी पर हर्षपूर्वक निवास करने के लिए भी हवि समर्पित है।

अथर्ववेद में एक उल्लेख आया है कि ऐश्वर्यशाली भूमि! आप हमारे लिए श्रेष्ठ मन वाली तथा श्रेष्ठ पफल प्रदान करने वाली होकर हमारे अनुकूल रहे। एक दूसरे उद्धरण में कहा गया है कि हे पृथ्वी! तुमसे उत्पन्न हुए मनुष्य तुझ पर विचरण करते है। तू दो पैर वाले तथा चार पैर वाले को आश्रय देती है। इन मनुष्यों के लिए उदय होता हुआ सूर्य अपनी अमृतमय प्रकाशपूर्ण किरणों को पफैलाता है। इस उद्धरण में जहाँ पृथ्वी को महत्वपूर्ण बताया गया है। वहीं इसके पूर्वीभाग जहाँ उदयाचल सूर्य किरणों का प्रथमतः दर्शन होता है, को महत्वपूर्ण होने का संकेत किया गया है, इन किरणों की महत्ता को देकर ही हमारे वास्तु में पूर्व को प्रमुख स्थान दिया जाता है। अथर्व वेद के दूसरे श्लोक में पृथ्वी से असीम शांति देने एवं कल्याणप्रद और मंगलप्रद होने के लिए प्रार्थना की जाती है।

भूमे मातर्नि धीमहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धीमहि भूस्याम् ।।

अर्थात, हे पृथ्वी माता ! मुझको कल्याणकारी वृद्धि के साथ बड़ी प्रतिष्ठा वाला बनाए रख। हे गतिशीले! प्रकाशयुत्त तुम मुझे सम्पत्ति और ऐश्वर्य के साथ धरण करो। इस उपर्युत्त उल्लेखों से वास्तु के लिए भूमि किस प्रकार से महत्वपूर्ण को सकती है, इसकी प्रारंभिक विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है, जिसका विस्तृत स्वरूप परवर्ती वास्तु ग्रथों में वर्णित है।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न -

1. वास्तु के आधार कितने तत्त्व हैं।
2. अथर्ववेद के अनुसार वरूण के भीतर कितने प्रकार की भूमियां है।
3. वास्तुशास्त्र में किस दिशा को प्रमुख स्थान दिया गया है।
4. पृथ्वी को प्रदूषित न करने का संकेत किस वेद में है।
5. पृथ्वी को ''महान गो'' कहकर क्यों संबोधित किया गया है।

7.3.2 शुभाशुभ भूमि के लक्षण -

भवन निर्माण के लिए भूमि का चयन करते समय भूमि की गुणवत्ता का विचार कर लेना चाहिए। मिट्टी के गुण-दोषों का विचार उसके रंग, गंध् व स्वाद के अनुसार किया जाता है। यथा -

सुगन्ध बाह्मणी भूमि रक्तगन्ध तु क्षत्रिया।
मधुगन्ध भवेद्वैश्या मद्यगन्ध च शूद्रिका।।
अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता।
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया मता।।

वास्तुशास्त्रा में भूमि को चार श्रेणियों में बाँटा गया है -

ब्राह्मणी - यह सपफेद रंग की, कुशायुत्तफ मधुर स्वाद व सुगन्धित मिट्टी वाली होती है। यह भूमि सबसे अच्छी व शुभ मानी जाती है। यह सभी प्रकार के सुखों को देने वाली है। यह भूमि ब्राह्मण, बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक लोगों के निवास के लिए श्रेष्ठ मानी गयी है।

क्षत्रीया - इस मिट्टी का रंग लाल व रत्तफ जैसी गंध् होती है। इसका स्वाद कसैला और इस पर मूंग आदि उगते हैं। यह क्षत्रिय एवं शासन वर्ग के आवास के लिए उत्तम मानी गई है। यह ज्ञान, बल, सम्मान व राज्य देने वाली बतलायी गई है। इस भूमि पर शासक मंत्री, राज्याध्किारी, राजनेता, सेना, पुलिस एवं प्रशासन के उच्चाध्किारियों के आवास व कार्यालय बनाना शुभ माना जाता है।

वैश्या - इस भूमि का रंग पीला व गंध् अन्न जैसी होती है। इसका स्वाद खट्टा व इस पर कुश उगती है। यह मिट्टी उपजाऊ होती है। यह भूमि खेती-बाड़ी के लिए उत्तम है। यह भूमि व्यापारियों, व्यावसायियों, दुकान, शोरूम, व्यवसायिक स्थानों, बैंकों, उद्योगों एवं व्यवसायिक केन्द्रों के लिए अच्छी मानी गई है।

शूद्रा - इस मिट्टी का रंग काला व इसमें मदिरा जैसी दुर्गन्ध होती है। इसका स्वाद कड़वा व इस पर सब तरह की घास उगती है। यह भूमि अच्छी नहीं मानी जाती है। प्रायः हमारे देश के सभी महानगरों की झोपड़ी-पट्टियाँ ऐसी ही भूमि पर बनी है।

मयमतम् के अनुसार वर्णानुसार भूमि के लक्षण -

ब्राह्मणों के लिए प्रशस्त भूमि के लक्षण - यह भूमि चैकोर, रंग श्वेत हो, गूलर के वृक्ष से युत्तफ हो, भूमि की ढलान उत्तर दिशा की ओर रहे, कषाय-मधुर स्वाद वाली मिट्टी ब्राह्मणों को सुख देने वाली कही गयी है।

क्षत्रियों के लिए प्रशस्त भूमि के लक्षण - यह भूमि आयताकार, रंग लाल व कसैली स्वाद वाली होती है। इस भूमि की ढलान पूर्व दिशा की ओर रहे, पीपल के वृक्षों से युत्तफ व क्षत्रियों के लिए शुभ मानी गई है। सभी प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाली होती है।

वैश्यों के लिये प्रशस्त भूमि के लक्षण - इस भूमि की लम्बाई चैड़ाई से छह भाग अध्कि हो, मिट्टी का रंग पीला, स्वाद कुछ खट्टा, पाकड़ के वृक्ष से युत्तफ व ढलान पूर्व दिशा की ओर हो। ऐसी भूमि वैश्यों के लिये योग्य कही गयी है।

शूद्रों के लिये प्रशस्त भूमि के लक्षण - इस भूमि की लम्बाई-चैड़ाई से चार भाग अध्कि हो। मिट्टी का रंग काला, स्वाद कड़वा, बरगद के वृक्षों से युत्तफ हो। यह भूमि शूद्रों को ध्न-धन्य व समृद्धि प्रदान करने वाली होती है। बहुत ऊँची-नीची भूमि, खार, रेतीली या पोली मिट्टी वाली भूमि पर कभी भी मकान नहीं बनाना चाहिए। भूमि की आकृति अनिन्दनीय, भूमि दक्षिण व पश्चिम में ऊँची हो। भूमि हाथी, छवि, वेणु, वीणा, समुद्र जल एवं दुन्दुभि वाद्य की ध्वनि से युत्तफ व नागकेसर, चमेली, कमल, धन्य व गुलाब के फूलों की खुशबू से सुगन्ध्ति हो। ऐसी भूमि शुभ होती है।

लघूत्तरीय प्रश्न -

1. कुशायुक्त भूमि किस वर्ण के लिए शुभ है।
2. क्षत्रिय वर्ण के लिए किस रंग की भूमि गृहनिर्माणार्थ शुभ है।
3. बरगद के वृक्षों से युत्तफ भूमि किस वर्ण के लिए शुभ है।?
4. मदिरा की गन्ध् वाली भूमि की क्या संज्ञा है।
5. मयमत के अनुसार पीपल के वृक्ष से युक्त भूमि किस वर्ण के लिए शुभ है।

7.3.3 भूमि का चुनाव -

भवन निर्माण के लिए प्रशस्त भूमि का विवेचन करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में कहा है, कि जिस भूमि की मिट्टी में अच्छी औषधि वृक्ष व लताएँ उगती हों, जिसकी मिट्टी मधुर, चिकनी, सुगन्ध्ति व समतल हों व जिस भूमि पर थके-हारे व्यत्तिफ को बैठने से शान्ति मिले। वस्तुतः भवन निर्माण के लिए ऐसी भूमि अच्छी होती है जिसकी मिट्टी उपजाऊ, चिकनी, ठोस, सुगन्ध्ति व समतल हो।

प्रशस्त भूमि - मयमतम् के अनुसार प्रशस्त भूमि वह है जो पशु के गंध् के समान, सभी प्रकार के बीज उगते हों, भूमि एक रंग की, सघन, कोमल व छूने में सु प्रदान करने वाली होनी चाहिये। ऐसी भूमि अच्छी होती है। जिस भूमि पर बेल, नीम, निर्गुण्डी, पिण्डित, सप्तच्छद व आम - ये छह वृक्ष हों, भूमि समतल हो। जो भूमि रंग में सपफेद, लाल, पीली व कबूतर के समान काली हो व स्वाद में तित्तफ, कड़वी, कसैली, नमकीन, खट्टी व मीठी - इन छह स्वादों वाली भूमि शुभ होती है। इस

प्रकार के रंग, गंध् व स्वाद से युत्तफ भूमि पर जलधरा का प्रवाह दाहिनी ओर हो, वह भूमि शुभ होती है।

जो भूमि दधि घी, मधु, तेल तथा रत्तफ गंध् वाली होती है। सपफेद, लाल, पीली व काली वर्ण वाली, गज के वाद्य से युत्तफ, मधुर आदि छह स्वादों वाली, एक रंग की, गो-धन्य एवं कमल की खुशबू से युत्तफ, पत्थर व भूसे से रहित, दक्षिण एवं पश्चिम में ऊँची, पूर्व एवं उत्तर में ढलान वाली, श्रेष्ठ सुरभि के समान, काँटों व अस्थियों से रहित, धूल, बालू से रहित भूमि सभी के लिए अनुकूल होती है, ऐसा सभी श्रेष्ठ मुनियों का विचार है।

अप्रशस्त भूमि - भवन निर्माण के लिए अप्रशस्त भूमि का विवेचन इस प्रकार है, जो मिट्टी रेतीली या पीली हो, दरार हो, पोली हो, चीटियों या दीमक के बिल हों, कब्रिस्तान हो, शल्य हो, दलदल हो, इस प्रकार की भूमि भवन निर्माण के लिए अच्छी नहीं होती है।

जिस भूमि में शव, मछली व पक्षी की गंध् वाली होती है वह भूमि अग्राह्या होती है। जिस भूमि पर चाण्डाल, शव आदि से आजीविका चलाने वालेद्ध के घर की छाया पड़े, चर्म द्वारा आजीविका चलाने वाले के घर के पास, एक-दो राजमार्गो, तिराहे व चैराहे पर स्थिति व जहाँ ठीक मार्ग न हो ऐसे स्थान पर गृह निर्माण प्रशस्त नहीं होता है। बीच में दबी, पणव ढोल के समान एक वाद्य पक्षी, मुरज एक वाद्य तथा मछली के समान आकार की भूमि व जहाँ चारों कोनों पर महावृक्ष लगे हों, ऐसी भूमि गृह बनाने के लिए ठीक नहीं होती है। ग्रामादि के प्रधन वृक्ष, जिसके चारों कोनों पर साल वृक्ष हो, सर्प के आवास के पास व मिश्रित जाति के वृक्षों के बाग के पास की भूमि गृह निर्माण के लिए ठीक नहीं होती है।

जिस भूमि में शव, मछली व पक्षी की गंध् वाली होती है वह भूमि अग्राह्या होती है। सभा भवन, चैत्य ग्राम का प्रधन वृक्षद्ध व राजभवन के निकट की भूमि त्याज्य होती है। वृत्ताकार, त्रिकोण, विषम जिसकी आकृति असमान होद्ध, कई कोण वाली, बीच में ऊँची वाली भूमि श्रेष्ठ नहीं होती है।

जिस भूमि पर चाण्डाल शव आदि से आजीविका चलाने वालेद्ध के घर की छाया पड़े, चर्म द्वारा आजीविका चलाने वाले के घर के पास, एक-दो राजमार्गा, तिराहे व चैराहे पर स्थिति व जहाँ ठीक मार्ग न हो ऐसे स्थान पर गृह निर्माण प्रशस्त नहीं होता है। बीच में दबी, पणव ढोल के समान एक वाद्यद्ध पक्षी, मुरज एक वाद्य तथा मछली के समान आकार की भूमि व जहाँ चारों कोनों पर महावृक्ष

लगे हों, ऐसी भूमि गृह बनाने के लिए ठीक नहीं होती है। ग्रामादि के प्रधान वृक्ष, जिसके चारों कोनों पर साल वृक्ष हो, सर्प के आवास के पास व मिश्रित जाति के वृक्षों के बाग के पास की भूमि गृह निर्माण के लिए ठीक नहीं होती है। निर्माण के लिए ग्रहण कर रहे हैं। इस मंत्रा का उच्चारण करना चाहिए।श् ग्रहण की गई भूमि पर हल चलाकर गोबर मिश्रित सभी प्रकार के बीजों को बो देना चाहिये। उन बीजों को उगा हुआ व पके हुये फल देकर, बैल व बछड़ों के साथ गार्यों को वहाँ बसा देना चाहिए, क्योंकि गायों के वहाँ चलने व संूघने से वह भूमि पवित्रा हो जाती है। प्रसन्न बैलों के नाद से व बछड़ों के मुँह से गिरे हुये फेन से भूमि अलंकृत हो जाती है व भूमि के सभी दोष धुल जाते हैं। गोमूत्र से सींची गई तथा गोबर से लीपी हुई, शरीर से रगड़ने के कारण गिरे हुये बालों से युत्त व गायों के पैरों द्वारा किये गये ल से भूमि शुद्ध हो जाती है। गाय की गंध से युत्त, इसके बाद पुण्य जल से पुनः पवित्रा की गई भूमि पर निर्माण के लिये शुभ तिथि से युत्तफ नक्षत्रा का विचार करना चाहिये। भूमि चयन के पश्चात भूमि का परीक्षण किया जाता है। भूमि परीक्षण के लिए शुभ मुहूर्त एवं सुन्दर लग्न में अक्षत व श्वेत पुष्पों से वास्तुदेवों का पूजन करना चाहिये। ब्राह्मणों द्वारा यथाशत्तिफ स्वस्तिवाचन करना चाहिये। इसके बाद निर्माण वाली भूमि के मध्य में पृथिवी तल की खुदाई करनी चाहिए। भूमि के मध्य में एक हाथ गहरा, चैकोर, जिसकी दिशायें ठीक हों, दोष रहित गडढा खोदना चाहिये। यह गड्ढा सकरा नहीं होना चाहिये तथा न ही बहुत गहरा होना चाहिये।

इसके बाद यथोचित विधान से पूजा करके तथा उस गड्ढे की पूजा करने के बाद चन्दन, अक्षतमिश्रित तथा सभी रत्नों से युत्तफ जल को बुद्धिमान मनुष्य से रात्रि के प्रारम्भ में गढ़े में डालते हुये उसे जल से पूरा भरना चाहिये। इसके बाद पवित्रा होकर सावधन मन से गड्ढे के पास, भूमि पर कुछ बिछा कर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठ जाना चाहिये। उपवास करते हुये इस मन्त्रा का जप करना चाहिये। मन्त्रा इस प्रकार है - हे पृथिवी, इस भूमि पर उत्तम समृद्धि स्थापित कर इसे धन-धान्य से परिपूर्ण करो। तुम कल्याणकारी बनो, तुम्हें प्रणाम हो। बुद्धिमान स्थपति को प्रातःकाल होने पर पहले उस गढे की परीक्षा करनी चाहिये। इसमें जल

बचा हुआ देकर सभी प्रकार के ऐश्वर्य के लिये उस भूमि को निर्माण के लिये काम में लेना चाहिए। यदि भूमि गीली रहे तो उस गृह में विनाश होता है यदि शुष्क रहे तो उस गृह में ध्न-धन्य की हानि होती है। यदि उस गढ़े के खोदने से निकली मिट्टी से उसे भरा जाय व पूरी मिट्टी उसमें समा जाये तो भूमि को मध्यम श्रेणी का समझना चाहिये। यदि मिट्टी से गढा भर जाय एवं मिट्टी शेष रह भी जाये तो भूमि को उत्तम श्रेणी की समझना चाहिए। यदि मिट्टी से गढे भी न भरे व मिट्टी खत्म हो जाये तो भूमि

निम्न श्रेणी की होती है। उस गहरे के बीच में यदि जल दाहिनी ओर घूमकर बहे तो इस प्रकार की सुरभि की मूर्ति के समान वाली भूमि सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाली होती है।

1. जिस भूमि पर थके-हारे व्यत्तिफ को बैठने से शान्ति मिले, भवन निर्माण के लिए ऐसी भूमि अच्छी होती है। सत्य-असत्य

2. जो भूमि दधि- घी, मधु, तेल तथा रत्त गंध् वाली भूमि गृहनिर्माण के लिए अच्छी नहीं होती। सत्य-असत्य

3. जो भूमि में शव, मछली व पक्षी की गंध वाली होती है वह भूमि ग्राह्या होती है। सत्य-असत्य

4. वृत्ताकार, त्रिकोण, विषम, कई कोण वाली, बीच में ऊँची वाली भूमि श्रेष्ठ नहीं होती है। सत्य-असत्य

5. देवालय के पास काँटेदार वृक्ष नहीं होने चाहिएँ। सत्य-असत्य

7.3.4 भूशयन विचार

वास्तुशास्त्रा के अनुसार जिस समय भूमि शयन अवस्था में होती है, उस समय भूमि को नही खोदना चाहिए। अर्थात् गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार शयनावस्था में तालाब, बावड़ी कुआँ आदि खुदवाना भी निषिद्ध है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उस नक्षत्र से पंचम, सप्तम, नवम, द्वादश, उन्नीसवे तथा छब्बीसवे नक्षत्र के दिन पृथ्वी शयन करती है। अतः उक्त दिनों में वास्तु कर्म हेतु भूमि को खोदना वर्जित है। यथा -

प्रद्योतनात्पंनागाघ्कसूर्य-नवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापिखननं न शस्तम्।।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आद्रा, पुनर्वसु, पुष्यः, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराध, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढाः, श्रवणः, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती ये सत्ताईस नक्षत्र है। इसके अतिरिक्त अभिजित भी अट्ठाइसवां नक्षत्रा है, परन्तु दो नक्षत्रों के मध्यवर्ति होने के कारण मुहूर्त की दृष्टि से इसे नक्षत्रा स्वीकार नहीं किया गया है। यथा -

उत्तराषाढातूर्यांशः श्रुतिपंचदशांशकः
मिलित्वा चाभीनिन्मानं ज्ञेयं तद्द्वयमध्यगः।।

अर्थात् उत्तराषाढा नक्षत्र का चतुर्थांश 15 घटी; एक नक्षत्र 60 घटी का होता है अतः एक नक्षत्र का चतुर्थांश 15 घटी तथा श्रवण नक्षत्र का पंचदशांश 4 घटी दोनों को जोडने से 19 घटी अभिजित नक्षत्र का मान होता है। अतः ज्योतिष शास्त्र में इस नक्षत्र को स्वीकार नही किया गया तथा 27 ही नक्षत्र कहे गए है।

उक्त 27 नक्षत्रों में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्रा से गणना प्रारम्भ कर 5, 7, 9, 12, 19 तथा 26 नक्षत्रों को छोड़कर नीव रखने के लिए अथावा शोधन के लिए भूमि को खोदना शुभ होता है। सूर्य एक राशि में लगभग 30 दिन रहता है तथा 1 नक्षत्रा में लगभग 13 दिन रहता है। उदाहरणार्थ गृहारम्भ के समय सूर्य कृत्तिका नक्षत्र में है। अतः कृत्तिका से पंचम नक्षत्र पुनर्वसु, सप्तम नक्षत्र आश्लेषा, नवम नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराषाढा तथा छब्बीसवां नक्षत्र रेवती ये नक्षत्र जिन दिनो में आ रहे हो वह दिन गृहारम्भ हेतु भूमि खोदने के लिए शुभ नहीं है।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. निम्मलिखित में से क्या शयनावस्था में खुदवाना निषिद्ध है।

क. तालाब, ख. बावड़ी

ग. कुआँ घ. ये सभी

2. वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार सूर्य जिस नक्षत्रा में हो, उस नक्षत्र से निम्नलिखित में किस नक्षत्र के दिन पृथ्वी शयन नही करती है -

क. पंचम ख. अष्टम

ग. द्वादश घ. छब्बीसवे

3. नक्षत्रों की कुल संख्या है -

क. 26 ख. 27

ग. 25 घ. 29

4. अभिजित नक्षत्र का मान कितना है -

क 15 घटी ख. 4 घटी

ग. 19 घटी घ. 17 घटी

5. सूर्य एक नक्षत्रा में कितने दिन रहता है -

क. 13 दिन ख. 12 दिन

ग. 14 दिन घ. 18 दिन

7.4 सारांश

इस इकाई में आपने वास्तु के सन्दर्भ में भूमि का महत्व, भूमि चयन तथा भूमि शयन के विषय में अध्ययन किया। भारतीय वास्तुशास्त्र पांच तत्त्वों पर आधरित है। इन पांच तत्त्वों में भूमि का प्रमुख स्थान है अतः निवास के लिए घर बनाने के लिए भूमि का अनुकूत होना अत्यन्त आवश्यक है। वेदों एवं वैदिक वांगमय में वास्तु की दृष्टि से भूमि के महत्व का वर्णन अनेक स्थानों पर आया है।

वास्तुशास्त्र में भूमि की गुणवत्ता एवं गुण दोषों का विचार भूमि के रंग, गन्ध्, स्वाद, तथा उस पर उगने वाली वनस्पति के आधार पर किया जाता है। उक्त आधर पर भूमि को ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा इन चार भागों में विभक्त किया गया है। मयमतम् नामक ग्रन्थ में यह भूमियां ब्राह्मणादि वर्णो के लिए शुभ होती है। गुण-दोष के आधर पर भूमि का चयन करने के बाद भूमि का परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण शल्य, भूमि की कठोरता, उस पर उगे हुए वृक्ष तथा वनस्पति के आधर पर केया जाता है। भूमि के शुभाशुभत्व विचार के लिए भूमि में गढ्ढा कर इसमें पुनः मिट्टी भरकर, जल भरकर किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक विधियों का वर्णन वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में किया गया है।

उक्त परीक्षणो के लिए तथा गृहारम्भ हेतु भूमि को खोदना होता है। भूमि को खोदते समय भूमि शयनावस्था में है अथवा जागृतावस्था में यह ज्ञान कारना परमावश्यक है, क्योकि वास्तुशास्त्र के अनुसार शयनावस्था में भूमि को खोदना निषिद्ध है। बृहद्वास्तुमाला के अनुसार सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उस नक्षत्रा से पंचम, सप्तम, नवम, द्वादश, उन्नीसवे तथा छब्बीसवे नक्षत्र के दिन पृथ्वी शयन करती है। अतः उक्त दिनों में वास्तु कर्म हेतु भूमि को खोदना वर्जित है। इन सभी विषयों का इस इकाई में ज्ञान प्राप्त किया।

7.5 पारिभाषिक शब्दावली

पदव्रफमण - पांव से नापना

अन्तेवासी - विद्यार्थी

यजन स्थान - यज्ञ करने का स्थान

सघन भूमि - कठोर भूमि

रक्तगन्ध - रक्त के समान जिसकी गन्ध् हो

चकोर - चतुर्वगाकार

आयताकार- जिसकी आमने-सामने ही भुजाएं समान हो।

वेणु - वीणा

दुन्दुभि - एक वाद्ययन्त्रा

तिक्त - तीखा

कब्रिस्तान - मृत लोगों को मिट्टि में दपफनाने का स्थान

चाण्डाल - शव आदि से आजीविका चलाने वाले लोग

पणव -ढ़ोल के समान एक वाद्य यन्त्रा

मुरज - विशेष वाद्ययन्त्रा

त्रिकोण - जिसकी तीन भुजाएं हो

विषमाकार - जिस आकार की कोई भी भुजा समान न हो

तीराहा - जहां तीन रास्ते मिलते हो

चैराहा - जिस स्थान पर चार रास्ते मिलते हो।

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1. 5
2. 3
3. पूर्व
4. यजुर्वेद
5. पोषण करने के कारण

लघूत्तरीय प्रश्न -

1. कुशायुक्त भूमि ब्राह्मण वर्ण के लिए शुभ है।
2. क्षत्रिय वर्ण के लिए लाल रंग की भूमि गृहनिर्माणार्थ शुभ है।
3. बरगद के वृक्षों से युत्तफ भूमि शूद्र वर्ण के लिए शुभ है।?
4. मदिरा की गन्ध वाली भूमि की मद्यगन्ध संज्ञा है।
5. मयमत के अनुसार पीपल के वृक्ष से युक्त भूमि क्षत्रिय वर्ण के लिए शुभ है।

सत्य/असत्य प्रश्न

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. घ 2. ख 3. ख 4. ग 5. क

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, सम्पादक डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, 2012 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. वास्तुरत्नावली, श्री जीवनाथ दैवज्ञ विरचित, सम्पादक डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, 2009 चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली।
3. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल विरचित, सम्पादक आचार्य कमलकान्त शुक्ल, 1999 सम्पुर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. मयमतम्, दानवराज मय कृत, व्याख्यातृ डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2013 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण जुगनु, 2005, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

7.8 सहायक उपयोगी सामग्री

1. बृहत्संहिता, वाराहमिहिर कृत, भट्टोत्पलीय वृत्ति, सम्पादक कृष्ण चन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।
2. गृहवास्तु प्रदीप, डॉ. शैलजा पाण्डेय, 2012, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. वास्तुशास्त्रम्, प्रखर प्रज्ञानन्द, 2009 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. नारदसंहिता, नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, 2001, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
5. मुहूर्तचिन्तमणि, रामदैवज्ञककृत, व्याख्याकार विन्ध्येश्वर प्रसाद द्विवेदी,2002 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. वशिष्ठ संहिता, वशिष्ठ विरचित, सम्पादक श्रीकृष्ण जुगनु, 2007, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7. वास्तुप्रदीप, वासुदेवदैवज्ञकृत, 1997 चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

8. वास्तुविद्या, अज्ञातकर्तृकृत, संस्कृत व्याख्या के. महादेवशास्त्री, हिन्दी अनुवाद श्रीकृष्ण जुगनु, 2007, चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

9. विश्वकर्मवास्तुशास्त्राम्, विश्वकर्माभाषित, सम्पादक के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी अनुवाद जुगनु, 2017 चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. शिल्पशास्त्राम् विश्वकर्मा, सम्पादक एवं अनुवादक जुगनु, 2007, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

11. समरांगणसूत्रधार, भोजदेवविरचित, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक जुगनु, 2017, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

12. मनुष्यालयचन्द्रिका, नीलकण्ठमूसत कृत, सम्पादक टी. गणपति शास्त्री, अनुवादक श्रीकृष्ण जुगनू, 2006 चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैदिक वाङ्मय में वास्तु के सन्दर्भ में भूमि के विषय में क्या कहा गया है।
2. मयमत के अनुसार वर्णानुसार भूमि के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
3. प्रशस्त भूमि के लक्षणों को विस्तार से लिखिए।
4. खात विचार पर एक निबन्ध लिखिए।
5. भूमि शयन किस समय करती है? शयन के समय वास्तु से सम्बन्धित कौन से कार्य वर्जित है।